RNI Number : MPHIN/2016/70609

वर्ष : 5, अंक : 19

अक्टूबर-दिसम्बर 2020

मूल्य 50 रुपये

ISSN NUMBER : 2455-9814

Dhingra Family Foundation USA

विभोम स्वर

वैश्विक हिन्दी चिंतन की अंतर्राष्ट्रीय पत्रिका

शिवना प्रकाशन जुलाई 2020 सेट की पुस्तकें

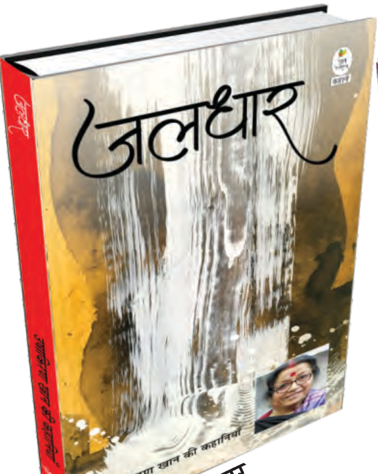

जलधार
कहानी संग्रह
उषाकिरण खान

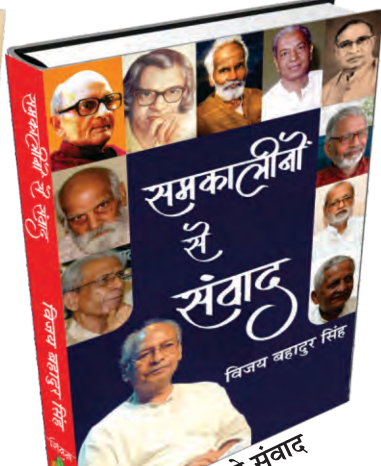

समकालीनों से संवाद
साक्षात्कार
विजय बहादुर सिंह

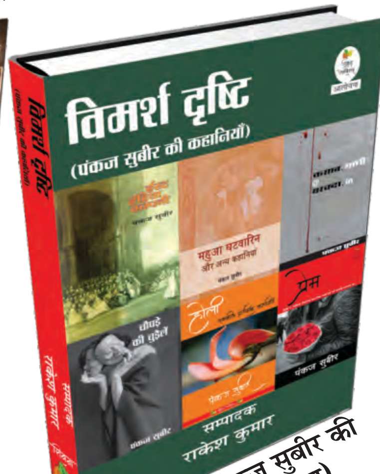

विमर्श दृष्टि - पंकज सुबीर की
कहानियाँ (आलोचना)
डॉ. राकेश कुमार

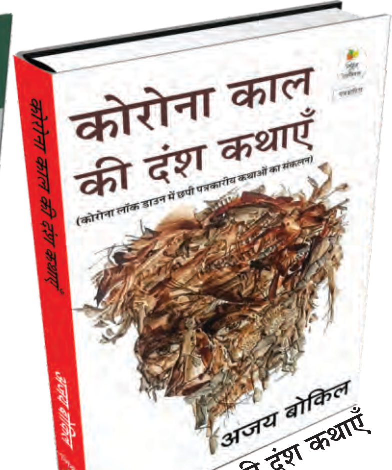

कोराना काल की दंश कथाएँ
पत्रकारिता
अजय बोकिल

भूरी आँखें घुँघराले बाल
कहानी संग्रह
अनुपमा तिवाड़ी

काग भुसण्ड
उपन्यास
राजीव तनेजा

क़फ़स
कहानी संग्रह
अंशु प्रधान

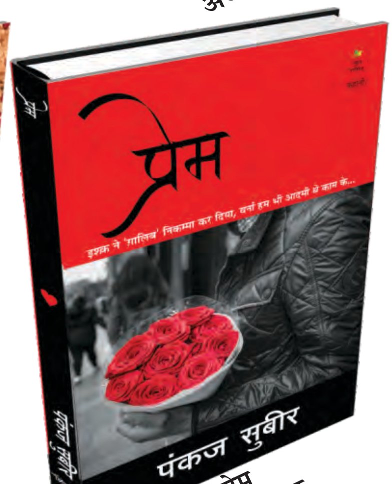

प्रेम
कहानी संग्रह
पंकज सुबीर

कुछ चर्चित किताबें के प्रथम पेपरबैक संस्करण

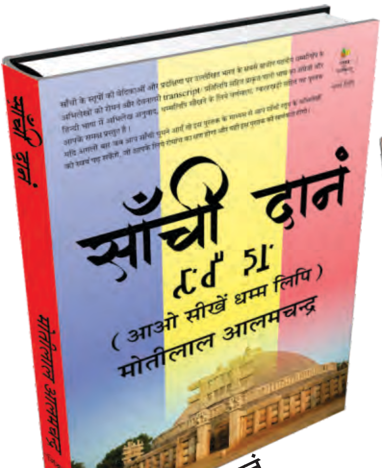

सांची दानं
धम्म लिपि
मोतीलाल आलमचन्द्र

आसान अरूज़
ग़ज़ल व्याकरण
डॉ. आज़म

कसाब.गांधी एट यरवदा.इन
कहानी संग्रह
पंकज सुबीर

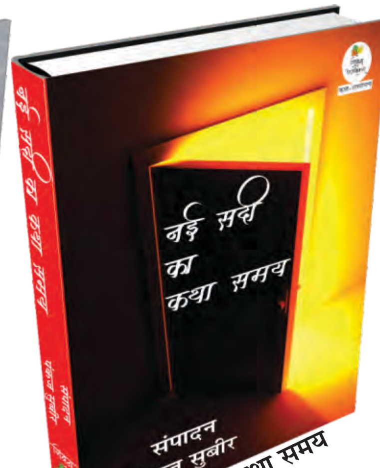

नई सदी का कथा समय
आलोचना
पंकज सुबीर

शिवना प्रकाशन

शिवना प्रकाशन, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट
कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने
सीहोर, मध्य प्रदेश 466001
फोन : 07562-405545, 07562-695918
मोबाइल : +91-9806162184 (शहरयार)
ईमेल : shivna.prakashan@gmail.com
http://shivnaprakashan.blogspot.in
https://www.facebook.com/shivna.prakashan

शिवना प्रकाशन की पुस्तकें सभी प्रमुख ऑनलाइन शॉपिंग स्टोर्स पर

amazon http://www.amazon.in
flipkart http://www.flipkart.com
paytm https://www.paytm.com
ebay http://www.ebay.in

दिल्ली में पुस्तकें प्राप्त करें : हिन्दी बुक सेंटर, 4/5 आसफ अली रोड
फोन : 011-23286757 http://www.hindibook.com

संरक्षक एवं प्रमुख संपादक
सुधा ओम ढींगरा

संपादक
पंकज सुबीर

संपादकीय एवं व्यवस्थापकीय कार्यालय
पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6
सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट
बस स्टैंड के सामने, सीहोर, म.प्र. 466001
दूरभाष : 07562405545
मोबाइल : 09806162184
ईमेल : vibhomswar@gmail.com

ऑनलाइन 'विभोम-स्वर'
http://www.vibhom.com/vibhomswar.html

फेसबुक पर 'विभोम स्वर'
https://www.facebook.com/vibhomswar

एक प्रति : 50 रुपये (विदेशों हेतु 5 डॉलर $5)
सदस्यता शुल्क
1500 रुपये (पाँच वर्ष)
3000 रुपये (आजीवन)
विदेश प्रतिनिधि
अनिता शर्मा (शंघाई, चीन)
रेखा राजवंशी (सिडनी, आस्ट्रेलिया)
शिखा वार्ष्णेय (लंदन, यू के)
नीरा त्यागी (लीड्स, यू के)
अनिल शर्मा (बैंकॉक)
क़ानूनी सलाहकार
शहरयार अमजद ख़ान (एडवोकेट)
तकनीकी सहयोग
पारुल सिंह, सनी गोस्वामी
डिज़ायनिंग
सुनील सूर्यवंशी, शिवम गोस्वामी

संपादन, प्रकाशन, संचालन एवं सभी सदस्य पूर्णत: अवैतनिक, अव्यवसायिक।
पत्रिका में प्रकाशित सामग्री लेखकों के निजी विचार हैं। संपादक तथा प्रकाशक का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है। प्रकाशित रचनाओं में व्यक्त विचारों का पूर्ण उत्तरदायित्व लेखक पर होगा। पत्रिका जनवरी, अप्रैल, जुलाई तथा अक्टूबर में प्रकाशित होगी। समस्त विवादों का न्याय क्षेत्र सीहोर मध्यप्रदेश रहेगा।

Dhingra Family Foundation
USA

विभोम स्वर

वैश्विक हिन्दी चिंतन की अंतर्राष्ट्रीय पत्रिका

वर्ष : 5, अंक : 19, त्रैमासिक : अक्टूबर-दिसम्बर 2020
RNI NUMBER : MPHIN/2016/70609
ISSN NUMBER : 2455-9814

आवरण चित्र
पारुल सिंह

रेखाचित्र
रोहित प्रसाद

Dhingra Family Foundation
101 Guymon Court, Morrisville
NC-27560, USA
Ph. +1-919-801-0672
Email: sudhadrishti@gmail.com

इस अंक में

विभोम स्वर

वैश्विक हिन्दी चिंतन की अंतर्राष्ट्रीय पत्रिका

वर्ष : 5, अंक : 19, त्रैमासिक : अक्टूबर-दिसम्बर 2020

संपादकीय 5

मित्रनामा 7

साक्षात्कार

प्रोफ़ेसर नीलू गुप्ता से सुधा ओम ढींगरा की बातचीत 10

कथा कहानी

मौसमों की करवट
प्रज्ञा 15
परदेस के पड़ोसी
अनिल प्रभा कुमार 20
वह उस्मान को जानता है
रमेश शर्मा 25
नियर अबाउट डेथ
डॉ. सन्ध्या तिवारी 28
टी-सैट
उषाकिरण 35
ढलती शाम का हम सफ़र
मार्टिन जॉन 40
शहर भीतर गाँव, गाँव भीतर शहर
डॉ. विनीता राहुरीकर 43
प्रमोशन
सतीश सिंह 46
व्यस्त चौराहे
मीना पाठक 48

लघुकथाएँ

सौतेला नागरिक
रीता कौशल 42
राजनीति के कान
कमलेश भारतीय 62

भाषांतर

शो-केस में रखा ताजमहल
बलविंदर सिंह बराड़
अनुवाद: सुभाष नीरव 52

व्यंग्य

एक मुर्दा चर्चा
प्रेम जनमेजय 60
वर्तमान समय और हम
हरीश नवल 63
राजनीतिक प्रेरणा- एक विवेचना
कमलेश पाण्डेय 65

संस्मरण

मेरे हिस्से के शरद जोशी
वीरेन्द्र जैन 67

शहरों की रूह

रॉले, कैरी तथा मोर्रिस्विल्ल,
नॉर्थ कैरोलाइना
बिंदु सिंह, अमृत वाधवा 71

आलेख

संकटकालीन समय में रचे विश्व साहित्य: एक आत्मविश्लेषण और उम्मीद की किरण
डॉ. नीलाक्षी फुकन 76

पहली कहानी

ममता की कशिश
ममता त्यागी 80

ग़ज़ल

अखिल भंडारी 27

गीत

सूर्यप्रकाश मिश्र 66
श्याम सुंदर तिवारी87

कविताएँ

रचना श्रीवास्तव 82
डॉ. संगम वर्मा 83
कल्पना मनोरमा 84
रेखा भाटिया 85
नंदा पाण्डेय 86

आख़िरी पन्ना 88

विभोम-स्वर सदस्यता प्रपत्र

यदि आप विभोम-स्वर की सदस्यता लेना चाहते हैं, तो सदस्यता शुल्क इस प्रकार है :
1500 रुपये (पाँच वर्ष), 3000 रुपये (आजीवन)। सदस्यता शुल्क आप चैक / ड्राफ़्ट द्वारा विभोम स्वर (VIBHOM SWAR) के नाम से भेज सकते हैं। आप सदस्यता शुल्क को विभोम-स्वर के बैंक खाते में भी जमा कर सकते हैं, बैंक खाते का विवरण-

Name of Account : Vibhom Swar, Account Number : 30010200000312, Type : Current Account, Bank : Bank Of Baroda, Branch : Sehore (M.P.), IFSC Code : BARB0SEHORE (Fifth Character is “Zero”)
(विशेष रूप से ध्यान दें कि आई. एफ. एस. सी. कोड में पाँचवा कैरेक्टर अंग्रेज़ी का अक्षर 'ओ' नहीं है बल्कि अंक 'ज़ीरो' है।)

सदस्यता शुल्क के साथ नीचे दिये गए विवरण अनुसार जानकारी ईमेल अथवा डाक से हमें भेजें जिससे आपको पत्रिका भेजी जा सके:
1- नाम, 2- डाक का पता, 3- सदस्यता शुल्क, 4- चैक/ड्राफ़्ट नंबर, 5- ट्रांज़ेक्शन कोड (यदि ऑनलाइन ट्रांस्फ़र है), 6-दिनांक
(यदि सदस्यता शुल्क बैंक खाते में नकद जमा किया है तो बैंक की जमा रसीद डाक से अथवा स्कैन करके ईमेल द्वारा प्रेषित करें।)

संपादकीय एवं व्यवस्थापकीय कार्यालय : पी. सी. लैब, शॉप नंबर. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, म.प्र. 466001, दूरभाष : 07562405545, मोबाइल : 09806162184, ईमेल : vibhomswar@gmail.com

संपादकीय

कला, साहित्य या राजनीति हर क्षेत्र में अहं ब्रह्मास्मि गाँव है

सुधा ओम ढींगरा
101, गाईमन कोर्ट, मोर्रिस्विल
नॉर्थ कैरोलाइना-27560, यू.एस. ए.
मोबाइल- +1-919-801-0672
ईमेल- sudhadrishti@gmail.com

एक सन्यासी गाँव-गाँव में घूम रहा था। उसके गुरु का आदेश था, बस उस गाँव में डेरा डालना, जिसका नाम अनूठा हो। सन्यासी गाँव-गाँव घूम कर थक गया, कोई अनोखे नाम का गाँव नहीं मिला। जाने-पहचाने आम-से नाम वाले गाँव मिले। चलते-चलते सन्यासी और उसका चेला दोनों थक गए, और एक चौराहे पर आकर रुक गए। तभी चेले को चौराहे से एक सड़क मुड़ती दिखाई दी, जिस पर एक बोर्ड लगा था और उस पर लिखा था-'अहं ब्रह्मास्मि' गाँव इस ओर का निशान बना था। चेले ने सन्यासी को वह बोर्ड दिखाया। दोनों नाम देख कर मुस्करा दिए। उन्हें उनकी मंज़िल मिल गई। थोड़ी दूर चलकर उन्हें गाँव का प्रवेश द्वार मिला और वे उस द्वार के भीतर प्रवेश कर गए। बरगद के एक बड़े पेड़ के नीचे गोल चबूतरा देख उन्होंने वहाँ अपना डेरा जमाया। दोनों भूख से बेहाल थे। गाँव की ओर नज़र दौड़ाई, कहीं कोई नज़र नहीं आया। पर एक बात उन्हें बड़ी अजीब लगी, गाँव में बड़ी- बड़ी दीवारों से घिरे और एक मज़बूत गेट में अंदर बंद क़िलेनुमा दूर तक फैले घर थे तथा सब घर के ऊपर झंडे लगे थे। ये झण्डे लाल, नीले, पीले, हरे, केसरी रंगों वाले थे। सन्यासी और उसके चेले को कुछ समझ नहीं आ रहा था।

तभी एक नौजवान उनके पास आया और बोला-'आदरणीय, आप अभी आए लगते हैं।' थोड़ी देर पहले मैं यहीं पर बैठा था।'

'आप कौन?'' चेले ने पूछा।

'जी मैं एक पत्रकार हूँ। इस गाँव का नाम पढ़ कर यहाँ कवरेज करने आया था। पिछले छह महीने से भटक रहा हूँ। किसी ने दरवाज़ा नहीं खोला। एक अर्दली बाहर घूमने आता है उसी से दोस्ती हो गई। उसी से पता चला कि सब अपने -अपने घरों में नेता हैं, पंच हैं, पंचायत हैं। सभी बेहद पढ़े-लिखे बुद्धिजीवी हैं और अपने -अपने विषय के ज्ञाता हैं। आर्थिक रूप से समृद्ध हैं पर अपने सिवाए, किसी दूसरे को कुछ नहीं समझते और इसीलिए बड़े-बड़े घर बनवा कर एक दूसरे को कम आँकते हैं, अपना -अपना झंडा लगाए हुए हैं। एक रंग के दो झंडे आपको नहीं मिलेंगे।'

सन्यासी और चेला एक दूसरे की ओर देखने लगे।

कहानी लंबी है, वह तो नहीं सुनाऊँगी, बस इतना ही, किस तरह सन्यासी ने एक रोज़ माइक पर -अहं ब्रह्मास्मि... अहं ब्रह्मास्मि कहा और घरों के दरवाज़े खुल गए तथा बंदूकें तन गईं। सन्यासी को छह महीने लगे उन बुद्धिजीवियों को अहं, ब्रह्म और अस्मि के सही अर्थ समझाते और उनका हृदय परिवर्तन करते।

संपादकीय

मुझे यह कहानी इसलिए याद आई, पूरे विश्व में आत्ममुग्धता इस संवेदनशील समय पर हावी हो गई है। कोविड-19 जैसे अदृश्य शत्रु से बचने का घरों में बैठना ही पहले पहल सरल और सहज उपाय था। घरों में ऑन लाइन काम शुरू किया गया, यहाँ तक कि बच्चों की पढ़ाई भी। लोगों ने निराशा भरे माहौल की उदासी समाप्त करने के लिए तब सोशल मीडिया का सहारा लिया। उस समय एक -दूसरे के चेहरे देखना अच्छा लगता था। पर अब तो कहानी में बताए गाँव जैसे क़िले और उन पर भिन्न-भिन्न रंगों के फहराते झण्डे नज़र आने लगे हैं और जगह - जगह लिखा मिलता है-अहं ब्रह्मास्मि। कला, साहित्य या राजनीति हर क्षेत्र में अहं ब्रह्मास्मि गाँव है। देश की क्या दशा है, किस दिशा में जा रहा है, किसी को कोई चिंता नहीं।

अमेरिका के राष्ट्रपति और ब्राज़ील के राष्ट्रपति की नज़रों में लोगों के जीवन का कोई महत्त्व नहीं रहा। अहं ब्रह्मास्मि यहाँ भी घर कर गया है। कोविड जैसा अदृश्य शत्रु उनके लिए कोई महत्त्व नहीं रखता। वे स्वयं मास्क नहीं पहनते और अपने अनुयायीओं को भी पहनने के लिए ज़ोर नहीं देते। उसके घातक परिणाम हो रहे हैं.. ब्राज़ील की जनसंख्या दो सौ दस मिलियन है और करोना से एक लाख सत्तावन हज़ार मौतें हो चुकी है। अमेरिका में भी यही हाल है।

मुझे पंजाबी के बेहद लोकप्रिय गायक गुरदास मान का गाया गीत याद आता है-

घघरे वी गए, फुलकारियाँ वी गइयाँ
कन्ना विच कोकुरु ते वालियाँ वी गइयाँ
की बनू दुनिया दा, सच्चे बादशाह, वाह गुरु जाने।

गुरदास मान ने तो पंजाब का कल्चर मिटते देख कर कहा है कि दुनिया का क्या बनेगा यह ईश्वर ही जानता है। मैं आत्ममुग्ध लोगों को देख कर कहती हूँ-दुनिया का क्या बनेगा। पूरा विश्व आर्थिक संकट से जूझ रहा है, लोगों के पास नौकरियाँ नहीं। लोग सोशल साइट्स पर इतने मुग्ध हैं, उन्हें यह भी पता नहीं चल रहा कि उनके पड़ोसी के घर में भोजन है भी या नहीं।

ढींगरा फ़ाउण्डेशन को भारत से अनगिनत पत्र मदद के लिए आते हैं। निम्न मध्य वर्गीय परिवार बुरी तरह से आर्थिक संकट से जूझ रहे हैं। हम कर्मभूमि और जन्मभूमि दोनों जगह अपना सहयोग दे रहे हैं। क्या लोग आपस में इकट्ठा होकर ऐसा ग्रुप नहीं बना सकते, जो आर्थिक संकट से गुज़र रहे परिवारों को ढूँढ़ सकें और उनकी सहायता कर सकें

त्योहारों का समय आ रहा है। दीवाली, थैंक्सगिविंग, क्रिसमिस और नव वर्ष। इस बार इन्हें धूमधाम से तो नहीं मनाया जा सकता, पर इस संवेदनशील समय में सौहृदयता, मानवता और प्रेम की बेहद ज़रूरत है, उसे बाँटा जा सकता है।

मित्रो, खुले दिल से प्रेम बाँटिए और त्योहारों पर किसी भूखे को भोजन खिलाइए... इससे बड़ा उत्सव और कोई नहीं हो सकता।

विभोम-स्वर और शिवना साहित्यिकी की ओर से पाठकों को दीवाली, थैंक्सगिविंग, क्रिसमिस और नव वर्ष की ढेर सारी बधाइयाँ और शुभकामनाएँ!!! मास्क पहने और सुरक्षित रहें!!

आपकी,

सुधा ओम ढींगरा

शाख़ पर लगा हुआ फल संकेत देता है कि जो पेड़ ग्रीष्म आने पर लगभग सूख गया था, यह फल उसी पेड़ पर लगे हैं। जीवन हर प्रकार की मुश्किल परिस्थिति से बाहर आने का अवसर तलाश ही लेता है। जब मुश्किल समय बीतता है तो आशाओं के फल उन्हीं सूखी हुई शाख़ाओं पर फले हुए दिखाई देते हैं।

मित्रनामा

पिछले कई दिनों से में आख़िरी पन्ना, विभोम-स्वर का पढ़-पढ़ कर लोट- पोट हुई जा रही हूँ। पंकज सुबीर लाइव शो करने वालों को क्या चपत और चुटकी लगाई है तुमने। तुम्हारे विट पर हैरान हूँ। शर्मिंदा भी कि इसके बावजूद लाइव शो में प्रगट हो जाती हूँ। अपने हौसले और ह्यूमर को बरकरार रखो। लेखक तो ख़ास हो ही।

-ममता कालिया, दिल्ली

000

लोकप्रिय पत्रिका 'विभोम-स्वर' का आख़िरी पन्ना बहुत रोचक होता है। इसके आलेख प्राय: चिंतन प्रधान व्यंग्य आलेख होते हैं। जुलाई -सितंबर 2020 के अंक में आख़िरी पन्ना "कल आप हमारे लिए लाइव पर नहीं आए....?" सुप्रसिद्ध साहित्यकार पंकज सुबीर की व्यंग्यात्मक शैली का उत्कृष्ट आलेख है।

वर्तमान में साहित्यकार कुकुरमुत्ते की तरह उदित हो रहे हैं। हर गली-मोहल्ले में प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हैं। इनका क्या अध्ययन है? क्या लेखन है ? जीवन के प्रति क्या दृष्टिकोण है? और क्या चिंतन है? यह सभी गौण विषय है। इन्हें तो बस फेसबुक व्हाट्सएप और यूट्यूब पर किसी ना किसी लिंक के माध्यम से लाइव आना है। इन्हें लेखक "लाइव सैनिक" और "लाइव वीर" की उपाधि से विभूषित करते हैं। कोरोना काल में यह कृत्य अपने यौवन पर है। इससे साहित्य का भला तो कुछ नहीं हो रहा है बल्कि साहित्य की हानि ही हो रही है। फिर भी यह पूरे जोश के साथ जारी है। मित्रों को लाइव पर आमंत्रित करते हैं और लाइव नहीं आने पर शिकायत करते हैं -कल आप हमारे लाइव पर नहीं आए।

कोरोना काल के फुर्सती क्षणों में इस तरह के प्रसारण पर पंकज सुबीर जी ने बहुत मीठा व्यंग्य किया है। भाषा की चुटिलता से बरबस ही अधरों पर मुस्कान थिरक जाती है। कटाक्ष की तिक्तता चिंतन को विवश करती है। हिन्दी साहित्य के भविष्य के प्रति चिंता करता एक ज़रूरी और पठनीय आलेख के लिए पंकज जी का सादर अभिनंदन।

-रघुवीर शर्मा

000

फेसबुक हमारे दौर का एक ऐसा माध्यम है, जिसकी लोकप्रियता असंदिग्ध है। खास तौर से इस कोरोना के दौर में जब घर से निकलना एक तरह से प्रतिबंधित जैसा है। ऐसे में फेसबुक अथवा दीगर सोशल साइट्स मन बहलाव के साधन के रूप में भी व्यवहृत हैं। पर इन दिनों इन माध्यमों का अतिरेक की हद तक उपयोग एक किस्म का सरदर्द भी होते जा रहा है। पंकज सुबीर ने आख़िरी पन्ने में इस विडम्बना पर गहरा कटाक्ष किया है। कतिपय रचनाकारों, लेखकों में लाइव होने के लिए जिस तरह का अधैर्य और आकुलता दिखाई देती है, वह दुर्भाग्यपूर्ण भले ही न हो विचारणीय अवश्य है। एक ही व्यक्ति का तीन-तीन जगहों पर लाइव होना प्रतिभा का विस्फोट तो नहीं ही किया जा सकता, बल्कि लाइवपने के चक्कर में प्रतिभा पर पलीता लगाना ज़रूर समझा जाएगा। कहने का आशय यह कि इस प्रदर्शन प्रियता में अध्ययन और ज्ञान की अपेक्षा वेषभूषा और व्यक्तित्व ही ज़्यादा मुखर हो रहा है। लाइवपने के इस भभ्भड़ में एक जेनुइन और सही रचनाकार से यह अपेक्षा तो की ही जा सकती है कि वह धैर्य और संयम का परिचय दे। बतौर संपादक और रचनाकार पंकज जी की यह सलाहियत ध्यान खींचती है।

-कैलाश मण्डलेकर

000

वर्तमान परिस्थितियों में साहित्य की ओर ध्यान बढ़ना, या यूँ कहे कि साहित्यकार का सामाजिक दायित्व बढ़ जाना चाहिए। इसी मानसिकता की स्याही में डूबकर बाहर निकले विचारों की अभिव्यक्ति में गढ़े शब्दों का चिंतनीय दस्तावेज़ है 'विभोम-स्वर'।

अपने आख़िरी पन्ने में प्रस्तुत आलेख समाज की दहलीज़ पर संध्याकालीन विश्वास का दीपक ही है। कल आप हमारे लिए लाइव पर नहीं आए..... लेखक के मनोभावों को कितने सरलता से उतारा है यहाँ, मानसिक पीड़ा भी छिपी हुई कि आपको आना था लाइव पर और फिर कसीदे, सम्मान, टिप्पणियों की आकर्षक गलियारों में विचरण। इस व्यवस्था को शब्द देते सुप्रसिद्ध साहित्यकार श्री पंकज सुबीर की व्यंग्यात्मक यात्रा का प्रशंसनीय आरम्भ है...आज साहित्यिक यात्राओं का ऐसा दौर चल निकला है कि बिना किसी को पढ़े नवीन कलम बहुत-बहुत बड़ी उपाधि, सम्मान, वाह -वाही बटोर कर अग्रशाखा पर स्थापित होने आतुर है। जिस पर नवीनतम व्यवस्थाएँ ज़्यादा बाहें खोलकर स्वागातुर खड़ी हैं। चिंतन लुप्त, विचार लुप्त, दिशा लुप्त, केवल आयोजन.. मज़ेदार तो तब कि उपाधियों का वज़न भी इनके नन्हें हाथों में आ जाते हैं। इन्हें लेखक "लाइव सैनिक"और "लाइव वीर" की उपाधि से श्रृंगारित करते है। वर्तमान में जहाँ साहित्य का हित नहीं बल्कि स्वहित की चीख को लेखक लेकर खड़ा है। कोरोना वैश्विक महामारी के इस संकटकाल के फुर्सती आनन्द को पंकज सुबीर ने बड़े सलीके से गुदगुदी की है, व्यंग्य की इस भाषा पर पंकज सुबीर साहब को प्रणाम !

हिन्दी के भविष्य के लिए सभी बड़े छोटे नवांकुर श्रेष्ठतम साहित्यिक बिरादरी को यह आलेख पढ़ना चाहिए।

लेखक को इस छोटी कलम का सादर नमस्कार व आत्मीय अभिनंदन।

-सन्तोष चौरे चुभन

000

पंकज सुबीर जी की लेखनी को नमन।

कोरोना वायरस के आने से ऐसे परिणाम आते है। आख़िरी पन्ने की एक-एक पंक्ति का एक-एक शब्द जीवंत हो गया। सच में फेसबुक खोलते ही "फलाना सिंह" वाज़ लाइव।

इस प्रकार के कथन से निश्चित ही भ्रमित होना स्वाभाविक है। ऐसा लगा कि सच में लाइव रहा होगा, अब नहीं रहा। कोरोना में ही

साहित्यकारों की भीड़ दिखाई दी।

सच में यदि एक पत्थर उछालेंगे तो वह दो सहित्यकारों के हिस्से आएगा।

फेसबुक के दौर के साहित्यकार की एक भी रचना अभी तक सामने नहीं आई। आना है लाइव आएँगे फिर चाहे बनियान में ही क्यों न आएँ। शानदार बात कही है सुबीर जी-

दो तरह के वीर हैं-

१-लाइव सैनिक

२-लाइव वीर

लाइव वीरों की बात निराली। एक ही दिन में सोशल मीडिया पर संस्थाओं के अलग-अलग मंचों पर उपस्थित हो जाते है। लाइव आने की सूचना सूर्य ग्रहण व चन्द्र ग्रहण की सूचना की तरह देते है व टिप्पणी का आग्रह करते है।

आख़िरी पन्ना पढ़ कर सच के दर्शन हुए।

-सुनील उपमन्यु

000

"वीणा" के संपादकीय और "विभोम-स्वर" के आख़िरी पन्ने के मूल में वर्तमान साहित्यिक परिस्थितियों पर चिंता प्रकट की गई है। यह कथन सोलह आने सच है कि इतने साहित्यकार सामने आ गए हैं कि यदि एक पत्थर फेंकें तो वह दो साहित्यकारों के हिस्से में आएगा। उन्नत तकनीकी ने भावों के संप्रेषण को आसान बना दिया है, हर किसी के पास अपनी भाषा है और शिल्प साधने में लगने वाला समय और सब्र का अभाव है। ऐसे में वर्तमान दौर में जब कोरोना ने सबको घर में बैठा रखा है तो बैठे-बैठे आदमी को लिखने का कीड़ा काटता ही है। जैसे ही चार छह लाइनों की तुकबंदी हुई, दन्न से फेसबुक, वाट्स एप, मैसेंजर या अपना यू ट्यूब पेज बनाकर पेल दिया और फिर बार-बार उस पर लाइक, कमेंट्स देखने में समय अच्छे से कट जाता है। अपना लिखा ख़ुद को इसलिए सर्वश्रेष्ठ लगने लगा है कि रचनाकार स्वयं रचयिता है, संपादक भी है, आलोचक भी है और काफी हद तक अपनी रचना का प्रशंसक भी है। इसके अतिरिक्त उस रचना पर टिप्पणी, प्रतिक्रिया करने वाला भी अपने आप साहित्यकार की श्रेणी में आ ही जाता है। जब लिखने वाले को ही यह नहीं मालूम कि उसने क्या लिखा है और प्रतिक्रिया देने वाले भी वाहवाही कर आगे बढ़ जाते हैं। सही आलोचना इसलिए भी नहीं हो पाती है कि अगला नंबर प्रतिक्रिया देने वाले का है। जिस साहित्यकार को उन्होंने वाहवाही से नवाज़ा है, अब उसकी बारी आने वाली है। इस तरह एक दूजे की पीठ खुजाने का खेल अनवरत जारी है। 25-50 तुकबंदी होते ही पुस्तक प्रकाशन भी ज़्यादा महँगा रहा नहीं है; इसलिए यह स्थिति साहित्य के लिए ख़तरनाक मानी जा रही है।

साहित्य को इस स्थिति से कोई लाभ या हानि होना नहीं है। साहित्य की नदी में अभी बाढ़ आई है, जैसे ही बाढ़ उतरेगी सारा कूड़ा-करकट बह जाएगा या कहीं किनारे पर अटक जाएगा।

लेकिन इससे तथाकथित साहित्यकार को तात्कालिक लाभ यह है कि खाली बैठे-बैठे भी उसके ज़हन में नकारात्मक विचार आना नहीं है, जो वर्तमान दौर में सबसे ख़तरनाक है। किसी बहाने ही सही यदि आदमी का मन बहलता है, उसका समय किसी उम्मीद या अपेक्षा को लेकर कटता है तो यह शुभ ही है। यह सच भी अपनी जगह अटल है कि वे हीरे भी इसी कोयले के ढेर में से निकलना हैं, जिनकी चकाचौंध साहित्याकाश को दैदीप्यमान करेगी। कुल मिलाकर ये वक़्त उम्मीदों और अपेक्षाओं का है, जिनका ज़िंदा रहना आवश्यक है।

-महेश जोशी खरगोन

000

'विभोम-स्वर' के आख़िरी पन्ने में सुबीर जी ने जो कुछ लिखा अक्षरश: सत्य है।

सच पूछा जाए तो इसमें लेखक की तल्खियाँ है जो कुकुरमुत्तों की तरह जगह-जगह ऊग आए स्वयं को लेखक कहने वालों के लिए गाहे-बगाहे जाहिर हुई हैं। स्वनामधन्य लेखकों की सुनामी आई हुई है जो भाषा और साहित्य दोनों को बहा लिये जा रही है। सरस्वती के साधकों के लिए सिर धुनने का वक़्त है जब कोई पूछ ले कि "आप मेरे लाइव पे नहीं आए?"

ग़लती से कहीं आपने मात्रा, वर्तनी, छंद का हवाला दिया तो यह आपकी बिना माँगे की सलाह पुकारी जाती है जो सदैव अपमान का शिकार होती है। कमाल की बात है कि बिना माँगे की तारीफ़ लेने में उन्हें कोई गुरेज़ नहीं है।

सुबीर जी की लेखनी ने कमाल की व्याज निंदा और व्याज स्तुति का संतुलन प्रस्तुत किया है। किसी भी गंभीर रचनाकार को ये स्थितियाँ विचलित करती हैं और मन के विचलन से कलम और रचनाकार के मध्य जो कोण निर्मित होता है वही इस उत्कृष्ट लेखन को निर्मित करता है, उन्हें साधुवाद!

-रश्मि स्थापक

000

राजेन्द्र यादव को संपादकीय लेख के लिये आज भी याद किया जाता है। 'हंस' के संपादकीय लेखों पर कई अंकों तक चर्चा होती थी। राजेन्द्र माथुर के संपादकीय हलचल पैदा करते थे। आपातकाल के विरोधस्वरूप एक दिन हिंदुस्तान के अख़बारों ने संपादकीय स्तंभ खाली छोड़ दिया था। 'किस्सा कोताह' के संपादक लगातार मिल रही फ़ोन पर धमकियों के कारण दो-तीन महीनों तक अवसाद में रहे।

बचपन से आदत रही है संपादकीय पढ़ने की। यह संस्कार खण्डवा की एक पीढ़ी को श्रीकांत जोशी जी से मिला। संपादक सिर्फ संपादकीय नहीं लिखता। प्राप्त रचनाओं और समाचारों को पढ़ता है, उसे परखता है और उन्हें अनुकूल बनाता है। उसे अधिकार होता है कि वह आपकी ग़लतियों को अपने पत्र-पत्रिकाओं के हित में सुधारे और परिष्कृत रूप देकर प्रकाशित करे या निरस्त कर दे। यह अधिकार होने के बाद भी आजकल यह चलन में है कि संपादक रचना में आवश्यक सुधार हेतु लेखक की सहमति माँग लेते हैं, यह उनकी भलमनसाहत ही कही जानी चाहिए।

जुलाई से सितंबर 2020 के 'विभोम-स्वर' में संपादक पंकज सुबीर साहित्य की दुर्दशा को लेकर व्यंग्य करते दिखाई देते हैं।

दरअसल वह व्यंग्य नहीं है। यह क्षोभ है साहित्य की हालत के प्रति, यह गुस्सा है उनके प्रति जो लिखते नहीं सिर्फ दिखते हैं। यह लानत है उन लोगों के प्रति जो सब कुछ जानकर भी ऐसे छद्म लेखकों का मान इसलिए रखते हैं कि उन्हें भी अपना मान रखवाना है। फलाने 'वाज लाइव' से उन्हें पीड़ा होती है, हिन्दी और हिन्दी साहित्य की दुर्दशा पर। पंकज जी जब लिखते हैं कि एक दूसरे की पीठ खुजाने में लोग पीछे नहीं हैं तो वे फेसबुक की कमज़ोरी जाहिर करते हैं। यह उतना ही सही है कि हम फेसबुक और वॉट्सएप पर झूठी तारीफ़ करते हैं। हम सच इसलिए नहीं लिखते क्योंकि इससे किसी की सार्वजनिक अवमानना हो सकती है और यह आलोचना करने वाले पर भारी भी पड़ सकता है।

क्या हम ऐसा करके एक छद्म साहित्यिक बिरादरी पैदा नहीं कर रहे हैं ? जो एक दिन ख़राब मुद्रा की तरह एक अच्छी मुद्रा को चलन से बाहर कर देगी ? किन्तु ऐसा होगा नहीं, न ही ऐसा होना संभव है। किंतु हमें साहित्य के प्रति ईमानदार होना सीखना ही होगा।

-शैलेन्द्र शरण

000

पंकज सुबीर ने आज के माहौल का जो वर्णन किया है, उसका हर वाक्य अपने आप में एक करारा व्यंग्य है। सच ही है कि यदि कोरोना भारत में अपने पदार्पण के प्रभाव को जानता तो कदाचित कभी भारत में नहीं आता। हम भारतीय संस्कृति को एक संवेदनशील संस्कृति के रूप में जानते हैं लेकिन जो संवेदनहीनता का परिचय आज भारतीयों द्वारा दिया जा रहा है, वह विश्व में हमें कहाँ स्थापित करता है वह विचारणीय है। हर ओर जो एक विद्रूप सा जगा है, उसे त्रासद बना देते हैं, इस प्रकार के क्रिया कलाप। पंकज जी की शैली की सबसे बड़ी बात जो है वह यह है कि व्यंग्य होते हुए भी भाषा बहुत मर्यादित है, और साथ ही दृश्य प्रभाव उत्पन्न होता है, और कहीं भी बोझिलता अनुभव नहीं होती।

साहित्य की दुर्गति के साथ ही जो संगीत के क्षेत्र में भी नित नए स्वांग रचे जा रहे हैं, उनका भी यथार्थ चित्रण किया गया है। वैसे भी सोशल मीडिया पर विदेशी चुनौतियों के जो हास्यास्पद भारतीय संस्करण चल रहे हैं, उनके बारे में कुछ कहना ही व्यर्थ है।

कुल मिलाकर पंकज सुबीर जी का यह आख़िरी पन्ना समझ कर भी अनजान बनने वालों को बहुत कुछ समझा जाता है और स्वघोषित साहित्यकारों की घोषणा का खोखलापन भी दिखा देता है।

-गरिमा चौरे

000

यह आत्ममुग्धता का दौर है.. इस दौर में सब कुछ पाने की हड़बोंग मची है, यश प्राप्ति की चाहत सभी में होती है। उसके लिए साधना का पथ है, जिस पर चलते हुए यश शनैः-शनैः प्राप्त होता है।

फेसबुक, इंस्टाग्राम की दुनिया में आदमी धीरज खोता जा रहा है। यश प्राप्ति यशलिप्सा हो गई है, जबकि साहित्य जीवनचर्या का वह अंग है, जिसमें अनुभूतियों और विचारों का समग्रत: प्रतिबिंबन होता है। जो धीरज माँगता है।

आज फेसबुक पर लाइव होना एक फैशन की तरह हो गया है, एक ग्लैमर है, जिसमें कई स्वनामधन्य नव साहित्यकार रोज़-रोज़ लाइव प्रकट होकर विभिन्न साहित्यिक विधाओं में अपनी रचनाएँ लेकर उपस्थित हो रहे हैं, जिसमें मात्र यश कामी होना दिख रहा है।

उनकी प्रस्तुत रचनाओं में जीवन संघर्ष और वैचारिकता का स्तर लगभग शून्य है। 'विभोम-स्वर' के संपादक और लोकप्रिय उपन्यासकार श्री पंकज सुबीर ने, इस कोरोनावधि में होने वाले लाइव साहित्यिक कार्यक्रमों को लेकर बहुत सूक्ष्मता से चुटकी लेते हुए कटाक्ष किया है।

'विभोम-स्वर' पत्रिका का आख़िरी पृष्ठ वर्तमान में फेसबुक की साहित्य की दुनिया पर तीक्ष्ण व्यंग्य है।

-अरुण सातले

000

'विभोम-स्वर', जुलाई -सितंबर 2020 की कहानी की भूमिका में जो "रे छपरा" संबोधन आगे चलकर जब लेखिका उसका विस्तार कर उस संबोधन में नायक के स्वयं को पूरा जला मान लेने की बात लिखती हैं। पढ़कर मैं ठिठक गई। सहज से दिखने वाले एक वाक्य में बहुत बड़ी व्यंजना को सहजता से बुन देती है।

कहानी में एसिड पीड़िता के चरित्र और भारतीय परिवारों की बसावट और बुनावट के बारे में जो लिखा है; वह भी जीवंत लगा। एक युवा जो छोटी जगह से आकर भी बड़े शहर की चकाचौंध को धता बताते हुए मानवीय सुन्दरता की भीतरी लकीर पर चलकर सत्यम् शिवम् सुन्दरम् की पूर्णता को पाना चाहता है।

सबसे ज़्यादा मेरा ध्यान कहानी के उस भाग ने खींचा, जहाँ एक बेटा मानवीय भावना के चरम जाकर चरखी को पाना चाहता है। वही बेटा स्त्री की कोमल भावना पर प्रहार करता है। अपना काम बनाने के लिए उसी फ़ॉर्मूले का प्रयोग करता जो कोई एक मौका परस्त पुरुष करता। बेटा जानता है कि स्त्री को समाज में उपेक्षा के अलावा कुछ नहीं दिया जाता। उपेक्षा ही कुंठा को जन्म देती है। उसकी माँ जो चरखी को लेकर कुछ भी सुनने के लिए राज़ी नहीं होती है वही अपनी तारीफ़ सुनकर पानी बन जाती है। इस कहानी को पढ़कर लगता है कि स्त्री को अपनी आत्मा को पुष्ट रखने के लिए चारों खाने चौकन्ना रहना पड़ेगा। कहानी बहुत कुछ सोचने पर मजबूर करती है। लेखिका को अनेक-अनेक सस्नेह बधाई और साधुवाद। न मैं समीक्षक हूँ न आलोचक बस एक जिज्ञासु पाठक की तरह कहानी पढ़ती हूँ।

-कल्पना मनोरमा, सुब्रोतो पार्क, नई दिल्ली, मोबाइल- 8953654363

000

मैं यह देखकर दंग हूँ कि दो अलग-अलग स्थानों से निकलने वाली अलग-अलग पत्रिकाओं की सोच में कितना साम्य है। दोनों वरिष्ठ संपादकों की चिंता एक ही है। वाह वाह टेलीपैथी, जो बात सारे सोशल मीडिया

को लेकर वीणा ने कही, वही बात केवल फेसबुक को लेकर 'विभोम-स्वर' के आख़िरी पन्ने में पंकज सुबीर जी कही। वे कहते हैं कि फेसबुक के माध्यम से और वह भी इस कोरोना के दौर में इतना बड़ा साहित्यकार वर्ग खड़ा हो गया है कि यदि आप भीड़ में एक पत्थर फेंकेंगे तो वह दो साहित्यकारों को जाकर लगेगा। आजकल हर कोई अपनी प्रोफाइल में साहित्यकार होने का आई डी कार्ड रोप रहा है। फेसबुक पर जैसे बाढ़ आ गई है। दिन भर में एक दो दर्जन तथाकथित साहित्यकार लाइव रहते हैं। कब और किसको सुनें। लाइव के पूर्व बाकायदा सूचना आती है। न सुनो तो नाराज़गी, कल वे आपका लाइव नहीं देखने वाले। वे कहते हैं इस महामारी के फेसबुक दौर में साहित्य को जैसे ग्रहण ही लग गया है। साहित्य का क्या हाल होगा, अब तो राम पर ही निर्भर है। वैसे भी अगस्त के बाद से राम ही इस बीमारी को सँभाल ले ऐसी प्रार्थना पंकज सुबीर कर रहे हैं। सोशल मीडिया पर अपरिपक्व साहित्य की चिंता को अपने आख़िरी पन्ने में उकेरने के लिए पंकज सुबीर का हृदय से आभार!

श्रीमति रेखा राजवंशी जी एक संवेदनशील कहानीकारा हैं। 'फेयरवेल' उनकी उत्तम कहानियों में से एक है। यह कहानी विभोम-स्वर के अप्रैल-जून 2020 अंक में प्रकाशित है। कहानी का मूलस्वर, भारत और आस्ट्रेलिया आदि देशों के व्यावहारिक और सामाजिक दृष्टिकोण की भिन्नता को स्पष्ट करता है। प्रेम और विश्वास तो लगभग समान लगता है। किंतु फिर भी बहुत कुछ अलग है।

कहानी के मुख्यपात्र ज्योति और उसके पति पिछले 25 वर्षों से सिडनी में रहते हैं। वे वहाँ के सामाजिक आचार व्यवहार में ढल चुके हैं। फिर भी कई मायनों में भारतीयता आज भी नहीं छोड़ी है। पति अपूर्व भारतीय भोजन ही लेता है। बेटा बड़ा होकर वकील बन गया है और अन्य शहर में रहता है। ज्योति भी नौकरी करती है। तीनों वीकेंड पर ही मिल पाते हैं। एक दिन एक इनविटेशन देख कर ज्योति पुरानी यादों में खो जाती है। उन्हें एक माह बाद 7 अक्टूबर को एडवर्ड के फेयरवेल में जाना है। वह कैलेंडर मार्क कर लेती है। 25 बरस पहले वे जब पहली बार सिडनी आए थे। एडवर्ड के यहाँ पेइंग गेस्ट रहे थे एक महीने। एडवर्ड और उसकी पत्नी ग्रेस ने उनका कितना सहयोग किया था। यहाँ तक कि नौकरी और मकान दोनों के लिए बहुत मदद की थी। एडवर्ड बहुत मस्त और सहयोगी स्वभाव का था। जीवन की व्यस्तताओं ने हमें बहुत दूर कर दिया। अब कभी कभार सिर्फ़ फ़ोन पर बात होती है।

और आज यह इनविटेशन कार्ड देख कर वह चौंक गई थी। सोच रही थी शायद एडवर्ड रिटायर्ड हुआ होगा। उसे याद आता है क्रोनुला का समुद्र तट, वह विल और जिल के साथ कितनी मस्ती करती थी। और उधर एडवर्ड और उसकी पत्नी ग्रेस एक तरफ बैठे प्रेम के पलों का आनन्द लेते थे।

दूर होने के बाद, समय पानी जैसा बह गया पता ही नहीं चला कि 25 बरस कब निकल गए। हम तीनों 7 अक्टूबर को ठीक समय पर उसकी पसन्द की शैम्पेन की बोतल सुन्दर पैकिंग में लेकर उसके घर पहुँच गए थे। बहुत मेहमान आए थे। पर एडवर्ड कहीं दिखाई नहीं दे रहा था। हम सामने की कुर्सियों पर बैठे तभी ग्रेस एक व्हीलचेयर धकाते हुए लाउंज में आई। व्हीलचेयर पर एक बहुत दुबला-पतला बीमार आदमी बैठा था। बमुश्किल उसे पहचान पाए वह एडवर्ड ही था। फिर उनके पुत्र जिल ने माँ ग्रेस को माइक दिया। ग्रेस ने बताया, एडवर्ड पिछले 5 सालों से एक लाइलाज बीमारी "एम एस ए" से ग्रसित था। ग्रेस ने माइक एडवर्ड को दिया। आज आयोजित कार्यक्रम का रहस्य बतलाने।

फेयरवेल पार्टी थी लेकिन किसी के चेहरे पर उल्लास नहीं था सभी मेहमान चुपचाप थे।

और एडवर्ड ने अपने काँपते हाथों में माइक लेकर राज़ खोला-

"मैं इस भयानक रोग से ग्रसित हूँ। इसका कोई इलाज नहीं है। मुझे पसंद नहीं कि अपनी पत्नी या परिवार पर बोझ बन कर जियूँ। इसलिए पूरे परिवार की सहमति से मैंने यह फैसला लिया है कि मैं "यूथोनेसिया ले लूँगा"। यह सुन कर हम सन्न रह गए। तो यह बात थी फेयरवेल के लिए। यूथोनेसिया मतलब "इच्छा मृत्यु", ज्योति के तो आँसू आँखों से बेकाबू हो रहे थे। ज्योति लगातार इस बात से परेशान थी कि ग्रेस ने एडवर्ड की इच्छा मृत्यु को कैसे स्वीकार किया होगा? उनके बीच बहुत गहरा प्रेम था। और मैं इस बात को लेकर परेशान हूँ कि क्या ऐसी परिस्थितियों में इच्छा मृत्यु को स्वीकार किया जाना चाहिए ?

ख़त्म होते-होते कहानी ने कई गंभीर प्रश्न खड़े किए हैं।

-श्याम सुंदर तिवारी

000

नमस्कार ! अति हर्ष और उमंग के साथ 'विभोम-स्वर' का अप्रैल-जून 2020 का अंक मिला। मिलते ही पढ़ना शुरू किया। लॉक डाउन और विश्व में सभी कार्य बंद होने से अंक आने में देरी हो गई। लेकिन जब प्रति हाथ में आई, तब बड़ी राहत महसूस हुई, लगा संसार में जल्द ही सब कुछ ठीक होकर सुचारु रूप से शुरू हो जाएगा। लम्बी प्रतीक्षा के बाद आए अंक में सबसे पहले कविताओं को कुछ साँसों में पढ़कर ख़त्म किया। उदास मन, धुएँ के बादल, वह आई, हँसी की चवन्नी, लकड़ी और लड़की, बुरे दौर में, प्रेम सभी कविताओं के साथ कई भावों, जज़्बातों को एक साथ जी लिया और अंत में कमलेश कमल की कविता "सूखा" जिसे पढ़कर भीतर बहुत कुछ सूख गया। सूख गया वह सुख जिसे हम भोगते हैं। बिना सोचे समझे अपना हक़ समझकर। अपना अधिकार जताकर छद्म सुख, भाड़े का सुख जिसका दंभ भरते। हृदय को हिला गई यह कविता, सच्चाई को दिखाकर स्वयं से प्रश्न करने पर मजबूर कर। "बुरे दौर में", "सहानुभूति" कविताएँ जागरूक करती हैं। शैलेन्द्र शरण जी की कविताएँ उस छद्म दौर की पोल खोलती हैं, जिसमें हम जी रहे हैं। प्रभावित करती कहानियों में हर्षबाला की "एक पीला उदास आदमी" ने खासा ध्यान खींचा। कहानी का शिल्प और कहने का अंदाज़ बहुत निराला था। सिनिवाली शर्मा की कहानी "गिरेबाँ"

प्रभावशाली लगी,जैसा करोगे वैसा भरोगे बड़े-बूढ़े कहते हैं, एक बार फिर याद दिलाती। लघुकथा "बॉयफ्रेंड" ठंडे, खुशबूदार हवा के झोंके की तरह लगी, पढ़कर सुखद अनुभूति हुई। चन्द्रकान्ता की लघुकथा "अहसास" उस समय की याद दिलाती है जब धर्मों के कारण हुए बँटवारों में लाखों लोगों की जान की बलि चढ़ गई; लेकिन इंसानियत की कई कही-अनकही, सुनी-अनसुनी कहानियाँ आज भी सुकून देती हैं जहाँ जीवन का मूल्य धर्म के ऊपर है। डॉ. कुसुम नैपसिक की कहानी "अकेलापन" उस अकेलेपन का दिल को छू लेने वाला वर्णन बयाँ करती है, जो बुज़ुर्ग माँ -पिता अमेरिका में आकर सूनापन महसूस करते हैं, किसी से बात करने को तरस जाते हैं। अपने अस्तित्व को खो देते हैं। मज़बूरी में यहाँ वक्त गुज़ारने पर मजबूर हो जाते हैं, जो वक्त गुज़रने का नाम ही नहीं लेता, उल्टा अकेलापन घेर लेता है। लेकिन कहानी में लता उस अकेलेपन से कैसे उभरती है बहुत ही सुखद हल लेखिका ने सुझाया है। कहानी सरल और सशक्त। एक और कहानी जिसने बहुत ध्यान खींचा जिसे पढ़कर पाठक चौंक जाता है और रोंगटे खड़े करती है, अत्यंत कम शब्दों में असरदार कहानी जिसे पाठक लंबे समय तक याद रखेगा, वह है विकेश निझावन द्वारा लिखी "पोस्टमार्टम" कहानी। सुधाजी द्वारा जब संपादकीय लिखा गया, तब चीन के बाद यूरोप के कई देशों में और अमेरिका में कोरोना ने अपने पाँव जमा तबाही मचाना शुरू ही किया था। सुधा जी द्वारा लगाए गए अनुमान पूर्णत: सत्य साबित हुए है और तथ्य चेताते हैं कि भविष्य के लिए देशों की सरकारों को तैयार रहना होगा। सम्पूर्ण विश्व में अब देशों की सोच में, सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक परिस्थितियों में कई परिवर्तन होंगे। संपादकीय रोचक और जानकारी से परिपूर्ण। एक बहुत ही उम्दा, रोचक, सार्थक अंक के लिए सुधा जी, पंकज जी और पूरी टीम को ढेरों बधाइयाँ और शुभकामनाएँ!!

-रेखा भाटिया, शार्लोट, यू एस ए

000

फार्म IV

समाचार पत्रों के अधिनियम 1956 की धारा 19-डी के अंतर्गत स्वामित्व व अन्य विवरण (देखें नियम 8)।

पत्रिका का नाम : विभोम स्वर

1. प्रकाशन का स्थान : पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मप्र, 466001

2. प्रकाशन की अवधि : त्रैमासिक

3. मुद्रक का नाम : ज़ुबैर शेख़।

पता : शाइन प्रिंटर्स, प्लॉट नं. 7, बी-2, क्वालिटी परिक्रमा, इंदिरा प्रेस कॉम्प्लैक्स, ज़ोन 1, एमपी नगर, भोपाल, मप्र 462011

क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।

(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

4. प्रकाशक का नाम : पंकज कुमार पुरोहित।

पता : पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मप्र, 466001

क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।

(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

5. संपादक का नाम : पंकज सुबीर।

पता : रघुवर विला, सेंट एन्स स्कूल के सामने, चाणक्यपुरी, सीहोर, मप्र 466001

क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।

(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

4. उन व्यक्तियों के नाम / पते जो समाचार पत्र / पत्रिका के स्वामित्व में हैं। स्वामी का नाम : पंकज कुमार पुरोहित। पता : रघुवर विला, सेंट एन्स स्कूल के सामने, चाणक्यपुरी, सीहोर, मप्र 466001

क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।

(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

मैं, पंकज कुमार पुरोहित, घोषणा करता हूँ कि यहाँ दिए गए तथ्य मेरी संपूर्ण जानकारी और विश्वास के मुताबिक सत्य हैं।

दिनांक 20 मार्च 2020

हस्ताक्षर पंकज कुमार पुरोहित

(प्रकाशक के हस्ताक्षर)

लेखकों से अनुरोध

'विभोम-स्वर' में सभी लेखकों का स्वागत है। अपनी मौलिक, अप्रकाशित रचनाएँ ही भेजें। पत्रिका में राजनैतिक तथा विवादास्पद विषयों पर रचनाएँ प्रकाशित नहीं की जाएँगी। रचना को स्वीकार या अस्वीकार करने का पूर्ण अधिकार संपादक मंडल का होगा। प्रकाशित रचनाओं पर कोई पारिश्रमिक नहीं दिया जाएगा। बहुत अधिक लम्बे पत्र तथा लम्बे आलेख न भेजें। अपनी सामग्री यूनिकोड अथवा चाणक्य फॉण्ट में वर्डपेड की टैक्स्ट फ़ाइल अथवा वर्ड की फ़ाइल के द्वारा ही भेजें। पीडीऍफ़ या स्कैन की हुई जेपीजी फ़ाइल में नहीं भेजें, इस प्रकार की रचनाएँ विचार में नहीं ली जाएँगी। रचनाओं की साफ़्ट कॉपी ही ईमेल के द्वारा भेजें, डाक द्वारा हार्ड कॉपी नहीं भेजें, उसे प्रकाशित करना अथवा आपको वापस कर पाना हमारे लिए संभव नहीं होगा। रचना के साथ पूरा नाम व पता, ईमेल आदि लिखा होना ज़रूरी है। आलेख, कहानी के साथ अपना चित्र तथा संक्षिप्त सा परिचय भी भेजें। पुस्तक समीक्षाओं का स्वागत है, समीक्षाएँ अधिक लम्बी नहीं हों, सारगर्भित हों। समीक्षाओं के साथ पुस्तक के कवर का चित्र, लेखक का चित्र तथा प्रकाशन संबंधी आवश्यक जानकारियाँ भी अवश्य भेजें। एक अंक में आपकी किसी भी विधा की रचना (समीक्षा के अलावा) यदि प्रकाशित हो चुकी है तो अगली रचना के लिए तीन अंकों की प्रतीक्षा करें। एक बार में अपनी एक ही विधा की रचना भेजें, एक साथ कई विधाओं में अपनी रचनाएँ न भेजें। रचनाएँ भेजने से पूर्व एक बार पत्रिका में प्रकाशित हो रही रचनाओं को अवश्य देखें। रचना भेजने के बाद स्वीकृति हेतु प्रतीक्षा करें, बार-बार ईमेल नहीं करें, चूँकि पत्रिका त्रैमासिक है अत: कई बार किसी रचना को स्वीकृत करने तथा उसे किसी अंक में प्रकाशित करने के बीच कुछ अंतराल हो सकता है।

धन्यवाद

संपादक

vibhom.swar@gmail.com

साक्षात्कार

साहित्य समाज के दर्पण के साथ-साथ विचारों का भी दर्पण है

(प्रोफ़ेसर नीलू गुप्ता से सुधा ओम ढींगरा की बातचीत)

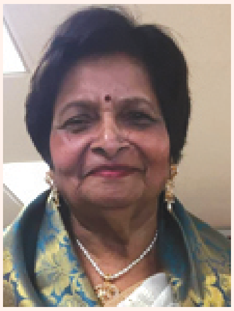

प्रोफ़ेसर नीलू गुप्ता

जन्म स्थान:दिल्ली भारत।

शिक्षा: विद्यालंकार (गुरुकुल कांगड़ी यूनिवर्सिटी हरिद्वार), एम.ए हिन्दी (दिल्ली यूनिवर्सिटी)

प्रकाशन: काव्य संग्रह'फूलों की डाली, हाइकु संग्रह: गगन उजियारा, कहानी संग्रह: सर्वे भवन्तु सुखिन:, सरल हिन्दी भारती, भाग -1, सरल हिन्दी भारती, भाग -2, सरल हिन्दी भाषा व्याकरण। लघुकथा संग्रह और दो कविता संग्रह प्रकाशनाधीन।

संस्थापना / आयोजन : हिन्दी भाषा के प्रचार -प्रसार के लिए 'अखिल विश्व हिन्दी ज्योति' संस्था की स्थापना, भारतीय संस्कृति की धरोहर को जीवंत रखने के लिए 'उत्तर प्रदेश मंडल ऑफ़ अमेरिका, (उपमा) की संस्थापना, काउंसलेट के तत्वावधान में आयोजित 'हिन्दी दिवस' की आयोजिका,

पुरस्कार: 2002 आई सी सी, 2003 सांता क्लारा काउंटी द्वारा सम्मानित, विश्व हिन्दी सचिवालय, मारीशस द्वारा आयोजित अंतर्राष्ट्रीय कविता प्रतियोगिता तथा अंतर्राष्ट्रीय लेख प्रतियोगिता में पुरस्कृत तथा अंतर्राष्ट्रीय कवि-सम्मेलनों का आयोजन व भागीदारी। हिन्दी सेवा के लिए कौंसलावास, सैनफ्रांसिस्को, कैलिफ़ोर्निया द्वारा सम्मानित, संस्कृत भारती, दिल्ली द्वारा सम्मानित।

संप्रति: हिन्दी प्रोफ़ेसर, डी एन्ज़ा कॉलेज, कुपरटीनो, यू एस ए

संपर्क- 5599 Buchanan Place Fremont, CA.94538

मोबाईल- 510-550-5120

ईमेल- nilugupta@yahoo.com

कथाकार, कवयित्री, अमेरिका में हिन्दी की प्रचारक और कैलिफ़ोर्निया के 'डी एन्ज़ा' कॉलेज में हिन्दी की प्राध्यापिका नीलू गुप्ता से मैंने विभोम-स्वर के लिए ऑन लाइन और फ़ोन पर बातचीत की। अंतर्राष्ट्रीय हिन्दी समिति, यू एस ए हर वर्ष वार्षिक अधिवेशन करती है, वहीं एक कवि सम्मेलन में मैंने नीलू गुप्ता की विटी और चुटीली कविताएँ सुनी थीं। हिन्दी के प्रति नीलू जी के समर्पण से मैं परिचित हूँ और आपकी उपलब्धियों की भी सूचनाएँ मुझे मिलती रहतीं है। प्रस्तुत है, साहित्य-सृजन के साथ -साथ कई संस्थाओं की संस्थापक और कई संस्थाओं को सहयोग देने वालीं प्रोफ़ेसर नीलू गुप्ता से हुई बातचीत-

नीलू गुप्ता जी, आपने अमेरिका में हिन्दी के प्रचार-प्रसार के लिए बहुत कार्य किया है। मैं चाहती हूँ कि आप हमारे पाठकों को बताएँ कि विदेशी धरती पर आपने अपनी भाषा की ज्योति कैसे जलाई और ऐसा करने की प्रेरणा आपको कहाँ से मिली?

सर्वप्रथम तो आपका आभार तथा धन्यवाद इस अमूल्य साक्षात्कार के लिए। अमूल्य इसलिए नहीं कि पाठक और जिज्ञासु मेरे विषय में जानें बल्कि इसलिए कि विदेश में रहकर हम प्रवासी भारतीय अपनी सभ्यता, संस्कृति व अपनी मातृभाषा के प्रति कितने जागरूक हैं, इसको हमारे पाठक जानें। हम वासी हों या प्रवासी, रहें कहीं भी, मातृभूमि और कर्मभूमि दोनों के प्रति स्वाभाविक सेवा भाव हमारा कर्त्तव्य होना चाहिए। ऐसा मेरा मानना है, जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरियसी तथा वसुधैवकुटुम्बकम् दोनों का ही महत्त्व मेरे जीवन में बहुत है।

'मेरे देश की माटी मेरे माथे का चन्दन'

मैं मातृभूमि और कर्मभूमि दोनों का करती वन्दन'

मुझे प्रारंभ से ही अपनी मातृभाषा से बहुत लगाव रहा है। भारत में हिन्दी में एम.ए करने के पश्चात् और उससे पूर्व गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय से विद्यालंकार की उपाधि प्राप्त करने के पश्चात्, मेरी इच्छा अध्यापन करने की थी। किन्तु कुछ पारिवारिक कारणों से, मैं यह कार्य न कर सकी और मैं अपने पारिवारिक आयात-निर्यात के व्यापार में कार्यरत हो गई। इस व्यापार में, मैं इतना रच बस गई कि विवाहोपरान्त भी मैं अपने पति को बिज़नेस में ले आई। मेरे पति ने लन्दन से मैकेनिकल इंजीनियरिंग की हुई थी, सरकारी नौकरी में थे पर जैसा मैंने बताया मेरे ऊपर बिज़नेस का इतना अधिक भूत सवार था कि मैंने अपने पति को लेकर यह व्यापार प्रारंभ कर दिया। इस व्यापार के अंतर्गत हमें देश-विदेश में भ्रमण करने का बहुत अवसर मिला। हमने

समस्त विश्व में यह देखा कि यूरोप, जापान, फ्रांस इत्यादि, सभी देशों में सब लोग अपनी - अपनी भाषा में बात करते हैं। इस बात का मेरे ऊपर बहुत प्रभाव पड़ा।

कुछ वर्षों बाद भारत में रहते हुए, जब मैंने अपने बच्चों को कंप्यूटर साइंस की पढ़ाई के लिए अमेरिका भेज दिया। पढ़ने के पश्चात् बच्चे अमरीका में स्थायी रूप से रहने लगे। अच्छी-अच्छी नौकरियाँ उनको मिल गईं। तत्पश्चात् हम भी अमेरिका आ गए और कैलिफ़ोर्निया में अपने परिवार के साथ रहने लगे।

यहाँ आकर मेरे मन में हिन्दी पढ़ाने की जो दबी हुई ललक थी। वह फिर से जागृत हो उठी और मैंने देखा कि यहाँ पर भी लोग विभिन्न देशों से आए हुए हैं जैसे चाइनीज़, जैपनीज़, फिलीपिनीज़, कोरियन यानी सभी लोग अपनी-अपनी भाषा में बात करते हैं। केवल हमारे भारतीय लोग हिन्दी में बात न कर, अंग्रेज़ी में बात करना ज़्यादा पसंद करते हैं। मुझे बड़ा नागवार गुज़रा। मैंने धीरे-धीरे सबको प्रेरित किया कि वे सब अपनी भाषा हिन्दी को अपनाएँ और जिनको हिन्दी नहीं आती उनको हिन्दी सिखाने का मैंने बीड़ा उठाया। इस कार्य में मुझे पूर्ण सफलता मिली।

इससे पूर्व मैं कुछ वर्ष बेल्जियम, हॉलैंड में रही, वहाँ भी मैंने हिन्दी का प्रचार-प्रसार किया। मेरा बेटा हालैंड के इन्टरनेशनल स्कूल में पढ़ता था। उसने द्वितीय भाषा के रूप में हिन्दी ली थी। किन्तु वहाँ हिन्दी के अध्यापक नहीं थे तो उन्होंने मुझे हिन्दी अध्यापन का अवसर दिया।

हिन्दी को बढ़ावा देने के लिए आपने जो कार्य किये, हमारे पाठकों से साझा कीजिए ताकि वे भी हिन्दी के प्रति आपकी प्रतिबद्धता को जान सकें।

मुझे अपनी मातृभाषा हिन्दी से बहुत ही लगाव रहा है। मेरा मानना है कि सबको अपनी-अपनी मातृभाषा प्रिय है और मुझे मेरी अपनी मातृभाषा हिन्दी क्योंकि यह मेरी माँ की बोली है।

मेरी हिन्दी बोली, मेरी माँ की बोली
मेरी माँ की बोली, मीठी- मीठी बोली
जैसे मुँह में मिसरी सी घोली
जैसे कोयलिया अम्बुआ डार डोली
और कुहुक -कुहुक बोली
मेरी हिन्दी बोली मीठी बोली

अत: अपनी मातृभाषा के इस प्रेम के कारण मैंने सभी अहिन्दी भाषी मराठी, गुजराती, पंजाबी, सिंधी, तमिल, तेलगू इत्यादि, जो लोग हमें सीनियर सेंटर में मिलते थे। उनको हिन्दी सिखाना प्रारंभ किया।

इंडिया कम्युनिटी सेंटर में 'छज्जू का चौबारा' नाम से एक कार्यक्रम चलता था। इसमें बड़ी संख्या में बुज़ुर्ग अपनी कविताएँ, लेख, संस्मरण इत्यादि लिखकर लाते थे। इसमें मैं वर्ष 2000 में अध्यक्ष के पद पर नियुक्त हुई। हिन्दी संबंधी कार्यक्रम के अतिरिक्त राखी, होली, दिवाली इत्यादि त्यौहार भी मनाने प्रारम्भ किए।

कवि सम्मेलन की प्रथा भी प्रारम्भ की, जिसमें स्थानीय तथा भारत से भी आमन्त्रित कवि आकर कविता पाठ करते रहे।

कहना न होगा कि हिन्दी का प्रचार-प्रसार बढ़ने लगा। अपनी मातृभाषा के प्रति सबका रुझान बढ़ रहा था और युवा माता-पिता भी अपने बच्चों को हिन्दी सिखाने में रुचि लेने लगे। मैंने इंडिया कम्यूनिटी सेंटर में रविवार के दिन विभिन्न आयु वर्ग के बच्चों के लिए चार कक्षाएँ प्रारम्भ कर दीं। अन्य स्थानों में मंदिरों और घरों में भी लोग हिन्दी पढ़ाने लगे। सनातन धर्म मन्दिर तथा चिन्मय मिशन में भी बच्चों को हिन्दी सिखाने में मेरी भागीदारी रही। जहाँ बहुत बड़ी संख्या में बच्चे हिन्दी सीखते थे।

इसी बीच मुझे सांता क्लारा काउंटी की 300 पृष्ठ की पुस्तक 'रिसोर्स गाइड' का हिन्दी में अनुवाद करने का अवसर प्राप्त हुआ। मैंने इसका हिन्दी में अनुवाद किया और इसके द्वारा हमारे सभी भारतीय अप्रवासी बहन-भाइयों को यहाँ पर मिलने वाली समस्त सुविधाओं के बारे में ज्ञात हुआ। जैसे कम आमदनी वाले बुज़ुर्गों को नि:शुल्क मेडिकल तथा यातायात इत्यादि की अनेकों सुविधाएँ। यह पुस्तक लाभकारी पुस्तक है और इसका अनुवाद सरल भाषा में किया गया। इसके लिए मुझे काउंटी से पारितोषिक और प्रमाण पत्र भी दिया गया। यह मेरा अमेरिका में आने के बाद हिन्दी के लिए प्रथम कार्य था।

इसके पश्चात् एक अन्य पुस्तक जो मजूमदार जी ने 'मैप ऑफ मेज़' लिखी थी। इसका भी मैंने हिन्दी में अनुवाद किया। इस पुस्तक के द्वारा भी कुछ अन्य बातें जो यहाँ रहकर जाननी आवश्यक थीं। सोशल सिक्योरिटी इत्यादि के द्वारा हम कैसे लाभान्वित हो सकते हैं। ये सब जानकारी इसमें दी गईं है। इसका अनुवाद भी बहुत सफल रहा।

एक अन्य संस्था 'विश्व हिन्दी न्यास' जो न्यूयॉर्क में चल रही थी। उसका यहाँ पर एक चैप्टर खोला गया, उसमें मुझे अध्यक्षा पद पर नियुक्त किया गया। जब हमने इसका वार्षिकोत्सव किया तो बड़ी मात्रा में धन एकत्रित किया और उससे हमने लगातार दो दिन का वार्षिकोत्सव किया। जिसमें सभी बच्चों को जो हिन्दी सीख रहे थे, बोलने का अवसर दिया, उनकी कविताएँ, नाटक इत्यादि प्रस्तुत कराए गए। इस तरह हम हिन्दी का प्रचार-प्रसार कैलिफ़ोर्निया में करते रहे।

2006 में हमारे प्रयत्न द्वारा हिन्दी को कैलिफ़ोर्निया के 'डी एन्जा ' नामक कॉलेज में द्वितीय भाषा के रूप में मान्यता मिल गई। यह हिन्दी भाषा के लिए एक बहुत बड़ा कार्य था। जिसमें हमें सफलता मिली और अन्य भाषाओं की भाँति कॉलेज में अब यहाँ पर हाई स्कूल के विद्यार्थियों को कॉलेज जाने के लिए हिन्दी भाषा में क्रेडिट दिए जाने लगे। सौभाग्यवश इसमें मेरी नियुक्ति 2006 में प्राध्यापिका के पद पर हो गई।

स्टारटॉक नामक सरकारी कार्यक्रम के अन्तर्गत तकनीकी शिक्षा का डिप्लोमा लेकर मैंने हिन्दी सिखाने को नए आयाम दिए।

डी एल आई (डिफ़ेन्स लैंग्वेज इन्स्टिट्यूट) तथा फ़ेडरल सरकार द्वारा संचालित ACTFEL के अन्तर्गत हिन्दी प्रूफ़ रीडर का भी कार्य कई वर्षों तक किया।

न्यूयार्क, भोपाल, मॉरिशस इत्यादि विश्व हिन्दी सम्मेलनों में भागीदारी रही।

देश- विदेश में होने वाले क्षेत्रीय हिन्दी

सम्मेलनों में भी भागीदारी रही।

नागरी प्रचारिणी सभा दिल्ली द्वारा विदेश में देवनागरी लिपि के प्रचार-प्रसार के लिए विशेष रूप से सम्मानित किया गया।

कोरोना काल में भारत के अनेकों विश्वविद्यालयों के वेबिनार तथा कविसम्मेलनों में सहभागिता रही। विशेषकर वर्धा अंतर्राष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय, अटल बिहारी हिन्दी विश्वविद्यालय भोपाल तथा राँची, मुम्बई, हरियाणा, राजस्थान इत्यादि अनेक विश्वविद्यालयों के अन्तर्गत।

प्रवासवास आपके लेखन में कितना सहायक रहा।

प्रवासवास मेरे लेखन में बहुत अधिक सहायक रहा। मेरे लेखन और हिन्दी के प्रचार-प्रसार के कार्य का समस्त श्रेय मेरे प्रवासवास को ही जाता है। अपने प्रवासवास में ही मैंने यह अनुभव किया कि यहाँ पर हिन्दी का प्रचार-प्रसार करने की बहुत अधिक आवश्यकता है। अत: मैंने सहर्ष इस कार्य को किया। यह हमारा सौभाग्य है कि हम अपनी मातृभाषा को, अपनी भारतीय सभ्यता, संस्कृति की धरोहर को, अपने बच्चों में दे पाए हैं। इस विषय में कहना चाहुँगी जैसे एक चिड़िया जब दाने लेकर उड़ती है तो जहाँ-जहाँ दाने गिरते हैं। वहाँ-वहाँ पौधे उग आते हैं। उसी प्रकार से जब हम प्रवास में अपने देश से जाकर विदेश में बसते हैं तो अपनी सभ्यता, संस्कृति की धरोहर को लेकर चलते हैं। उसको उस नई भूमि में रहने वाली अपनी नन्हीं पौध को सौंपने का कार्य सहर्ष करते हैं।

आप कहानियाँ भी लिखती हैं और कविताएँ भी, कौन सी विधा में आप सहज महसूस करती हैं।

जी, मैं कहानियाँ भी लिखती हूँ और कविताएँ भी, परन्तु मैं कविताएँ लिखने में और कहिए कि कविता लिखने की विधा को अधिक पसंद करती हूँ। कविता संग्रह 'जीवन फूलों की डाली' प्रकाशित हो चुका है और इसके अतिरिक्त दो संग्रह कविताओं के प्रकाशनाधीन हैं। कविता मैं बहुत सहज स्वभाव से लिख लेती हूँ। ई-कविता याहू ग्रुप से भी जुड़ी हूँ। जहाँ हर पन्द्रह दिन में किसी कविता का एक वाक्य दिया जाता है। उस वाक्य को लेकर कविता लिखनी होती है। दो वर्ष से इस समूह में सक्रिय रही हूँ। बहुत सी पत्रिकाओं में लेख, कहानी और कविताएँ छपती रहती हैं। विश्व हिन्दी सचिवालय मारिशस से अंतर्राष्ट्रीय प्रतियोगिता में मेरी कविता 'यहाँ और वहाँ' पुरस्कृत हुई थी। वहाँ से मेरा लेख 'आनन फ़ानन में हिन्दी सीखें' भी पुरस्कृत हो चुका है।

हाइकू विधा में रुचि कैसे हुई? काव्य में यह विधा इतनी प्रचलित नहीं। क्या इससे अपने भाव व्यक्त किये जा सकते हैं?

मैं कहना चाहूँगी कि हाइकु विधा इतनी प्रचलित तो नहीं है हिन्दी साहित्य में। लेकिन कहना न होगा कि अब हिन्दी लेखक इस विधा में काफ़ी लेखन कर रहे हैं। डॉ. जगदीश व्योम जी ने इस विधा में बहुत काम किया है। यह विधा हमारे यहाँ जापान से आई है। मुझे हाइकु विधा में लिखने में आनंद आता है। इसमें हम 'गागर में सागर' भर सकते हैं और बड़ी सी बात को संक्षिप्त रूप में, केवल कुछ अक्षरों में ही कह सकते हैं। इसमें तीन पंक्तियाँ होती है। पहली पंक्ति में पाँच अक्षर, दूसरी पंक्ति में सात अक्षर और तीसरी पंक्ति में पाँच अक्षर होते हैं।

मेरी एक पुस्तक हाइकु संग्रह है जिसका नाम 'गगन उजियारा'' है। इसमें मैंने 600 (छ: सौ) हाइकु लिखे हैं। जो अलग-अलग विषयों पर हैं। जैसे माँ, बिटिया, सीमा प्रहरी, दिवाली, दीपक इत्यादि।

आज की हिन्दी कहानी में भाषा और शिल्प को लेकर बहुत प्रयोग होते हैं। आपकी कहानियाँ अधिकतर संस्मरणात्मक अधिक हैं। ऐसा क्यों?

मेरा अपना मानना है कि कहानी हृदय के उद्घोषित भाव हैं। उनको यदि हम शिल्प और भाषा के रूप में लाएँगे तो कहानी पढ़ने का जो एक आनंद आता है। वह कम हो जाएगा, उसका प्रवाह और प्रभाव अवरुद्ध हो जाएगा। हृदय से हृदय को सीधे बात पहुँचे, ऐसा मेरा मानना है। इसलिए मैं साधारण भाषा में ही लिखना पसंद करती हूँ। मेरी कहानियों में अमेरिका में रहने वाले प्रवासी भारतीयों की सच्ची घटनाओं का विवरण है। मेरी कहानियाँ यथार्थवाद पर आधारित हैं। इन कहानियों में, मैंने समस्या के साथ-साथ उनका समाधान भी प्रस्तुत किया है। पाठकों ने इन कहानियों को बहुत सराहा है।

मेरा एक लघुकथा संग्रह भी आ रहा है। आज का व्यस्त पाठक लघु कहानी को पसन्द करता है; क्योंकि बाहरी शिल्प और भाषा के सौन्दर्य के मुलम्मे को नकारता है। सीधी, सरल, शुद्ध भाषा में लिखी कहानी जो समाज की वास्तविकता से उसको रू-ब-रू कराए, पढ़ना अधिक पसन्द करता है। ऐसा मेरा मानना है। इसीलिए प्रेमचन्द जी का साहित्य आज भी पाठकों को प्रिय और पठनीय है।

समीक्षाकार डॉक्टर सुधांशु कुमार शुक्ला ने मेरे कहानी संग्रह की कहानियों की विस्तृत समीक्षा की है। उनके अनुसार यह कहानी संग्रह 'सर्वे भवन्तु सुखिन:' यथा नाम तथा गुण है। एक-एक कहानी अपने परिवेश का दर्पण है। ये समस्त कहानियाँ समस्याओं के साथ-साथ समाधान भी बताती चलती हैं।

कहानीकार, कथा सम्राट प्रेमचन्द के हस्ताक्षर कमल किशोर गोयनका जी ने निष्पक्ष रूप से इस कहानी संग्रह के बारे में अपने विचार व्यक्त किये है। जो इस प्रकार हैं- ''नीलू गुप्ता की कहानियाँ अमेरिका में भारतीय जीवन का दर्पण हैं। इन कहानियों से भारतीय समाज की समस्याएँ सामने आती हैं और उनके समाधान भी निकलते हैं। लेखिका का मत है कि उसके जीवन में निराशा हताशा के लिए कोई स्थान नहीं है, अत: वे अपनी कहानियों में समाधान भी प्रस्तुत करती है। मेरे विचार में स्वस्थ जीवन-दर्शन में एक सकारात्मक दृष्टिकोण आवश्यक है। प्रेमचन्द ने इसी को आदर्शात्मक यथार्थवाद कहा है। नीलू गुप्ता इस दृष्टि से सफल कहानीकार हैं।''

पाठकों के विभिन्न विचार हो सकते हैं जो सराहनीय हैं।

'निंदक नियरे राखिए पर्णकुटी छवाय' मेरे विचार से स्वस्थ रचना के लिए इसका स्वागत करना चाहिए।

नीलू जी, आप व्यवसायी महिला रही हैं और अब प्राध्यापिका भी हैं। भारत के स्त्री विमर्श और विदेशों के स्त्री-विमर्श में क्या अंतर पाती हैं?

भारत के स्त्री विमर्श और विदेशों के स्त्री-विमर्श में समानता भी है और भिन्नता भी है। यदि एक वाक्य में कहें तो मूलत: दोनों में परिवेश का अन्तर है। यह स्त्री विमर्श ज्वलंत विषय था, भारत में स्त्रियों का शोषण घर में भी और कर्मस्थली पर उच्चपदाधिकारियों के द्वारा होता रहा है। भारत की परिस्थितियों में स्त्री बंधनमुक्त होना चाहते हुए भी नहीं हो सकती। बच्चों की परवरिश, परिवार का मोह, आर्थिक पराधीनता, उसे संघर्षरत रहने को बाध्य करती है। समस्याएँ दोनों की एक सी हैं। परन्तु विदेश की स्त्री आर्थिक रूप से स्वतंत्र है। उसके संस्कार, उसका समाज उसे स्वतन्त्र रहने का अधिकार खुले रूप से देता है। दोनों के परिवेश और धरोहर में मिले संस्कार का अन्तर ही, दोनों का अन्तर है। अन्यथा मूलभूत समस्याएँ दोनों की एक जैसी ही हैं।

लेखन में विचारधारा की आवश्यकता है या विचारों की। आप की राय जानना चाहती हूँ।

हमारा साहित्य विचारों पर आधारित होना चाहिए, ऐसा मेरा मानना है। नकारात्मक और सकारात्मक विचारों पर ही साहित्य का प्रतिरूप होता है। साहित्य समाज के दर्पण के साथ-साथ विचारों का भी दर्पण है। साहित्य है सहित, इस सहित की मूलभावना को लेकर साहित्य लिखा जाना चाहिए। जो मानवमात्र के लिए कल्याणकारी हो न कि किसी विचारधारा के वशीभूत होकर लिखा जाना चाहिए।

आपने हिन्दी भाषा को सरल करके कई किताबें निकाली हैं, जिससे विद्यार्थी आसानी से हिन्दी सीख सकते हैं, अमेरिका में ऐसी किताबों की ज़रूरत भी है। 'डी एन्ज़ा' कॉलेज में आप हिन्दी की प्राध्यापिका हैं, वहाँ हिन्दी की क्या स्थिति है? क्या हमारे पाठकों को आप बताएँगी?

मैंने हिन्दी को बहुत ही सरल सुगम बनाकर पढ़ाने का प्रयत्न किया है। इसके लिए मैंने 'सरल हिन्दी भारती' प्रथम भाग, द्वितीय भाग, सरल हिन्दी व्याकरण, 'हिन्दी पुस्तिका' भाग एक और दो लिखे हैं। कॉलेज में जाने के लिए हाई स्कूल के विद्यार्थियों को किसी भी विदेशी भाषा के क्रेडिट लेने होते हैं। अन्य भाषाओं की भाँति हिन्दी को भी इस कॉलेज में प्राथमिकता दी गई है। जैसा कि मैंने बताया कि 2006 में हिन्दी को यह मान्यता मिली थी। सौभाग्यवश मेरा ही प्राध्यापिका के रूप में चयन हुआ। 2006 से मैं 'डी एन्ज़ा' कॉलेज में हिन्दी की प्राध्यापिका हूँ। हिन्दी को मैं बहुत ही सरल तरीक़े से पढ़ाती हूँ। जैसा कि मैंने ऊपर बताया कि इसके लिए मैंने सरल सुगम रूप से पढ़ाने के लिए अपनी पुस्तकें लिखी हैं, इन्हीं के द्वारा मैं पढ़ाती हूँ।

देवनागरी लिपि सिखाने के लिए नए आयाम निकाले हैं। देवनागरी लिपि सिखाने के बहुत ही सुगम तरीक़े निकाले हैं। उदाहरण के तौर पर मैं कहना चाहती हूँ कि जब विद्यार्थी पूछते हैं कि हम श कैसे लिखें तो मैं कहती हूँ कि गिनती का 21 बना दीजिए, इत्यादि। कक्षा के प्रारम्भ में विद्यार्थियों को बताती हूँ कि यदि आप T लिखते हैं तो आपको आधी देवनागरी लिखनी आ गई; क्योंकि हिन्दी के हर अक्षर में शिरोरेखा और खड़ी रेखा होती है T की भाँति। ऐसा कहने से उनका मनोबल बढ़ता है। ऐसे बहुत से उदाहरण हैं। मात्राओं को मैंने विशेष रूप से सुगम बनाकर सिखाने का प्रयत्न किया है। मात्राओं का एक बहुत ही सरल तरीक़ा निकाला है। मात्राओं को आप 2 भागों में बाँट लीजिए। 'अ' वाले स्वर हैं उनको एक तरफ़ कर लीजिये बाक़ी को एक तरफ़ कीजिए। 'अ' वाले स्वर है, उसमें से पहले 'अ' को छोड़कर बाक़ी सबमें से 'अ' हटा दीजिए तो जो भी बचता है वह उसकी मात्रा हो जाती है। इसी प्रकार से अन्य मात्राएँ भी हैं। इन सबका ओडियो, वीडियो बनाया हुआ है। आनन फ़ानन में विद्यार्थी मात्राएँ सीख जाते हैं। केवल इतना ही नहीं हिन्दी व्याकरण भी सरल तरीक़े से पढ़ाती हूँ। इस तरह से मैंने हिन्दी को बहुत ही सुगम बनाकर सिखाया है। हिन्दी की यह कक्षा 14-15 वर्षों से चल रही है। इस प्रकार 'डी एन्ज़ा' कॉलेज में हिन्दी ख़ूब फल-फूल रही है। अन्य भाषाओं की भाँति हिन्दी भी अपना प्रभुत्व जमाए हुए है। कक्षा में 35 विद्यार्थी होने अनिवार्य हैं अन्यथा कक्षा समाप्त कर दी जाती है। इस वर्ष 80 से अधिक विद्यार्थी होने के कारण हिन्दी की दो कक्षाएँ चलाई गई हैं। इस प्रकार हिन्दी भाषा सिखाने में मुझे बहुत ही अधिक सफलता मिली है

आप विश्व हिन्दी ज्योति और उत्तर प्रदेश मंडल ऑफ़ अमेरिका (उपमा) संस्थाओं की संस्थापिका हैं। ये संस्थाएँ क्या कार्य करती हैं?

मैंने 2006 में उत्तर प्रदेश मंडल ऑफ़ अमेरिका की स्थापना की थी। इसके द्वारा हम सांस्कृतिक कार्यक्रम करते हैं। कवि सम्मेलन करते हैं और हम उत्तर प्रदेश की सभ्यता-संस्कृति संबंधी कार्यक्रम तो करते ही हैं। इसके अतिरिक्त अन्य प्रांतों की धरोहर का भी बहुत स्वागत करते हैं। राखी, होली, दिवाली इत्यादि के साथ- साथ हम गरबा जो कि गुजरात की देन है; उसका भी आयोजन करते हैं। आपको जानकर आश्चर्य होगा कि इसमें 10000 (दस हज़ार) तक लोग सम्मिलित होते हैं। इन सभी कार्यक्रमों से जो भी धनोपार्जन करते हैं, समस्त धन हम भारत में बच्चों की शिक्षा के लिए भेज देते हैं। हमारी इस संस्था के द्वारा बुंदेलखंड में छह सौ विद्यार्थी पढ़ रहे हैं। जिनको भोजन, कपड़ा और नि:शुल्क शिक्षा दी जाती है। इसके अतिरिक्त साढ़े चार सौ बच्चे चित्रकूट में भी शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं। हमने वहाँ पर छोटे बच्चों के लिए डे केयर बना दिए हैं ताकि बड़े बच्चे पढ़ने जा सकें अन्यथा जब उनके माता-पिता काम पर जाते थे। वे छोटे बच्चों को सँभालने में ही रह जाते थे। अधिकतर ये आदिवासी लोग हैं। अब इस तरह से वहाँ पर भी शिक्षा का प्रचार- प्रसार हो रहा है। इस सबकी वित्तीय सहायता हमारी संस्था 'उपमा' उत्तर प्रदेश मंडल ऑफ़ अमेरिका के द्वारा की जाती है। वहाँ पर हमें इसमें अत्यंत सुखद अनुभव होता है कि हम साहित्य के साथ-साथ सामाजिक कार्यों में भी अपना योगदान दे रहे

हैं। हम अपनी मातृभूमि के लिए यहाँ अपनी कर्मभूमि में रहकर कुछ कर पा रहे हैं। यह हमारे लिए बड़े सौभाग्य की बात है। साहित्यिक कार्य के साथ-साथ हमें सामाजिक कार्यों को भी करते रहना चाहिए। ऐसा मेरा मानना है।

हमारी दूसरी संस्था 'विश्व हिन्दी ज्योति' की स्थापना हमने 2011 में की थी। इसके द्वारा हम हिन्दी भाषा का प्रचार- प्रसार करते हैं। हर महीने में हम एक गोष्ठी करते हैं जिसमें हिन्दी के प्रेमी, युवा वर्ग, बुज़ुर्ग और बच्चे सभी भाग लेते हैं। इसमें हम लोग स्वरचित कविताएँ, संस्मरण, कहानियाँ इत्यादि पढ़ते हैं। साहित्य की विभिन्न विधाओं पर चर्चा होती है। उनको लिखने के वर्कशॉप भी चलाए जाते हैं। नए पुराने लेखकों के साहित्य पर भी चर्चा होती है। विशेष अवसरों पर महीने में दो गोष्ठियाँ भी की जाती हैं। छोटे बच्चों को भी हिन्दी सीखने के लिए प्रोत्साहित करते हैं। नि:शुल्क हिन्दी की कक्षाएँ भी चलाते हैं। प्रति वर्ष हम 'हिन्दी दिवस' का आयोजन कोंसलावास के साथ मिलकर करते हैं। ये आयोजन 20 वर्ष से मेरे द्वारा किया जाता है। हम विभिन्न यूनिवर्सिटी और स्कूलों में जाकर ये आयोजन करते है। इसमें सभी स्कूलों में पढ़ने वाले बच्चों को, जो हिन्दी सीख रहे हैं, हिन्दी में बोलना चाहते हैं, उनको सुअवसर प्रदान किया जाता है। मुझे यह बताते हुए बहुत हर्ष हो रहा है कि ये दोनों ही संस्थाएँ सुचारू रूप से चल रही हैं।

प्रवासी लेखकों और भारत के किन समकालीन लेखकों को आपने पढ़ा है। दोनों के साहित्य में आप क्या अंतर पाती हैं?

मैंने अनेकों भारतीय तथा प्रवासी भारतीय साहित्यकारों को पढ़ा है। भारत के साहित्यकारों में चित्रा मुद्गल, मृदुला गर्ग, मृणाल पांडे, मन्नू भंडारी, राजेन्द्र यादव, विष्णु नागर, मोहन राकेश, कमल किशोर गोयनका, अल्पना मिश्रा, मनीषा कुलश्रेष्ठ, पंकज बिष्ट, प्रभात रंजन, पंकज सुबीर तथा अनेक श्रेष्ठ भारतीय साहित्यकार एवं अन्य नवोदित भारतीय रचनाकार। ये सब अपनी श्रेष्ठ रचनाओं से हिन्दी साहित्य को समृद्ध कर रहे है।

प्रवासी भारतीय साहित्यकार उषा प्रियंवदा, ओम सुधा ढींगरा, कविता वाचक्नवी, प्रतिभा सक्सेना, इला प्रसाद, शकुन्तला बहादुर, मंजू मिश्रा, रेखा मैत्रा, अनिल प्रभा कुमार, सुदर्शन प्रियदर्शिनी, अंशु जौहरी, उमेश अग्निहोत्री, अमरेन्द्र कुमार, हरिहर झा, कौशल श्रीवास्तव, शैलजा सक्सेना, तेजेन्द्र शर्मा, कादम्बरी मेहरा, शैल अग्रवाल, उषा राजे सक्सेना, दिव्या माथुर, अर्चना पैन्युली, अभिनव शुक्ल इत्यादि अपनी श्रेष्ठ रचनाओं से हिन्दी साहित्य को समृद्ध कर रहे हैं। कहना न होगा कि प्रवासी साहित्यकार उच्च कोटि का सृजन कर रहे हैं जो किसी भी रूप में भारतीय साहित्यकारों से कम नहीं है।

भारतीय साहित्यकार और प्रवासी भारतीय साहित्यकार दोनों ही अपने-अपने परिवेश में लिख रहे हैं। अत: दोनों की ही साहित्यिक गतिविधियों में परिवेश का अंतर है। प्रवासी भारतीय साहित्यकार जो भी लिख रहे हैं वे अपने परिवेश के अंतर्गत जो समस्याएँ आती हैं, उनका क्या समाधान हो सकता है! उन्हें कौन-कौन सी सुविधाएँ मिली हुई हैं। ये लोग किस प्रकार का जीवन यापन करते हैं। यहाँ क्यों रहना चाहते हैं और यहाँ रहते हुए किन कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। उनके मन में भारत जाने की ललक रहती है अथवा वे भारत क्यों लौटना चाहते हैं? यहाँ की विसंगतियों, विद्रूपताओं, सरोकारों और ऐसे विषयों पर प्रवासी साहित्यकार लिख रहे हैं, जिन पर भारतीय लेखक नहीं लिख सकते। प्रवासी साहित्यकार, अपने प्रवासी भारतीयों के साथ-साथ, यहाँ रहने वाले अन्य देशवासियों के रहन- सहन, उनकी सभ्यता-संस्कृति, उनके आचार-विचार का भी उल्लेख करते हैं। हाँ ग्रामीण समस्याएँ, किन्नर विमर्श या दलित विमर्श भारत के साहित्य में तो मिलेगा पर विदेशों में रचे जा रहे साहित्य में नहीं। अमेरिका, कनाडा, ब्रिटेन, ऑस्ट्रेलिया, न्यूज़ीलैंड यहाँ रहने वाले सभी अपने-अपने देश की समस्याओं के बारे में, अपने परिवेश के बारे में लिख रहे हैं।

डॉ. कमल किशोर गोयनका प्रवासी साहित्य के बारे में कहते हैं-"हिन्दी के इस साहित्य का रंग-रूप, उसकी चेतना, संवेदना एवं सृजन प्रक्रिया भारत के हिन्दी पाठकों के लिए एक नई वास्तु है, एक नए भावबोध एवं नए सरोकार का साहित्य है। एक नई व्याकुलता, बेचैनी तथा एक नए अस्तित्व बोध व आत्मबोध का साहित्य है; जो हिन्दी साहित्य को अपनी मौलिकता एवं नए साहित्य संसार से समृद्ध करता है। विदेशों में रहने वाले हिन्दी के साहित्यकार अपने देश के प्रति अधिक सजग व समर्पित हैं। इस साहित्य में एक ऐसी भारतीयता है; जो स्वदेश-प्रदेश के द्वंद्व से जन्म लेती है और एक नया परिवेश, एक नई जीवन दृष्टि तथा जीवन जीने का एक नया सरोकार देती है।"

हम प्रवासी भारतीय प्रवासवास में अपनी जड़ों से जुड़े हैं। अपनी अक्षुण्ण धरोहर को, न केवल अपने बच्चों में बल्कि हमारे बच्चों के सम्पर्क में आने वाले अन्य देश के बच्चों तक भी अपनी सभ्यता और संस्कृति को पहुँचा पा रहे हैं।

आपका बहुत-बहुत आभार। मैं कृतज्ञ हूँ आपने मुझे यह अवसर प्रदान किया कि मैं प्रिय पाठकों तक अपनी भाषा, साहित्य और सामाजिक योगदान को आपकी पत्रिका के माध्यम से पहुँचा सकी। सृजन के साथ शिक्षा और सामाजिक कार्यों में मुझे अलौकिक आनंद और आत्मसंतोष मिलता है।

प्रोफ़ेसर नीलू गुप्ता जी, आपका बहुत - बहुत आभार! आपने अति व्यस्त दिनचर्या से हमारे लिए समय निकाला। भारत में अक्सर प्रवासियों को इस तरह से देखा जाता हैं कि उन्हें देश से प्यार नहीं, तभी तो देश को छोड़ गए। देश में रहना ही सिर्फ देश प्रेम नहीं होता, वह तो दुनिया के किसी कोने में रहते हुए भी हो सकता है। आप जैसे प्रवासी लेखक इसकी मिसाल हैं। हम सब प्रवासियों को इस बात का गर्व है कि कर्मभूमि में रहते हुए जन्मभूमि के साथ जुड़े हुए हैं और हर तरह से अपना सहयोग देने के लिए तत्पर रहते हैं।

000

मौसमों की करवट

प्रज्ञा

प्रज्ञा
ई-112 आस्था कुंज अपार्टमेंट्स, सैक्टर 18, रोहिणी, नई दिल्ली 110089
मोबाइल - 9811585399
ईमेल- pragya3k@gmail.com

''मैडम कवि कैंदा है कि ओन्नू कृशन दी लौ लग गई...''

ग्यारहवीं की हिन्दी क्लास में सूरदास की व्याख्या की यह नायाब भाषा कानों में पड़ते ही रश्मि का हँसी का फव्वारा बेतरह छूटा। भाषा और बोलियों का ऐसा फ्यूज़न उसने पहली मर्तबा सुना वो भी उस ज़माने में जब फ्यूज़न का नाम भी दूर- दूर तक किसी ने नहीं सुना था। बृज बोली की पंक्तियाँ, हिन्दी में पढ़ते-समझते हुए, पंजाबी में व्याख्यायित करना और उसमें भी गिनती के हिन्दी शब्द पूरी तरह पंजाबियत में सराबोर। भाषा का ऐसा चम्पू प्रयोग करने वाली लड़की को उसने पलटकर देखा। वो अपनी रौ में पंजाबी मिश्रित हिन्दी में पूरी व्याख्या बिंदास कर गई। हँसते हुए रश्मि ने बिना एक शब्द कहे अपने पूरे ग्रुप में उस नई लड़की की कनखियों से ऐसी खिंचाई की कि बड़े से बड़ा आलोचक भी इस कला से महरूम था। अमृतसर से अभी हाल ही में दिल्ली आई संजू क्लास में अजनबी तो थी ही अब हास्यास्पद भी बन गई। शैतानियों से उस उम्र में हर क्षण कोई नया कारनामा, कोई नया मसाला चाहिए रहता है और संजू अब वही थी रश्मि और उसके ग्रुप के लिए। क्लास में उसे चिढ़ाने के लिए पूरा ग्रुप रोज़ ही छेड़ता-''कवि कैंदा है'', संजू सब समझती और जवाब में मुस्कुराती।

रश्मि, रेनू, आशा, सीमा का यह ग्रुप शैतान ज़रूर था पर क्लास के होशियार बच्चों में शुमार था। फिर कई ख़ासियतों से लैस भी था, जैसे ये सब ज़माने की नज़रों में सुंदर और अपनी दृष्टि में बेहद स्मार्ट थीं। ग्यारहवीं की कई बहनजियों के लिए ईर्ष्या का विषय थीं। पर दिक्कत तो यही थी कि इनसे कोई ईर्ष्या करे भी तो कैसे? पढ़ने-लिखने में काबिल, संगीत और नाच-गाने में अव्वल, बोलने और वाद-विवाद में इनका कोई सानी नहीं। जहाँ कोई कार्यक्रम हो ये हाज़िर, कोई प्रतियोगिता हो तो ये सामने। फिर नम्बरों के गणित में भी आगे। यही कारण था कि टीचर्स भी इनकी कितनी शैतानियों को नज़रअंदाज़ कर देतीं।

नए मसाले संजू से जारी छेड़छाड़ में एक नया तत्व और मिल गया। वो था उसका सरनेम-कालिया। रश्मि उसे गब्बर का खास आदमी कहती और रेनू-आते-जाते संजू को सुनाने के लिए -''तेरा क्या होगा कालिया?'' जैसे सवाल से परेशान करती। सीमा की चिंता कुछ और ही थी-''यार! दूध से भी गोरी और कालिया?'' और सबकी सब जी खोल के हँसती। पर संजू को न कोई शिकायत थी और न ही कोई नाराज़गी। उसे कोई भी मदद चाहिए होती तो वह रश्मि से ही कहती। कुछ समझना है, किताब की दुकान कहाँ है जैसी दिक्कतें पेश आते ही वह रश्मि के

समाने नमूदार हो जाती। रश्मि चाहे उसका मज़ाक बनाने में न चूकती थी पर मदद के लिए मना करना उसके स्वभाव में नहीं था। पहली तिमाही की परीक्षा में संजू का परिणाम बहुत अच्छा रहा। फिर रश्मि के खुद ईजाद किए खिंचाई के हथकंडों ने संजू को ख़ासा फेमस कर दिया था और संजू के न चिढ़ने की आदत ने चारों को निराश भी। न जाने कब संजू, रश्मि, सीमा, रेनू और आशा में घुलती-मिलती चली गई। उसका अमृतसरी अंदाज़ सबको रास आने लगा और संजू भी चारों के रंग में रंग गई। उसकी शैतानियों के अंदाज़ निराले थे और छेड़-छाड़ के तरीक़े भी। समय से बने दिन और महीने ग़ज़ब के ठहाकों में घुलते, मीठी तकरारों का स्वाद बटोरते, अल्हड़ उम्र का जादू रचते भागे जा रहे थे।

''रश्मि क्या मैं एक रात तेरे घर पढ़ने आ जाऊँ ? पर मेरे डैडी को तुझे मनाना होगा। यार! घर में जगह कम और मेहमान ज़्यादा। फिर इकोनॉमिक्स जैसा सब्जेक्ट और बारहवीं बोर्ड। मना किया था मैंने डैडी को कि कुछ दिन रुक जाओ पर... कैसे होगी पढ़ाई? तेरे घर में कोई दिक्कत तो नहीं होगी न?"

''कैसी बात करती है संजू, तू अभी चल।"

उस रात संजू ने पलक नहीं झपकाई। रश्मि की तैयारी पूरी थी। फ्लास्क में चाय भरकर संजू को थमाई और सो गई। बीच-बीच में नींद उचटती तो देखती संजू किताब में डूबी है। कितनी लगन थी उसे। ख़ैर परीक्षाएँ भी खत्म हुईं। परिणाम देर से आना था। कॉलेज के सपने बुनने के सुनहरी दिन थे वो, एकदम खाली। मनचाहा काम करने और मनचाहा जीवन जीने की छूट। सुबह की सैर अमलतास के चटख पीले, औंधे लटकते गुच्छों के नाम थी तो दोपहर तेज़ाब फिल्म के गाने पर थिरकने को। एक, दो, तीन... करते दिन तेज़ाबी धुन में अमलतासी गंध से भरे थे। शामें और भी अलमस्त और बेपरवाह थीं। फालतू में बाज़ार के चक्कर काटना और बेबात हँसते रहना। इन्हीं दिनों पाँच सहेलियों के जीवन में उथल-पुथल मचाने वाली घटना घटी। एक हफ्ते के भीतर संजू की सगाई तय

होनी थी और फिर अगले साल तक शादी।

"संजू की शादी? पागल हो गई है क्या? अभी रिज़ल्ट भी नहीं आया और कम से कम बी.ए. तो करे न?" सीमा का ग़ुस्सा खौल रहा था।

''अरे पंजाब के किसी गाँव में नहीं बैठे हैं अंकल। फिर यह कोई उम्र है उसकी शादी की?" रश्मि के कहते ही तय हुआ कि आज सब चलेंगी उसके घर और बात करेंगी अंकल-आंटी से। घर पहुँचीं तो नज़ारा ही कुछ और था। संजू के पड़ोस की कुछ आंटियाँ उसे आशीर्वाद दे रहीं थीं और संजू शादी के नाम से चहक रही थी। कुछ देर बाद संजू उन चारों को अलग कमरे में ले गई। सीमा का हाथ दबाते हुए बोली-"नैक्स्ट संडे आ रहे हैं करनाल वाले।" और बाकी सबसे कहा -"आ जाना हैल्प कराने। फिर अरविंद जी को भी देख लेना।"

ग़ुस्सा तो रश्मि को इतना आया पर घर में अंकल-आंटी की मौजूदगी ने उसके हाथ बाँध दिए और ज़बान सिल दी। दल-बल बनाकर उसके डैडी को समझाने वाली बात अब कितनी बेतुकी जान पड़ रही थी। डैडी की बिटिया ही नासमझी में बल्लियों उछल रही थी तो डैडी को क्या दोष देना?

"तुझे पढ़ना-लिखना नहीं है क्या? इतनी कम उम्र में शादी करने की क्या जल्दी है?" आशा चीख पड़ी।

''यार मैंने कहा था डैडी से पर वे बोले - "देख बेटा, छोटा-सा बिजनेस है मेरा और फिर तू अकेली तो नहीं है न। बाकी तीन भाई-बहन भी हैं। लड़का सही मिल गया है। पढ़ाई कर लेना आगे।"... बता यार क्या कहती मैं? डैडी वैसे ही कितना कुछ करते हैं हमारे लिए।"

बात के बीच में अंकल भी कुछ लेने या कुछ टोहने के लिए कमरे में दाखिल हुए। नमस्ते के बाद रश्मि बोल ही पड़ी-"अंकल! इसे करेसपॉन्डेंस से ही बी.ए. करने दो न आप। पढ़ाई तो नहीं छूटेगी इसकी।" पर अंकल को यह बात बड़ी बचकानी लगी जिसका जवाब उन्होंने सिर्फ यह दिया-"संडे को आना है तुम सबको, अपने जीजाजी से मिलने।" चारों को लगा घर की खुशी के रंग में भंग डालने आईं हैं जैसे। किसे उनकी उपस्थिति सुहा रही थी? कौन उनके ग़ुस्से के रसायन से तैयार सवालों को तवज्जो दे रहा था? क्यों रट लगा रही थीं वे चारों संजू की पढ़ाई की? सगे माँ-बाप को तो ज़रा फ़िक्र नहीं थी। उस घर में चारों की आवाज़, उनका वजूद बेमानी था सो लौट आईं सब बेआबरू होकर।

बारहवीं के परिणाम का इंतज़ार अब संजू से जुड़े सवालों में धुँधलाने-सा लगा। इधर संडे को चारों संजू के भावी ससुराल वालों के दर्शन करने ठीक समय से पहुँच गईं। होने वाले जीजाजी के बस नैन-नक्श ही ठीक थे। संजू जहाँ उजली धूप थी तो वो अमावस्या की रात। संजू छरहरी, तो वो गोलाकार। इस दर्शन से रश्मि का ऊपरी होंठ उचका और नाक चढ़ गई, सीमा ने मुँह फेर लिया, आशा की 'हाय' निकली और रेनू ने ठंडी आह भरी। पर घर तो मगन था सत्कार में। सीमा से रहा न गया-"देखा क्या कहती थी कि मेरा पति तो अनिल कपूर या जैकी श्राफ-सा होगा। कैसे सपने देखा करती थी? यह तो मेंढक जैसा भी नहीं है यार। हाय! इससे तो मेरा भाई ही लाख दर्जे अच्छा है। उसे संजू पसंद भी थी। और यह भी उसे देखकर कम नहीं मुस्कुराती थी। कहती नहीं थी-'मूँछों में बिल्कुल अनिल कपूर जैसा लगेगा बंटी। 'काश! मेरी भाभी ही बन जाती... दोनों कित्ते अच्छे लगते साथ।" रौनक वाले घर में चारों मातमपुर्सी में आई लग रही थीं।

उस 'काले पहाड़' जिसे भविष्य में जीजाजी पुकारना था, उससे बतियाना तो दूर उसकी तरफ देखने से ही चारों को कोफ्त हो रही थी। उन्हें क्या लेना-देना कि वो अपना फॉर्मेसी का कोई इंस्टीट्यूट चलाता है।

एक साथ रहने वाली पाँचों सहेलियाँ जो साथ जीने-मरने की कल्पनाएँ किया करती थीं, जीवन को साथ-साथ अटूट रूप में जीने की ख़्वाहिशों को जीती थीं, जीवन किस तरह करवट बदलता है उन्हें कहाँ मालूम था। एक ही करवट में सब सिरे छूट जाते हैं। ख़्वाहिशों के सतमंज़िला महल ढेर होकर धूल फाँकते हैं और कल्पनाओं का हश्र ताश के घर से भी बदतर जान पड़ता है। जीवन की नदी का तेज़ बहाव, एक ही झटके में कितना कुछ बहा ले चला जाता है। इधर संजू की सगाई तय हुई तो उधर आशा के पापा का तबादला। रेनू शुरू से ही आशा के अधिक नज़दीक थी और फैशन डिज़ाइनिंग की उसकी दिशा तय थी तो धीरे-धीरे कम होती जा रही मुलाकातें, ख़ात्मे में तब्दील हो गईं। सीमा और रश्मि को कॉलेज में एडमिशन मिला पर कॉलेज एक न थे। दो विपरीत ध्रुव। पर दोस्ती के जज़्बे को कायम रखने की उनकी ज़िद्द ने स्कूल को कभी यादों के घेरे से बाहर निकलने नहीं दिया और बरसों से सींचे गए प्यार की गंध को कभी मिटने नहीं दिया। संजू का साथ भी उनसे बना रहा। उसकी शादी की तैयारियों और भावी पति से होने वाली बातचीत में रश्मि और सीमा बराबर शामिल रहतीं।

"बड़ी चिंता थी न तुम्हें मेरी पढ़ाई की...देख लो ऊपर वाले की मेहरबानी से वह भी पूरी हो रही है। मुझे बीफार्मा का एग्ज़ाम दिलाएँगे अरविंद जी, अगली साल। वाईवा पहले से सेट कर देंगे और तीन साल में कोर्स पूरा होने पर वहाँ उनके साथ ही टीचर लग जाऊँगी।"

"लेक्चरर कह संजू! टीचर नहीं। क्या लॉटरी लगी है शादी में तेरी?" सीमा तुरंत चहकी।

"तुम दोनों पागल तो नहीं हो क्या? ज़रा यह बता संजू! आर्ट्स साइड की पढ़ाई से बीफार्मा? कैसे?" रश्मि के तेज़ दिमाग़ के

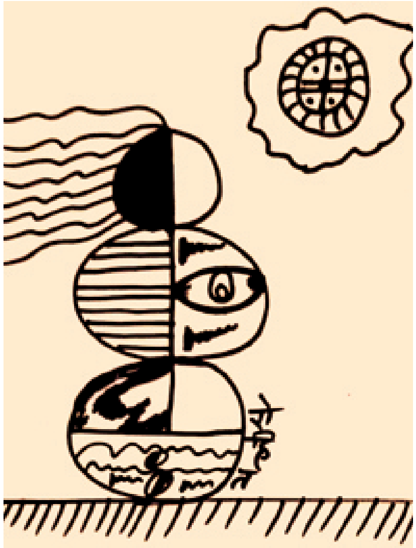

आगे झूमती संजू और चहकती सीमा दोनों जड़ हो गईं।

"पता नहीं...वे कह रहे थे करा देंगे।" एक मासूम-सा जवाब संजू के होंठों पर उतरा।

"तो मैडम! भगवान् नहीं इसके पीछे आपका वही काला पर्वत है, जो कुछ दे-दिलाकर तुझे पास करवा देगा। कॉलेज उसके बाप का है फिर डर काहे का। खुद भी ऐसे ही लगा है क्या? बड़ी आई भगवान् वाली। खानदानी बिज़नेस है भई। ससुर, पति, नंद और अब होने वाली बहू भी। सब मिलाकर पूरी फैकल्टी तैयार। फिर तुझे तो तनख्वाह भी नहीं देनी पड़ेगी। मालकिन को कैसी तनख्वाह?" रश्मि के चौकस दिमाग़ से जब शब्द बाहर निकल आए तब उसे एहसास हुआ बेकार संजू का दिल दुखाया। कुछ न करने से तो यही बेहतर। वैसे भी उसकी जल्दी शादी में ही क्या लाल जड़े थे, उससे तो आड़े-टेढ़े रास्ते से बीफार्मा क्या बुरा था। खाली तो नहीं बैठेगी।

"चल छोड़ यार! मेरी तो पुरानी आदत है छेड़ने की...याद है न 'कवि कैंदा है'।" एक क्षण के बाद तीनों का ठहाका हवा में तैरा।

"अच्छा है फार्मेसी का कोर्स करके तू फार्मेसिस्ट हो जाएगी और हम सब रह जाएँगे लद्दड़। तेरी नौकरी तो अभी से पक्की है।" रश्मि के इन शब्दों से संजू के चेहरे से काफूर हुई मुस्कान ज़रा-ज़रा लौटी। बीच रास्ते में आधी-पौनी पढ़ाई करके संजू के कोर्स का पहला साल पूरा हो गया। इस दूसरे साल में शादी होनी ही थी। जीवन की बची-खुची अमलतासी गंध और चटख रंग पर अब हल्दी,मेंहदी और ब्लीच-फेश्यिल की तीखी गंध काबिज हो गई। तेज़ाबी धुन पर थिरकते हुए 'पिया और बहार के आने के' वादे पूरे हुए और संजू चल दी 'पालकी में सवार अपने साजन के द्वार'। और फिर शादी के कुछ दिन बाद छैल-छबीली संजू पूरे बनाव-सिंगार के साथ सहेलियों से मिलने आई। काले पर्वत के प्यार पगे किस्सों को सुनाकर रस-संचार किया और छम-छम करती चली गई। मोबाइल के दिन थे नहीं, चिट्ठी-पतरी में किसी की दिलचस्पी थी नहीं फिर महीने में एक बार मिलना हो ही जाता था सबका। आगे ज़िंदगी कुछ और पेचीदा हुई तो मुलाकातों ने दामन समेट लिया। ज़ाहिर सी बात थी सबका लक्ष्य तय था और आलम में बेफिक्री की गुंजाइश कम। ज़रा चूके तो गए। सीमा को बी.ए. के बाद बी.एड करना था तो रश्मि को पत्रकारिता। जहाँ सबने बी.ए पूरी की वहाँ संजू को माँ की पदवी मिली पर बीफार्मा पासिंग लाइन पर भी पूरा न हो सका। ज़िम्मेदारियों की चक्की में पिसकर पढ़ाई उसे बेकार का बोझ लगने लगी। सारा काम भी करो और रात को मुँदती आँखों से पढ़ने बैठो। फिर भी साइंस को बस घोंट ही लेती किसी तरह।

दोनों मौसियाँ जान छिड़कती थीं लाडले आयुष पर। आयुष बड़ा ही चंचल था। संजू की सारी चंचलता जैसे उसीने खींच ली थी। अब संजू, रश्मि और सीमा की तरह ठहाके नहीं लगाती थी। छैल-छबीली भी ज़रा कम हो गई थी और अब छम-छम तो बिल्कुल नहीं करती थी। काले पर्वत के प्यार भरे क़िस्से पुराने पड़कर धूल फाँक रहे थे। वो बातचीत में बस 'आयुष के पापा' के रूप में आता। कोर्स पूरा न करके भी संजू इंस्टीट्यूट में प्रैक्टिकल, रिज़ल्ट और कई छोटे-मोटे कामों में मदद दे दिया करती थी। आयुष के कुछ समय बाद ही उस पर दूसरे बच्चे का दबाव भी बनने लगा था।

इस बार करनाल से घर लौटने पर भी जब संजू, सीमा और रश्मि से मिलने नहीं आई तो

दोनों उसके घर पहुँचीं। ज़ीने की सीढ़ियाँ चढ़ते हुए ही ठिठक गईं। उसके घर का शोर नीचे तक साफ सुनाई दे रहा था। दरवाज़े की आड़ में खुद को छिपाकर जो सच उन्होंने जाना वो हैरतअंगेज़ था। संजू बुरी तरह चीख रही थी-"नहीं जाना मुझे उसके घर। पहले भी कहा, पर आप लोग ने सुना नहीं। उसकी नशे की आदतें इतनी बढ़ गईं हैं कि अब मेरे सामने इंजैक्शन लेते भी नहीं झिझकता। सारा-सारा दिन पड़ा रहता है। बाप और बहन हैं न इंस्टीट्यूट चलाने को। वहाँ कितने बच्चों से भी उधार लेने लगा है। उसकी करतूतों पर घर भर पर्दा डालता है लेकिन पूरा मोहल्ला जानता है। शर्म से कहीं निकलना मुश्किल है। शादी से पहले से कर रहा है वह यह सब। राज मौसी के घर शादी में ज़ेवर खोए नहीं थे, उस हरामखोर ने चुराए थे अपने नशे के लिए। माँ-बाप ने पैसा देना जो बंद कर दिया। बस और नहीं पापा, मुझे तलाक चाहिए। नहीं रहा जाता उस जेल में। सारा दिन खटो और रात को उस नशेड़ी की फरमाइशें पूरी करो।" संजू की आग उगलती ज़बान पिता के सामने पति के यौन-उत्पीड़न की बात कहते तनिक न हकलाई।

संजू की चीखें और उनमें भरा दर्द का सैलाब महसूस कर सीमा और रश्मि के आँसू नहीं थम रहे थे।

"पापा प्लीज़...मत भेजो मुझे वहाँ। मैं मर जाऊँगी पापा। दम घुटता है मेरा वहाँ। प्लीज़ पापा...।" सिसकियों में नहाए उसके शब्दों को सुनकर दोनों से न रहा गया। अंदर जाने को जैसे ही कदम बढ़ा रही थीं कि अंकल की आवाज़ ने रोक दिया उन्हें-"एक तू ही अनोखी नहीं है संजू। शादी का मतलब निभाना है और तू कैसी औरत है अपने बाप के सामने कितनी गंदी बातें कर रही है तो पीछे क्या करती होगी तू?..तलाक लेकर इस लड़के का क्या करेगी? बच्चे को माँ के साथ बाप भी चाहिए। फिर कौन पालेगा इसे...और तुझे? हर्जाना मिला भी तो ज़िम्मेदारी हमारी ही बढ़ेगी न? बदनामी अलग।" अंकल, संजू की परवाह किए बगैर चीखते चले जा रहे थे। आंटी एकदम खामोश, संजू हैरान। पूरे घर में सबसे उपेक्षित आयुष रोए जा रहा था। सीमा और रश्मि हिम्मत करके अंदर घुसीं तब जाकर अंकल की आवाज़ थमीं। संजू उन्हें सामने पाकर हताशा में फूट-फूटकर रोई। उस दिन कितने खुलासे हुए। जबरन दबाए गए सच, झूठ की सीवन उधेड़कर सामने आ गए। बदसूरती आँखों के ठीक सामने थी।

सास-ससुर तलाक के नाम से हाथ-पैर जोड़ने लगते। इज़्ज़त की दुहाई देते। तिस पर पति से निराश, छोटे बच्चे की ज़िम्मेदारी, इंस्टीट्यूट की ज़िम्मेदारी और घर में ही इंस्टीट्यूट होने के कारण घर की भी पूरी ज़िम्मेदारी सँभालती संजू आख़िर क्या-क्या करे? इससे तो वो औरतें भली जो कहीं बाहर जॉब करती हैं। कुछ घंटे तो तनावमुक्त रहती ही हैं। तनावमुक्त न कहें सारे झंझट सामने तो नहीं दिखते रहते हरदम। 'घर में काम, आराम ही आराम'- कहकर कचूमर निकाल दो औरत का। एक ही जगह अनेक सेवाओं के लिए सदा उपलब्ध ...और हो जाएगा बच्चा बाद में। एक की परवरिश की कुव्वत है नहीं बाप में और दूसरा बच्चा? सीमा और रश्मि चीखना चाहती थीं संजू की मुक्ति के लिए। पर सब व्यर्थ। "जा बेटा सब ठीक हो जाएगा।" जैसे शब्दों के साथ अनेक संजुओं की तरह दुलार-पुचकारकर भेज दी गई संजू। जिस घर का दरवाज़ा न खटखटाओ वही बेहतर। अंदर अलग-अलग हालातों में कितनी संजू मजबूरी में वीरान ज़िंदगियाँ ही ढोती मिलेंगी।

वक्त के साथ भागती रश्मि की नियुक्ति आकाशवाणी में हो गई, सीमा एक स्कूल में टी. जी. टी. नियुक्त हुई। सीमा विवाह के सपने देख रही थी तो रश्मि काम को अभी पूरा वक्त देना चाहती थी। इधर संजू एक बेहद कमज़ोर से लड़के को जन्म देकर अधिक पीली और मुरझाई-सी लगने लगी। अमलतास और हल्दी के बाद यह कुछ अलग-सा पीला रंग था जो न चटख था न इसमें कोई ताज़गी भरी गंध ही थी, न ज़िंदगी-सी कोई हरकत। तीनों सहेलियों का मिलना-जुलना ख़त्म हो चला था क्योंकि अब संजू को घर जाने की इजाज़त नहीं थी। संजू ने भी अब चाबी वाला बबुआ बनकर शिकायत करना छोड़ दिया क्योंकि कहीं कोई सुनवाई नहीं थी। न ही कोई ऐसा दरवाज़ा जहाँ जी भरकर अपने हिस्से की साँस खींच सके। ज़िंदगी पर भरोसा केवल बच्चों के रूप में ही बाकी था उसका।

"रश्मि! संजू थाने में है...अरविंद ने सुसाइड कर लिया कल रात। उसके घरवालों ने एफ.आई. आर. कर दी है कि संजू ने उसे आत्महत्या के लिए उकसाया। पुलिस गिरफ्तार करके ले गई है उसे। मैं निकल रही हूँ अभी बंटी भाई के साथ...तू चलेगी?" सीमा की हड़बड़ाहट और तनाव से भरी आवाज़ फ़ोन से निकली। तीनों जब थाने पहुँचे तो संजू खामोश बैठी थी। अंकल-आंटी और उसके ससुर और नंद भी वहाँ थे।

"सीमा! इनसे कह दे कुछ नहीं चाहिए इनसे। बस मेरे बच्चे दे दें मुझे।" संजू का रोष थाने में गूँजा।

"ताकि तू उन्हें भी मार दे। जवान पति की लाश पर आँसू तक नहीं निकला इन बेशर्म आँखों से। न छाती पीटी, न चिल्लाई और यहाँ बड़े बोल फूट रहे हैं तेरे।" उसके ससुर बोले।

"आप नहीं जानते कैसे मरा है आपका बेटा? मेरे उकसाने पर मरना होता तो अब तक ज़िंदा रहता?"संजू को आज किसी की परवाह नहीं थी। माहौल में उत्तेजना बढ़ रही थी। हताश अंकल-आंटी को पत्रकार रश्मि, सी.ए. बंटी और टीचर सीमा के पहुँचने से सहारा मिला था और थाने में संजू का पक्ष भी मज़बूत हुआ था।

"जी अबेटमेंट ऑफ सुसाइड के तहत धारा तीन सौ छह लगेगी। आत्महत्या के लिए उकसाने पर।" थानेदार ने संजू को पहले ही दोषी करार कर दिया।

"क्या अरविंद ने कोई सुसाइड नोट छोड़ा है, जिसमें संजू पर ऐसा इल्ज़ाम लगाया है उसने?" रश्मि के कहने पर बंटी ने थानेदार से दरियाफ्त किया।

"नहीं।" वह बोला।

"फिर आप इन्हें कैसे दोषी मान सकते हैं और यहाँ थाने में रख सकते हैं?" रश्मि से रुका नहीं गया।

"थाने में तो रहना ही पड़ेगा अभी और, एफ आई आर हुई है जी, कोई हँसी-खेल नहीं

है। कल कोर्ट में पेशी भी होगी मजिस्ट्रेट के सामने। छोड़ कैसे सकते हैं? तफ्तीश जारी है, यह भाग गई या सबूत मिटा दिए तो कौन होगा ज़िम्मेदार? और पोस्टमॉर्टम होने और रिपोर्ट आने के बाद सच सामने आ जाएगा। सबूत मिल गया तो दस साल जेल में रहना होगा।" थानेदार भी चुप न रहा।

"झूठा इल्ज़ाम लगाया है बच्ची पर...कहीं हक न माँग बैठे अपना।" अंकल के शब्द पूरी टीस के साथ बाहर निकले।

अंकल-आंटी के तमाम अनुरोध, रश्मि-सीमा की तमाम दलीलें, बंटी के सारे तर्क खोखले हो गए। आत्महत्या का मामला था और संजू पर उकसाने का सीधा इल्ज़ाम लगाया गया था इसलिए थाने से उसकी मुक्ति संभव नहीं थी। पर सब हैरान थे संजू न गिड़गिड़ाई, न उसने घर जाने की कोई भीख मांगी। पत्थर-सी खड़ी सब देखती-सुनती रही। उसकी बस एक ही रट थी कि उसके बच्चे उसको ही मिलने चाहिए। रात घिर रही थी इसलिए आंटी को सीमा के साथ वापिस भेज दिया गया। अंकल, बंटी और रश्मि वहीं रुक गए। वकील का इंतज़ाम भी तो करना था। संजू के ससुर और ननद किसी जीत के उन्माद में यह तक भूल बैठे कि उनके घर ही एक जवान मौत हुई है।

अगले दिन मजिस्ट्रेट ने संजू को सात दिन की पुलिस कस्टडी में भेज दिया। तफ़्तीश के लिए। निरपराध संजू का जेल में होना, बच्चों का माँ से दूर होना कम दुखदाई नहीं था। अंकल, रश्मि और बंटी के रहने का न कहीं ठिकाना, न कोई सहारा। संजू के लिए एक वकील कर लिया गया था। ज़मानत के कागज़ तैयार कराने और कानूनी सलाह लेने के लिए। किसी तरह ज़मानत के कागज़ तैयार हुए पर केस की गंभीरता को देखते हुए ज़मानत नहीं मिली। अंकल कभी खुद को कोसते तो कभी तकदीर को। वक्त ने उनकी ग़लतियों के एवज में उन्हें रह-रहकर कई तमाचे जड़े थे। आज जाकर संजू की हताशा, निराशा और घुटन को वो समझ पा रहे थे जिसे बचकाना कहकर हमेशा नकारा था उन्होंने। जिस बच्ची की एक फरमाइश पर कभी जी-जान लगा देते थे वो, उसके ज़िंदगी की भीख माँगने पर क्यों पत्थर बन गए थे? इतनी पराई हो गई थी क्या संजू?

तीनों के लिए ये दिन इतने लंबे थे कि सैकड़ों बार घड़ी देखने पर भी वक्त थमा-सा महसूस होता। न खाने की इच्छा, न बातचीत का कोई सुख। हर घड़ी संजू का चेहरा आँखों के सामने रहता। कानों में बच्चों के रोने-बिलखने की आवाज़ें गूँजतीं। आने वाले कल की तस्वीर स्याह थी। सारी रेखाएँ और रंग गड्डमड्ड। धीरे-धीरे रेंगती हुई सुई रिपोर्ट की घड़ी के समय पर आ लगीं।

अरविंद की मौत ड्रग्स की ओवरडोज़ से हुई थी। तफ्तीश में संजू के ख़िलाफ कोई सबूत नहीं मिला। दो-एक पड़ोसियों ने भी उसके पक्ष में ठोस बयान दिए और अरविंद की नशेबाज़ी की खुलकर चर्चा की। बिना किसी अपराध के एक लंबी यातना के बाद संजू के बरी होने पर ससुर के चेहरे का उजाला कहीं खो-सा गया।

"बच्चे तो किसी कीमत पर नहीं मिलेंगे तुझे।" ससुर की कुंठा अपने चरम पर जाकर फूट पड़ी।

"वे आपको देने होंगे...हम लेकर रहेंगे।" इस बार अंकल चुप नहीं रहे। समय का यह लंबा अंतराल आत्ममंथन के लिए कम नहीं था।

"और अब तो उनके साथ मेरा और बच्चों का वाजिब हक़ भी देना होगा। पैसा, ज़मीन-जायदाद जो कुछ भी है, सब। मैं लेकर रहूँगी।" संजू का स्वर इतने दिनों में कुछ अधिक दृढ़ और प्रखर हुआ था। पिता का हौसला मिलने पर बुलंद भी। फिर दोस्तों ने भी कोरी औपचारिकता नहीं निभाई थी। आड़े वक्त में ढाल की मानिंद तने खड़े रहे थे।

हक़ की बात कहने पर संजू को स्वार्थी बताकर जी भरके कोसा गया। उसके बेदाग चरित्र को मन-मुताबिक दागदार किया गया। उसे एक खुदगर्ज औरत बताया गया जिसने कभी पति की सेवा नहीं की, उसे सम्मान नहीं दिया। उसे बच्चों को पालने में नाकाबिल बताया गया। संजू सब पर मुस्कुराती रही। इल्ज़ामों की चादर पर अपमान के धब्बे पूरी तरह फैला दिए गए पर संजू बेपरवाह थी। अपनी ही नृशंस दास्तानें सुनने के बाद बेहद संतुलित लहज़े में बोली-"बरसों आपकी इज़्ज़त मैं ही ढाँपती रही हूँ पापाजी। शादी के सात साल के भीतर कम ज़ुल्म नहीं ढाए आपके बेटे ने। कितनी दफा रोका खुद को मैंने। इतना कानून तो हर औरत जानती है अपने बचाव का। और आप...सब समझती हूँ क्यों नहीं दोगे मुझे मेरे बच्चे। ...मेरी इतनी सेवाओं का भी कभी कोई ईनाम नहीं दिया आपने। एक बहू की सेवा के बदले सिफर, एक पत्नी की सेवा के बदले सिफर, एक मज़दूर की सेवा के बदले सिफर। कितनी चाकरी कराई है आपने। वह भी एकदम मुफ्त, जानते हैं न आप? इसके बदले में मुझे मिला क्या? अपने बच्चों के पिता को मारने का इल्ज़ाम। जेल की ज़िल्लत। और तो और मेरे बच्चे भी छीन लिए मुझसे। इतनी नफ़रत?"

और संजू वापिस लौट आई। अरविंद को गए चार महीने बीत चुके थे। रश्मि के किसी परिचित की कैमिस्ट शॉप पर संजू काम करने लगी। बड़े साहस से अपने बच्चों को संजू वापिस ले आई थी। सुखद-सा लगता है न सब सुनने में। पर सहजताएँ अपने बाह्य रूप में जितनी सामान्य और सकारात्मक दिखाई देती हैं भीतर से नहीं होतीं। सभी रास्तों को बंद कर देने वाली निराशा की चट्टान को संघर्ष की धार पल-पल काटती-छीलती रहती है। पर दुनिया को न कोई चट्टान दिखाई देती है न उससे जूझते इंसान। जीवन की अंतहीन- सी लगती, लंबी, काली कठोर सड़क पर चलती संजू के पाँव तले की धरती तेज़ धूप में पूरी तरह झुलस चुकी थी और उसकी परत झुर्रियों से पटी पड़ी थी। दोपहर का वक्त था, उमस बढ़ती जा रही थी।

इन पिछले कुछ महीनों में संजू ने महसूस भी नहीं किया कि मौसम कितनी करवटें ले चुका है। आसमान के तपते हुए सूरज और तपती हुई धरती के बीच वो एक पत्ते की तरह ही तो झुलस रही थी। पर कहते हैं कि जिन पेड़ों की जड़ें गहरी होती हैं वे अपने पत्तों को बचा ही लेते हैं।

000

परदेस के पड़ोसी

अनिल प्रभा कुमार

अनिल प्रभा कुमार
com 119, Osage Road, Wayne, NJ-07470
मोबाइल- 973 978 3719
ईमेल- aksk414@hotmail.com

वह हर चीज़ को आँखें फाड़-फाड़ कर देखने के दिन थे। आँखें ही नहीं कान भी खोलकर सुनने के दिन थे। ध्वनियाँ और एक विशेष उच्चारण को सुनकर सीखने के दिन। रुककर नई गंधों से परिचित होने के दिन। जिज्ञासा भरे दिन। संघर्ष के दिन। अभिभूत होते हुए भी ख़ुशी के बजाए अकेलेपन और उदासी भरे दिन। मुखौटा लगाते हुए रोज़ नई नौटंकी करने के दिन थे वे। एक ठंडे अजनबियों से भरे बेगाने शहर में धंसने की कोशिश करते दिन।

नए अनुभवों को क़िस्सागोई की सुनहरी डोरी में पिरोकर, कुछ इस तरह से लिखकर मैं सुदूर अपने देश भेजती कि परिवार वालों के कलेजों में ठंडक पड़ जाती। अपने परिचितों पर रोब डालने के लिए शायद वे बातों को और भी बढ़ा-चढ़ा कर बताते होंगे। ऐसा मुझे लगता है।

ताबड़तोड़ नए अनुभवों के बीच ख़ुद के गुम हो जाने का डर था। इस अजनबी परिवेश में पिछड़ने की हीन-भावना थी। ज़बरदस्ती किसी के घर में घुस आने की ढिठाई का आरोप और अवमानना, निरादर के छिपे तंज़ भी थे। यह न लिखा जाता, न बताया जाता। कोई जानना भी नहीं चाहता था। बता कर होता भी क्या? तो चलो वही सही जो सब सुनना चाहते हैं।

इस देश में आने के एक दशक के भीतर ही हम यहीं 'विलोब्रुक' में बसने आ गए। मैं, शेखर और नन्हा सा अहान।

जी चाहता, एक कहानी लिखूँ। टेनिसन की लेडी ऑफ़ शैलॉट की ही तरह "लेडी ऑफ़ विलोब्रुक" पर। 'विलोब्रुक' एक छोटा सा बेहद खूबसूरत उपनगर। महानगर की भीड़-भाड़ से दूर और हरियाली से भरपूर। छोटे- छोटे बरसाती नाले और 'वीपिंग विलोज़' के अनगिनत पेड़ों से लदा हुआ। यूँ ही नज़र पड़ जाए तो इन विलो पेड़ों की डालियाँ शोक-मुद्रा में सिर झुकाए खड़ी लगतीं। मज़बूत पर लचकीली शाखाएँ। जब बर्फ़ पड़ती तो उसके भार से बिलकुल ज़मीन तक झुक जातीं। बर्फ़ का मौसम गुज़र जाता और वे फिर ऊपर उठ आतीं, बिना टूटे। हम भी इस देश में बचे रहने के लिए यही लचकीलापन सीख रहे थे।

मैं घूम-घूम कर देख रही हूँ। पहचान बिठा रही हूँ इस नए परिवेश से। कोने का घर, खिड़कियों से भरपूर। चारों तरफ़ की हरियाली खिड़कियों के शीशों से अन्दर सरक आती। मैं दिन में पर्दे नहीं डालती। बस देखती हूँ बाईं ओर की खिड़की से सूर्योदय, डायनिंग रूम की खिड़की से सूर्यास्त। दूर दाईं ओर से दिन की धूप और रात के चाँद- सितारे।

शेखर व्यस्त रहते हैं- बाहर। बाहर मायने नौकरी पर या घर के बाहर लॉन की घास काटने या फिर ड्राइव-वे की बर्फ़ हटाने में।

मैंने नौकरी छोड़ दी है। अहान को कोई सँभाल ले ऐसा प्रबन्ध हो नहीं पाता। शेखर की नौकरी ऐसी कि न नियमित काम के घंटे, न दिन और न वार। मैं और अहान इस घर को अपनी उपस्थिति से भरते रहते हैं।

दिन-भर घर के भीतर व्यस्त –सी भागती रहती हूँ। कभी रुकती हूँ और खिड़कियों से बाहर की दुनिया को भी भीतर बुला लेती हूँ। मेरा ज़्यादा वक्त रसोई में बीतता है- स्टोव से सिंक तक। सिंक के ऊपर बड़ी –सी खिड़की है। खाना बनाते, बर्तन धोते हुए मैं यहीं खड़ी रहती हूँ, बाहर

देखती हुई। बाक़ी घर की तरफ़ मेरी पीठ होने से इस खिड़की पर खड़ी होकर मैं सुकून सा महसूस करती हूँ। अपने मन की बातें अपने चेहरे पर आने देती हूँ। कुछ अच्छा-सा महसूस हो तो धीमे- धीमे कोई पुराने गीत की पंक्तियाँ गुनगुनाती हूँ। मन भरा हो तो बाहर देखते हुए रो भी लेती हूँ। चेहरा पोंछकर फिर वापिस अन्दर। किसी को कुछ पता नहीं चलता सिवाए इस खिड़की के।

कभी-कभी सड़क से कोई कार गुज़र जाती है। मैं देखती रहती हूँ। बाहर की इस स्थिर तस्वीर में यह एक छोटा-सा कम्पन अच्छा लगता है। मुझे अभी गाड़ी चलानी नहीं आती। एक गाड़ी है जिसे शेखर काम पर ले जाते हैं। इस उपनगर में बिना गाड़ी के आप बाज़ार तक नहीं जा सकते। मैं घर के अन्दर हूँ। बाहर आ सकती हूँ। आस-पास घूम सकती हूँ पर कोई इंसान दिखता ही नहीं।

मैं खिड़की से मौसमों का आना-जाना महसूस करती हूँ। कुछ कहना चाहती हूँ उनसे। कुछ शब्द मन में घुमड़ते हैं। मैं कविता जैसा कुछ रचने की कोशिश करती हूँ पर शब्द फिसल जाते हैं।

इस खिड़कियों वाले घर में रहते हुए मुझे अक्सर 'लेडी ऑफ़ शैलॉट' की याद आती है। यूँ ही बहुत सी यादें एक-दूसरे की उँगली थामें चली आती हैं। यादों के छल्ले। एक में दूसरा उलझा हुआ। स्मृतियाँ लिपटती जाती हैं आपकी सोच पर और आपका दिमाग़ फिरकनी की तरह अनवरत घूमने लगता है, तेज़-तेज़।

कहाँ की कहाँ पहुँच जाती हूँ। जहाँ बात शुरू हुई थी, वह सिरा ही गुम हो जाता है।

ऐन खिड़की के सामने एक छोटी सी झाड़ी है। गर्मियों में उसकी डालियों में सफ़ेद फूल भर जाते हैं। गुच्छों में नहीं बल्कि उनकी लम्बी हरी बाहों में लिपटे से। पतझड़ में झाड़ी ठूँठ हो जाती है और सर्दियों में बर्फ़ का छोटा-सा टीला। बर्फ़ पिघलने पर काँच के फानूस की तरह।

इस खिड़की के नीचे, घर के आगे हरे रंग का गलीचा है, घास का बना हुआ। फिर छोटी –सी पटरी, बीच की सड़क और सड़क के उस पार ठीक मेरे घर के सामने उस तरफ़ की समानान्तर पटरी। एक ऊँचाई लिए हुए लॉन और उस पर बना एक सादा सा घर। उस घर के लॉन में, एक खंबे पर अमरीकी झंडा लहराता रहता है। मैं अपनी खिड़की के शीशे के इस पार से, आते- जाते हुए उस घर को देखती रहती हूँ।

शेखर ने बाहर काम करते हुए उस आदमी को अपना परिचय देकर हाथ मिलाया था। कुछ बातें की थीं। मझोले कद का गोरा, थोड़ा गोल-मोल चेहरे वाला प्रौढ़ आदमी। 'प्रकाश मामा' मैंने उसे यह नाम देकर, उसकी पहचान पर अपना ही ठप्पा लगा दिया। तो यह था हमारा पड़ोसी। नहीं, हम उसके नए पड़ोसी थे।

वैसे तो एक घर बाईं ओर भी था, लाल शिंगल की लकड़ी वाला। एक घर दाएँ कोने में भी था किसी चीनी परिवार का। ड्राइव-वे की सड़क के पार भी एक सफ़ेद घर था। सभी हमारे पड़ोसी। किसी के भी लॉन पर न किसी को बैठे देखा और न किसी बच्चे को खेलते। बाद में पता चला कि घर के आगे का लॉन हाथी के दाँत की तरह सिर्फ़ दिखाने के लिए है और इस्तेमाल करने के लिए केवल पीछे का लॉन।

मैं देखती हूँ। रविवार की सुबह उस झंडा लहराते घर में एक अधेड़ दंपति, कार सड़क पर ही रोककर धीरे से बाहर आते हैं। कार का ट्रंक खोलकर ग्रौसरी वाले बड़े- बड़े लिफ़ाफ़े निकालते हैं। दोनों हाथों में उठाकर घर के अन्दर दाख़िल हो जाते हैं।

कौन हैं ये लोग?

"मिस्टर एन्ड मिसेज़ गिब्स।" शेखर ने बताया। यह भी कि "जो गिब्स" रिपब्लिकन है। ये लोग हर रविवार को चर्च जाते हैं और आते वक्त ग्रौसरी लेकर लौटते हैं।

मैंने उन्हें समीप से नहीं देखा। दूर से चेहरे नहीं पहचाने जाते।

अहान को स्ट्रॉलर में डालकर बाहर ताज़ी हवा में साँस लेने के लिए निकल आई। मिसेज़ गिब्स सड़क किनारे लगे मेल-बॉक्स से अपनी डाक निकाल रही थीं।

मैं मुस्कराई। प्रत्युत्तर में वह भी मुस्कराईं पर नाप के।

"मैं महिका हूँ, आपकी नई पड़ोसन।"

"जो पहले आपके घर में रहती थीं न जॉयस, वह मेरी बहुत अच्छी मित्र थी।"

मैं चुप। सोच रही थी कि शायद उनकी मित्र की जगह मेरा होना उन्हें खला था या यूँ ही कहा है।

वह बच्चे को देख रही थीं।

"मैं स्कूल में नर्स हूँ। कभी ज़रूरत पड़े तो आ सकती हो।"

मैंने विनम्रता से धन्यवाद कहा।

"मेरी बेटी ने भी नर्सिंग की पढ़ाई पूरी कर ली है। उसका मंगेतर आया हुआ है।"

मैंने दूर टहलते उस युवक को देखा। वह किसी भी हालत में 'सर लैंसीलॉट' नहीं था। दुबला-पतला, आँखों पर सुनहरा चश्मा। उसके सिर का आकार मुझे अजीब–सा लगा।

उस दिन पहली बार मैंने अपनी पड़ोसन को नज़दीक से देखा शायद आख़िरी बार भी। अब उन्होंने ऑटोमैटिक गैराज खोलने वाला यंत्र लगवा लिया था।

वह लोग सीधे कार में आते और गैराज का दरवाज़ा अपने-आप खुल जाता। कार अन्दर चली जाती और साथ ही वे लोग भी।

सर्दियों में जैसे सभी भूमिगत हो जाते।

गर्मियों में 'जो गिब्स' बाहर घास काटता। झाड़ियों को तराशता। कभी-कभी उसकी बेटी और दामाद लाल रंग की गाड़ी में आते। गाड़ी बाहर पार्क करके भीतर चले जाते।

एक दिन उनके हाथ में छोटी सी बच्चे को उठाने वाली बॉस्कट थी। उसमें से एक हल्का गुलाबी कम्बल झाँक गया।

मैं तस्वीर बुनती हूँ। गिब्स नाना-नानी बन गए।

एक दिन वह बच्ची बहुत प्यारा सा फ्रॉक पहनकर, सिर पर हैट लगाए, पिता की उँगली पकड़े अपने ननिहाल में घुस रही थी। उसकी माँ गोदी में एक छोटे से शिशु को उठाए पीछे रह गई।

किसी सुन्दर पारिवारिक तस्वीर बनने की प्रक्रिया चल रही थी!

अहान अब स्कूल जाने लगा। उसे 'हैलोवीन' पर सभी घरों से चॉकलेट और

कैंडीज़ इकट्ठी करनी हैं। वह सुपरमैन बना, भुतहा थैला उठाए आगे-आगे भागता है और मैं उसकी सुरक्षा के लिए उसके पीछे।

वह दौड़कर गिब्ज़ के घर की हल्की सी ऊँचाई चढ़ गया। उनके घर की घंटी बजा दी।

"ट्रिक और ट्रीट" वह चहका।

थोड़ा-सा दरवाज़ा खुला। उस पतली फाँक से हाथ बढ़ाकर किसी ने कुछ चॉकलेट उसके झोले में डाल दीं। वह मुड़ा। मैं पटरी पर खड़ी सब देख रही थी।

मैंने शुक्रिया का हाथ हिलाया। उधर से भी बाहर निकला हाथ हिला था। किस का? मैं जान नहीं पाई।

***

वक्त बीतने की अपनी आवाज़ होती है। कभी संगीत की लहरियों की तरह और कभी बादलों के टकराने जैसी। वक्त अगर चुपचाप, बे-आवाज़ गुज़रे तो समझो मौत की चुप्पी है।

एक दिन भयंकर घरघराने की आवाज़ों से कान के पर्दे फटते से लगे। मै भागकर अहान के कमरे की खिड़की से बाहर झाँकने लगी।

गिब्ज़ के घर के बाहर निर्माण कार्य चल रहा था। रोज़ बेहद शोर होता। तोड़-फोड़ होती। कुछ टूटता, कुछ बनता। कुछ हो रहा है पर क्या? तस्वीर धुँधली थी फिर मिट्टी बैठती गई। कुछ-कुछ स्पष्ट होने लगा। सामने वाले घर के गैराज के ऊपर एक बड़ा सा कमरा बनता लगा। आज उस पर भी लग गईं बाहर की ओर बढ़ी हुई खूबसूरत सी खिड़कियाँ। ड्राइव-वे पर डिज़ाइन वाली टाइलें।

मैं खाना पकाती हुई झाँक जाती या धोने वाले कपड़ों का टोकरा घसीटते हुए नज़र बाहर पड़ ही जाती।

न कोई और बाहर होता न मैं ही निकलती। मैंने कभी इन घरों की औरतों को बाहर नहीं देखा। सिर्फ़ छुट्टी वाले दिन मर्द लोग दिखते, घास काटते हुए।

जो गिब्स भी लॉन पर झड़ी हुई पत्तियाँ बुहार रहा था। पता नहीं कब शेखर उनके पास चले गए। सब ख़बर लेकर मुझे बता दी।

यही कि जो गिब्स इटालियन है। इनके यहाँ 'माँ-बेटी' घर की परम्परा है। उन्होंने घर बड़ा करके अपने लिए एक स्वतंत्र हिस्सा बनवाया है। रसोई भी साझी रहेगी। बाक़ी का घर, बेटी और उसके परिवार के लिए।

"अगर कल दामाद के साथ न बनी तो?" मुझे शंका हुई।

"अरे कुछ नहीं। वह कहता है बाद में भी तो इस इकलौती बेटी को ही देना है। दोनों को इस वक्त एक-दूसरे की ज़रूरत है।"

"अहान, तुम भी यूँ हमारे साथ रहना। मम्मी-डैडी का ख़याल रखना।"

"नो, मैं तो अपना बड़ा वाला घर लूँगा। उसमें स्वीमिंग-पूल होगा। बाहर टेनिस-कोर्ट।"

मुझे अच्छा नहीं लगा पर हँस दी।

"अरे शेख़चिल्ली, पहले बड़ा तो हो जा।"

इस बीच वक्त ज़रूर बढ़ता जा रहा था। व्यस्तताओं और वक्त में होड़ लगी थी कि कौन आगे निकलेगा।

जब भी कभी सिंक के पास काम करती, नज़र बाहर पड़ ही जाती। ज़रूरी नहीं कि उस समय दूसरे लोग भी बाहर हों। एकदम सोच का धागा खिंचा। हो सकता है वे लोग भी अपनी खिड़कियों से हमें झाँकते हों। यूँ ही हमारे बारे में कल्पनाएँ करते हों। शायद!

हैलोवीन पर सफ़ेद चादरों के भूत-प्रेत पेड़ों की डालियों पर लटक जाते और क्रिसमिस पर घर रोशनियों से जगमगा उठते। ईस्टर पर ट्यूलिप क्यारियों में झाँकते और रंगे हुए अंडे लॉन पर बिखरे दिखते। मेरे मन के पटल पर चित्र बनते, फैलते और धुँधला जाते।

मैं उस काँच की खिड़की के बाहर गुज़रते समय को देखती। झाड़ी बड़ी हो चुकी थी। उसकी शाखाएँ मेरे लिए चोर-झरोखे बना देतीं। सब कुछ देखती पर मैं ओझल थी। रहस्यमयी, अकेली फिर भी व्यस्त।

दुनिया अपनी रफ़्तार से चल रही थी और ज़िंदगी क़दमों में नहीं वर्षों के नाप से आगे बढ़ गई।

अब हमारे पास एक और कार थी। मैं भी सर्राटे से बाहर निकलती। बाज़ार के काम निबटाने या अहान को एक जगह से दूसरी जगह ले जाने के लिए।

सड़क पर अब भी इक्का-दुक्का ही कार निकलती। पटरी पर लोग हाथों में प्लास्टिक की थैलियाँ उठाए अपने कुत्तों को घुमाने निकलते। अब जो गिब्स की जगह उसका जमाई लॉन- मोअर चलाकर घास काटता।

उस दिन मैं ग्रौसरी लेने गई। लाइन में मुझसे पहले खड़ा आदमी रेहड़ी में सामान रख चुका था। जेब से वॉलेट निकालकर पैसे देते हुए उसने मुझे देखा। जितनी देर देखना चाहिए था उससे कुछ पल ज़्यादा ही। हम औरतों में जो एक छठी इन्द्री होती है न उसने मुझे यह चोरी की रिपोर्ट लिखवा दी।

मैं जल्दी से अपनी चीज़ें 'कन्वेयर बेल्ट' पर रखने लगी जो कि मेरे सामान के साथ आगे बढ़नी शुरू हो चुकी थी। सिर उठाते ही निगाह दरवाज़े से बाहर निकलते आदमी पर पड़ गई। एकदम पहचान लिया। यह वही था मेरा पड़ोसी। मैं उसे सिर्फ़ एक दूरी से ही पहचानती थी। कोई चीज़ आँखों के बहुत पास आ जाए तो अस्पष्ट हो जाती है वैसे ही वह आदमी कुछ पल पहले मेरे लिए अस्पष्ट था।

हर वक्त मेरे मस्तिष्क के करघे पर विचारों का ताना-बाना अपनी चदरिया बुनता रहता। कोई उत्सुकता या प्रतिक्रिया नहीं। बस, मैं और मेरा बुना हुआ जाल। मेरी अपनी दुनिया चलती। अहान और शेखर होते उसमें। मैं ज़िंदगी की समस्याएँ उधेड़ती। समधान बुनती। मेरे अपने सपनों की रुई धुन्नी जा रही थी। मैं किचन की इस खिड़की से बाहर आना चाहती थी। बहुत अरसा हो गया यहीं खड़े-खड़े। बाहर निकलने के लिए रास्ता टटोलती हूँ।

शेखर के पास समय नहीं- कह दिया उन्होंने।

"अहान बड़ा हो रहा है।"

"हुआ तो नहीं न?"

"थोड़ा और सब्र करना होगा।"

"कब तक?"

मेरा दम घुटता है बस एक ही तरह ही नाशुक्री दिनचर्या से। मुझे अब यह घर क़ैद लगने लगा है।

कभी-कभी मन यूँ ही भारी हो जाता है और आँखों में बिना वजह ही भाप उठने लगती है। उस समय सब की ओर पीठ फेरकर खिड़की से बाहर अँधेरे में देखने लगती हूँ। मेरे हाथ

अनमने से बर्त्तन धो रहे हैं।

बाहर जैसे विस्फ़ोट हुआ। दिल बुरी तरह से धड़का।

थोड़ी देर में चकाचौंध करतीं लाल-नीली रोशनियाँ। सॉयरन की आवाज़ नहीं आई।

मैंने खिड़की से उचक कर देखा। घर के बाईं ओर कुछ हलचल थी।

थोड़ी देर बाद दरवाज़ा खोलकर बाहर निकल आई।

जहाँ सड़क एक ख़ूबसूरत मोड़ लेती है वहीं एक बदसूरत दृश्य था।

एक किशोर सड़क पर पड़ा हुआ था- निस्पंद।

एक बाइक पेड़ के साथ टकराकर ज़मीन पर गिरी थी- क्षत-विक्षत।

कुछ और लोग भी घरों से बाहर निकल आए। वे दोनों ओर की पटरियों पर खड़े बस देख रहे थे।

एम्बुलेंस आ चुकी है। शायद मेरी तरह ही किसी ने खिड़की के भीतर से ही देखकर फ़ोन कर दिया होगा।

गहरी नीली वर्दी वाले दो आपातकालीन चिकित्सा तकनीशियन उसे स्ट्रेचर पर डालने की तैयारी कर रहे हैं। थोड़ी दूरी पर पुलिस की गाड़ी भी पहुँच कर खड़ी हो गई।

"क्या हुआ?" मैंने साथ खड़े आदमी से पूछा।

"शायद वह सामने वाले घर की किसी लड़की का बॉयफ्रेंड था। आजकल यहाँ इनके दोस्तों की काफ़ी आवा-जाही रहती है।"

चुपचाप लौट आई मैं। मन अजीब सा हो गया।

पता नहीं किस का बेटा है? कहाँ से आया है? यहाँ ज़मीन पर निस्पन्द पड़ा है। माँ-बाप को शायद मालूम भी नहीं होगा।

मेरा अहान भी तो हो सकता था। सोचकर ही कंपकंपी दौड़ गई। अपने पर ग्लानि हुई। छि:, मैं सिर्फ़ अपनी ही छोटी-छोटी गुंजलों में उलझी हुई थी।

***

अब जो गिब्स भी कम ही बाहर नज़र आता। लड़कियाँ भी धीरे-धीरे अदृश्य हो रही थीं। शायद कॉलेज चली गईं या विवाह हो गए। कुछ नहीं मालूम सिवाए इसके कि अब वह कभी दिखती नहीं।

अहान भी कॉलेज चला गया और मैंने इसी शहर में नौकरी ढूँढ़ ली। लौटकर खिड़की के बाहर झाँकती तो सर्दियों का कुहासा अवसाद की तरह फैला होता। इस खिड़की के हिस्से सूर्यास्त के जादुई, मन को बाँध लेने वाले रंग नहीं आते। आकाश साफ़ हो तो काफ़ी रात गए मैं गिब्स के घर के एकदम ऊपर पेड़ों के बीच टँगे चाँद को देखकर मुस्कुरा उठती। लगता जैसे वह चोरी से सिर्फ़ मुझसे मिलने ही आया हो। बाक़ी तो सब घरों की खिड़कियों में भी बत्तियाँ बुझ चुकी होतीं।

अब न कोई बर्फ़ हटाता और न ही घास काटता। वक्त का बदलना जब अपनी ही स्वाभाविक गति से होता है तो उसकी रेखाएँ पकड़ में नहीं आतीं। जो लोग सर्दियों में बर्फ़ हटाते वही गर्मियों में घास भी काट जाते। लॉन सेवा वाले घरों के आगे ट्रक रोकते। ट्रक का पिछला दरवाज़ा ढलान वाला पुल बनकर ज़मीन पर टिक जाता। एक आदमी लॉन-मोअर पर ही सवार होकर सड़क पर उतरता। इस बात से बेपरवाह कि पड़ोसियों के कानों की शामत आ रही होगी। उसके कानों पर इयर-प्लग होते। वह मस्ती से आड़ा-तिरछा पेड़ों के गिर्द गोलाई में घूमता अपने करतब दिखाता। आनन-फानन में घास पर सीधी या तिरछी लाइनें बन जातीं।

उसका साथी दूसरी ओर से घास के किनारों को तराशता, खर-पतवार की धुनाई करता। आधे घंटे के भीतर वे दोनों वापिस ट्रक में। दरवाज़ा बन्द और वे आगे बढ़ जाते।

अब लोग मशीनों और दूसरे देशों से आए प्रवासी काम करने वालों की सुविधा हो जाने से बाहर के काम करने के लिए न के बराबर ही बाहर दिखते। यहाँ तक कि घास और पौधों को पानी देने के लिए भी स्वचालित फव्वारे लग गए। मशीनें बाहर आती गईं और इंसान भीतर विलीन होते जा रहे थे।

एक खुशनुमा मौसम में जो गिब्स बाहर दिखा। शिथिल, दुर्बल और लाठी की टेक लिए हुए। वही जो कभी गर्व से अपनी सम्पदा का मुआयना करता दिखता था आज बेचारा सा लगा। जैसे किसी और की ज़मीन पर ग़लती से आ गया हो। थोड़ी देर इधर-उधर देखकर धीमे क़दमों से वह अन्दर चला गया।

"मुझे लगता है जो गिब्स बीमार है।" मैंने शेखर से कहा।

"शायद। अब तो वह काफ़ी बूढ़ा भी हो चुका होगा।"

"शायद!"

मुझे बाहर कुछ दिखता नहीं या कहूँ कि मेरे पास बाहर झाँकने की फुर्सत ही नहीं। तस्वीर खाली है। 'शायद' की बहुत सी जगह ख़ाली है। जो दिखता नहीं उसको भरा कैसे जाए?

शायद उसकी पत्नी बीमार हो या वह? उसकी बेटी ? पता नहीं कुछ भी।

सुबह- सुबह काम पर जाने से पहले नज़र बाहर पड़ ही गई। धुँधली सुबह की हर तस्वीर फीके और मटमैले रंगों में उकेरी गई लगी। उस चित्र में अस्पताल की कोई प्राइवेट वैन खड़ी थी। बुझी बत्तियों के साथ। कुछ लोग धीरे-धीरे घर के अन्दर से एक स्ट्रेचर उठाए बाहर निकल रहे थे, बहुत धीरे सँभल-सँभल कर।

मेरा बाहर निकलना अशिष्टता होती। मैंने अलग-अलग खिड़कियों से इस दृश्य के हिस्से इकट्ठे करने की कोशिश की। कुछ स्लेटी- काले रंगों की अमूर्त सी तस्वीर उभरी। सब कुछ अस्पष्ट।

स्पष्ट शाम को लौटने पर शेखर ने कर दिया।

"जो गिब्स को कैंसर था। एक गुर्दा निकल चुका है। हालत काफ़ी गम्भीर लगती है उसकी।"

"हम पड़ोसी होने के नाते कुछ नहीं कर सकते?"

"मैंने उसके दामाद को अफ़सोस जता दिया है।" शेखर अपना फ़र्ज़ पूरा कर चुके थे।

"क्या कुछ खान-वाना बना कर दे सकते हैं?"

"क्या? दाल-चावल?" शेखर ने मुझे यूँ देखा जैसे मैने कोई बेहद बेवकूफ़ी भरी बात कह दी हो।

"जानती हो न शुरू के तीन साल तक मैं दोस्ती का हाथ बढ़ाने के लिए हर क्रिसमिस पर उनको वाइन की बोतल देकर आता था। कभी कोई जवाब मिला?"

मैं चुप। मेरा उतरा हुआ मुँह देखकर शेखर थोड़े नर्म पड़े।

"कहो तो उन्हें 'शीघ्र स्वास्थ्य लाभ' टाइप का कॉर्ड भेज सकते हैं।"

"सामने वाला घर और डाक से कॉर्ड!" अब मैं चौंकी।

"शांत बैठी रहो। इतने साल हो गए। हाय-बाय से ज़्यादा तो कोई रिश्ता पनपा नहीं।"

अब दामाद शाम को कूड़े के कनस्तर घर के बाहर रखने को निकलता है। या काम से लौटते समय अपनी लाल रंग की कार बाहर रोककर, पहले उन ख़ाली कनस्तरों को उठाकर अन्दर ले जाता है। वह हर नई कार लाल रंग की ही लेता है। आजकल वह हर समय, हर मौसम में बेसबॉल हैट पहने हुए दिखता।

सिवाए उस आदमी के और कोई व्यक्ति मैने उस घर के बाहर नहीं देखा। या तो मैंने ही नहीं देखा या शायद बाक़ी लोग सीधे कार में बैठकर अन्दर-बाहर जाते होंगे।

***

कोरोना का असर। लोग और भी कम दिखने लगे। सड़कें भी वीरान। शायद ही कोई गाड़ी गुज़रती।

शेखर को घर में रहने की आदत नहीं। बेहद ऊब चुके थे। बागवानी का पुराना शौक पकड़ लिया।

"बुरी ख़बर है।" एक दिन आकर बताया।

"सामने वाले जो गिब्स की मौत हो गई थी- दो हफ़्ते पहले और परसों उसकी पत्नी भी गुज़र गई।"

मैं मुँह बाए सुन रही थी।

"ऐसे अचानक!"

"वह बहुत वर्षों से बिस्तर से लगी हुई थी। उसे 'जो' की मौत के बारे में बताया भी नहीं गया। वह उस हालत में थी ही नहीं। बेचारे इस महामारी के कारण औपचारिक अन्तिम संस्कार भी नहीं कर सके।"

"ओह! आपको कैसे मालूम?"

"मैं बाहर यॉर्ड में काम कर रहा था। उसका दामाद कार पार्क करके ख़ुद मेरे पास आया। उस की सज्जनता थी कि बता दिया नहीं तो हमें कभी पता भी नहीं चलता।"

मैं चुप थी। एक गहरा उच्छवास निकल ही गया जिसके पीछे बहुत कुछ अनकहा था।

उम्र की, वक्त की शिथिलता ने ज़िंदगी की चरखी पर पकड़ ढीली कर दी। न हाथों में दम था और न आँखों में वह जोत। सपनों के साथ-साथ कल्पना के चित्रों के रंग भी चटक से धूमिलता में बदलते जा रहे थे। हर बात बेमानी। ऊबी हुई।

घर के अन्दर दम घुटता। कुछ भी सामान्य नहीं रह गया था।

ऐसे कब तक चलेगा? सोचा, शेखर से कहती हूँ कि चलो, थोड़ा घर के बाहर ही चहल-क़दमी कर आएँ।

मैं घर से बाहर निकल आई। शेखर बाहर क्यारियों में काम कर रहे थे। पास आकर ठिठक गई।

उनसे थोड़ी-सी दूरी पर वही गिब्स का दामाद बेसबॉल कैप पहने खड़ा था। मैंने ध्यान से देखा। वह उतना दुबला-पतला नहीं था जितना दूर से लगता था। समीप से देखने पर उसका क़द भी ऊँचा हो गया। उसके प्रौढ़ चेहरे पर फ्रेंच-कट दाढ़ी थी, खिचड़ी बालों की।

मैं पहली बार उसे सीधे देख रही थी बिना किसी खिड़की की आड़ के, बिना किसी काँच की मध्यस्थता के। मेरी बनाई हुई छवि से एकदम अलग थी उसकी हक़ीक़त। उसने भरपूर नज़रें उठाकर मुझे देखा। फिर धीरे से हाथ हिलाते हुए 'हाय' कहा। मैंने भी हाथ हिला कर जवाब दे दिया।

मुझे पक्का मालूम है कि उसने भी पहली बार मुझे सड़क के इस पार आकर देखा था।

उसका सिर सामान्य था। सफ़ेद बालों और दाढ़ी के साथ वह एक सभ्य और सुसंस्कृत आदमी लगा। मुझे अपनी बुनी तस्वीर उधेड़ कर सुधार करना होगा। अब तक हम लोगों में छह फ़ुट की नहीं छह सौ फ़ुट की सामाजिक दूरी थी- हर समय।

"मार्क, मेरी पत्नी महिका।" शेखर ने परिचय कराया।

"नाइस टू मीट यू।" वह अब भी कौतुक से मुझे देखे जा रहा था।

मैं सोच रही थी, क्या कहूँ? कितने दशकों से हम आमने-सामने रह रहे हैं और आज कह रहा है- मिल कर ख़ुशी हुई?

सैर करते हुए मैंने शेखर से पूछा, "उसका नाम क्या बताया?"

"मार्क।"

"तुम्हें पता था?"

"नहीं, अभी उसने बताया। कह रहा था कि वे लोग परसों यहाँ से जा रहे हैं। गिब्स के जाने के बाद उन दोनों के लिए यह घर बहुत बड़ा है।"

मैं सुन नहीं रही थी। उसका नाम दोहरा रही थी- मार्क। अब वह अजीब से सिर वाला आदमी नहीं रहा था।

सैर करते क़दम विलो के पेड़ के पास ठिठक गए। उसकी शाखाएँ ज़मीन से काफ़ी ऊँची उठी लगीं। उसका तना साफ़ दिख रहा था। जैसे रंगमंच से पर्दा उठ गया हो।

***

अगले रविवार सामने वाले घर के आगे एक बड़ा-सा सफ़ेद ट्रक खड़ा था। शायद बहुत तड़के से ही सामान लादा जा चुका था।

हम दोनों घर से बाहर निकल आए।

मार्क शायद उस ट्रक के चलने का ही इंतज़ार कर रहा था। लाल गाड़ी में एक महिला बैठी दिखी। अन्दाज़ा लगाया कि उसकी पत्नी होगी।

ड्राइवर वाली तरफ़ का दरवाज़ा खोलकर ज्यों ही वह बैठने लगा मैं ज़ोर से चिल्लाई-

"बॉय मार्क।" उसकी पत्नी का नाम और शक्ल मुझे अभी भी नहीं मालूम थी।

"गुड-लक मार्क।" मैंने फिर से ऊँची आवाज़ में कहा। मेरी आवाज़ में पहचान वाली खनक थी।

वह पलट कर मुस्कराया। हाथ हिलाकर विदा ली।

लाल गाड़ी दौड़ पड़ी। मैं काफ़ी देर तक जाती हुई गाड़ी को हाथ हिलाती रही। मेरे चेहरे पर अभी भी मुस्कान चिपकी हुई थी।

000

वह उस्मान को जानता है

रमेश शर्मा

रमेश शर्मा
92 श्रीकुंज, बोईरदादर, रायगढ़
(छत्तीसगढ़)
मोबाइल-9752685148
ईमेल- rameshbaba.2010@gmail.com

आज रविवार का दिन था और जनवरी का महीना। आँगन में खड़ा अमरूद का पेड़ इन दिनों अमरूदों से लदा हुआ था; जिस पर सुबह से चिड़ियाँ आकर शोर मचा रही थीं। चिड़ियों का शोर उसे अच्छा लगता था। वे कुतर-कुतर कर अमरूद से अपना हिस्सा अलग कर पेट भर लेतीं और बचे हिस्से को आँगन में टपका कर उड़ जातीं।

कुतरे हुए टपके अमरूदों को देखकर उसका बेटा कहता "वो देखो पापा चिड़ियों का पेट कितना छोटा होता है। उनका आहार कितना कम है।" कुतरे हुए हिस्सों को देखकर ही वह उनके आहार का अंदाजा लगाता। उसकी बातें उसे अच्छी लगतीं।

कभी-कभी वह उससे जानबूझ कर पूछ बैठता "इंसान के आहार के बारे में पता करना हो तो कैसे पता करेंगे ?" वह कुछ देर सोचता फिर तपाक से कह उठता - "इंसान के आहार के बारे में इंसान भला खुद कैसे बता सकता है? उसे तो धरती के दूसरे प्राणी ही ठीक-ठीक बता पाएँगे। जैसे आप हमारी अनिच्छा के विरुद्ध एक बार पेड़ का पूरा अमरूद तोड़वा कर बाज़ार में बिकवा दिए थे, तो उस वक्त चिड़ियाँ सोची होंगी कि इंसान को कुछ भी नहीं पूरता। उस वक्त उसकी बातें सुनकर वह शर्मिन्दगी से भर उठा था। उसे लगा था कि अलग-अलग समय में अलग-अलग आदमी इस तरह की हरकतों को हर घड़ी अंजाम देते होंगे और धरती के प्राणियों को लगता होगा कि इंसान हर वक्त कैसे भूखा ही रहता है। उसे कुछ भी नहीं पूरता। आज बेटा भी सुबह-सुबह उसके साथ जाग गया था और उसने ज़िद की, कि पापा आज घूमाने ले चलो न ! अमूमन वह ज़िद करता नहीं था इस बात को राघव हमेशा महसूस करता आया है। उसे लगा अगर वह कह रहा है तो उसे उसकी बात मान लेनी चाहिए। आज मौसम भी बड़ा साफ़ और खुशगवार था। बहुत दिनों बाद उसे छुट्टी भी मिली थी, तो वह खुश था, वरना नौकरी की व्यस्तता इतनी थी कि कहाँ क्या हो रहा है उसे इस बात की ख़बर ही नहीं रहती थी।

अचानक दरवाज़े पर किसी ने दस्तक दी। वह अपनी पत्नी की ओर प्रश्न भरी निगाह से कुछ देर देखता रहा। देखा-देखी और उहापोह के बीच राघव दरवाज़े की ओर जा ही रहा था कि पत्नी ने आवाज़ दी- "रुकिए मैं आ रही हूँ !"

"क्यों भला ?" उसे थोड़ा अचरज हुआ। वह उसकी ओर अचरज भरी निगाह से फिर देखने लगा।

इस दरमियान दो मिनट देखा-देखी में ही गुज़र गए। दरवाज़ा न खुलता देख दस्तक की जगह अब दरवाज़े पर एक जनानी आवाज़ उभर आई - "मैं 93 नंबर वाली पड़ोस की मेहज़बीन बोल रही हूँ ! वह फिर से पत्नी की ओर देखने लगा। 93 नंबर वाली पड़ोस की मेहज़बीन को न जान पाने की हैरानी राघव के चेहरे पर साफ़ नज़र आ रही थी। उसने पत्नी की ओर इशारा किया कि वह जल्दी जाकर उनसे रु-ब-रू हो ले।

"सुबह-सुबह भला क्या बात हो गई !" किचन से बाहर निकलते हुए पत्नी के चेहरे पर थोड़ी

हैरानी उभर आई।

नई नौकरी और नया मोहल्ला। इस नए मोहल्ले में आस-पड़ोस और आस-पड़ोस के रिश्तों के मनोविज्ञान को जानने से वह उसी दिन विलग हो गया, जिस दिन से वह यहाँ रहकर नई नौकरी पर जाने लगा था। मोहल्ले की समिति की बैठकों में भी कभी वह जा नहीं पाता था। धीरे-धीरे आस-पड़ोस से वह विदा होता चला गया। जो कुछ होता उस दुनियादारी को पत्नी सँभालती। जब ज़रूरत समझती तो राघव से कभी चर्चा कर लेती। पत्नी समझ रही थी कि नौकरी के नाम पर राघव कंपनी के लिए सिर्फ एक मुनाफ़े का प्रतिनिधि भर रह गया है। केवल मुनाफ़ा पहुँचाओ और बदले में तनख्वाह लेते रहो। पुरानी नौकरी को भी वह इसी संजीदगी से पहले करता रहा था, पर एक दिन अचानक जब उसे नौकरी से निकाले जाने का आदेश हुआ और उस आदेश में जो कारण बताए गए, उन कारणों ने उसे सकते में डाल दिया था। उसे समझ में न आया कि उसके कामों से जब कभी कोई नुकसान कंपनी को न हुआ फिर यह सब कैसे हो गया?

"आप अपने समय का बड़ा हिस्सा सोशल मीडिया पर बिताते हैं। आप सरकार के विरुद्ध टिप्पणियाँ करते रहते हैं। कंपनी के काम के बजाय आपकी रुचि दीगर बातों में अधिक है।" -ये ऐसे कारण थे जिसके अर्थ राघव को बड़ी देर से समझ में तब आए जब वह नई नौकरी पर आ गया। मुनाफ़े का संबंध सरकार को खुश रखने से भी है, और कंपनी का कोई कर्मचारी जब सरकार के विरुद्ध टिप्पणी करने लगे तो सरकार की ओर से कंपनी को नुकसान उठाना पड़ सकता है। पता नहीं कब कौन सी कोयले की खदान सरकार छीन ले और दूसरे को बाँट दे। सरकार की कौन सी एजेंसी कब कंपनी पर छापा डाल दे और इस समझ के साथ फिर धीरे-धीरे राघव ने अपने को बाहरी दुनिया की गतिविधियों से एकदम विलग कर लिया।

राघव को इस बात का गहरा एहसास था कि जिस दिन कंपनी घाटे में आई उसकी नौकरी पर ख़ातरे के बादल फिर मँडराने लगेंगे। यह एहसास दिनों दिन उसके भीतर एक गुब्बारे की तरह फूल रहा था कि किसी दिन कोई सुई चुभी कि यह गुब्बारा धड़ाम से फट पड़ेगा। यह गुब्बारा कभी फूटे न, महज इसी फ़िक्र ने कभी उसे आस-पड़ोस का होने न दिया। यह 93 नम्बर वाली मेहज़बीन कौन होगी भला ? क्योंकि उसने कभी देखा भी नहीं था उन्हें। उनकी आवाज़ भी उसे अनजानी सी लगी। इसलिए इस सवाल ने आज उसे ठहरकर सोचने को मजबूर कर दिया था। यह सवाल उसके ज़ेहन में इस वक्त तैरने लगा, जिसका ज़िक्र वह पत्नी से करने से बच रहा था।

वह किस-किस को आख़िर यहाँ जानता है ? उसके मन में यह सवाल भी अचानक चलने लगा। इसी बीच बच्चे की ज़िद थोड़ी और बढ़ गई कि आज तो पापा के साथ घूमने जाना ही है, इसके बावजूद यह सवाल उसके भीतर मरा नहीं... एक ज़िंदा सवाल जो पड़ोस की मेहज़बीन को न जानने के प्रसंग से अचानक उसका पीछा करने लगा।

"वह अपने पड़ोसी तक को क्यों नहीं जानता?" इस तरह के सवाल यूँ तो कामकाजी आदमी के भीतर आजकल जन्मते नहीं पर किसी दिन कोई सवाल आ ही गया तो मन में फिर कई बातें आने-जाने भी लगती हैं। इस सवाल ने उसे थोड़ा-थोड़ा मनुष्य होने का आभास इस तरह करा दिया कि अचानक उसे याद आया कि उसके बच्चे के जन्म दिन पर उसने गमले में ऑफ़िस से लाकर एक गुलाब का पौधा भी रोपा था। पत्नी दरवाज़े की ओर मुड़ी और गुलाब के पौधे की याद आते ही वह दौड़कर छत पर चढ़ गया। छत पर चढ़ते ही उसे लगा कि छत पर चढ़े भी तो उसे महीनों हो गए। छत से आस-पड़ोस और शहर का कुछ हिस्सा उसे बड़ा मनमोहक लग रहा था। देखते-देखते उसकी नज़र कुछ दूर पर एक मकान के ऊपरी हिस्से में चली गई। उसे अचानक याद आया कि यह तो उस्मान का मकान है। जिस सवाल से वह जूझ रहा था उसका एक उत्तर यह भी उसे मिला कि हाँ वह तो उस्मान को जानता है। उस्मान को जानने की बात पर उसे भीतर से बड़ी ख़ुशी मिली। पर उसके मकान को यह क्या हुआ ? एकदम ठूँठ की तरह दिख रहा है। वह थोड़ा परेशान हुआ। वह याद करने लगा कि कितने दिनों पहले घर की इस छत पर वह आया था? और उस्मान से वह कब मिला था ?

दिमाग़ पर ज़ोर चलता रहा और उसकी नज़र गुलाब के उस पौधे पर पड़ी जिसे ऑफ़िस से गनीराम ने गीली मिट्टी और प्लास्टिक की पन्नी के साथ बड़े जतन से सँभाल कर उसे दिया था। चीज़ों को याद करने के लिए इसी बीच वह याद करने लगा कि गनीराम की मौत कब हुई थी। हाँ उसे याद आया ... लगभग चार माह पहले। अगस्त के महीने में। उस दिन भारी तेज़ बारिश हो रही थी। गनीराम अपनी बेटी को स्कूल छोड़ने जा रहा था और वे तेज़ बारिश में फँसकर एक जगह रुक गए थे। स्कूल शहर से थोड़ी दूर पर था। जिस जगह वे बारिश से बचने ओट पाने को रुकने की सोच रहे थे, वह एकदम सुनसान जगह थी। उस दिन खूब बिजली कड़क रही थी। तीन युवक वहाँ बारिश से बचने पहले से ही खड़े थे। उनका हुलिया थोड़ा अजीब लग रहा था। बात-बात पर उनकी ज़ुबान फिसल रही थी। उन तीनों ने उन्हें जिस नज़र से देखा गनीराम को समझ में न आया कि वे वहाँ रुकें कि न रुकें। बारिश चूँकि तेज़ हो गई थी इसलिए उन्हें वहाँ रुकना पड़ा।

पूरा वाक़या जिसे कितनी आसानी से वह भूल चुका था इस गुलाब के पौधे को देखने मात्र से उसे याद आने लगा था। उसे सब कुछ याद आ गया था। उस्मान ने ही उस घटना की रिपोर्टिंग की थी। गनीराम के संबंध में कुछ जानकारी जुटाने कई बार इस सिलसिले में वह उनके ऑफ़िस आया था और वहीं उस्मान से उसकी मुलाक़ात हुई थी। बात-बात में उससे उसे यह भी जानकारी मिली थी कि वह उसी के मोहल्ले में रहता है और आते-जाते उसने उस्मान के घर को पहचान भी लिया था। गनीराम की सत्रह साल की बेटी के साथ उस दिन बर्बर तरीके से जो रेप हुआ और गनीराम की जिस तरह हत्या हुई वह घटना यद्यपि उनके ऑफ़िस में चर्चा का विषय कई दिनों तक बनी रही पर धीरे-धीरे यह घटना भी

गनीराम के जाने के बाद और वहाँ के काम के बोझ तले ज़मींदोज हो गई। वह ऑफ़िस के काम के घोड़े पर इस तरह सवार हुआ कि उस्मान तक को भूल गया। उस घटना के बाद फिर कभी उस्मान से उसकी मुलाकात न हो सकी।

अचानक उसे आज एक झटका सा लगा। वह सचमुच कितनी जल्दी जल्दी चीज़ों को भूल रहा है। वह गमले में लगे पौधे को एकटक देखता रहा। उसमें दो सुन्दर-सुन्दर फूल खिले हुए थे। उन फूलों को देखते-देखते उसकी आँखों में गनीराम और उसकी बेटी का मासूम चेहरा उतर आया। उसे अचानक एक झटका सा लगा कि हाँ उस्मान के साथ-साथ वह तो गनीराम और उसकी बेटी को भी कितने अच्छे से जानता है। अचानक उसे याद आया ...कितना अच्छा हँस लेता था गनीराम। कितनी मीठी-मीठी बातें करता था। घर परिवार बच्चे की ख़ैर-ख़ाबर पूछने की उसकी आदत आज उसे भीतर से परेशान करने लगी। और उसकी बेटी .... उससे बस एक बार मिला था वह। उस दिन वह कह रही थी कि वह उनके बेटे से कभी ज़रूर मिलने आएगी। उसका आना फिर कभी संभव न हुआ। उसे अचानक इस बात का एहसास हुआ कि कैसे कुछ चीज़ें एकदम अधूरी रह जाती हैं जीवन में। जैसे कि गनीराम की बेटी का उसके बेटे से मिलने की इच्छा का अधूरा रह जाना। इस एहसास ने उसे भीतर से थोड़ा और मनुष्य बना दिया। गनीराम की बेटी का चेहरा उसके सामने फिर एकबार घूम गया। वह भी बिलकुल गनीराम जैसी हँसमुख थी। उसे याद कर लगा जैसे उसका सीना दर्द से फट रहा है। कई बार ऐसा होता है कि ज़िंदा चीज़ें किस तरह बाक़ी चीज़ों को ज़िंदा कर सामने ला खड़ा करती है, गुलाब के उन ज़िंदा फूलों ने उसके भीतर मर चुकीं कई-कई चीज़ों को आज ज़िंदा कर दिया था। उसके भीतर सवाल दर सवाल आने लगे।

"क्या कभी उसने सोचा कि गनीराम और उसकी बेटी के मर जाने के बाद उसकी अकेली पत्नी का क्या हुआ? कभी उससे मिलकर उसकी सुध लेने की चिंता क्या उसके भीतर कभी जगी ? जो गनीराम उसके घर परिवार की ख़ैर-ख़बर उससे नित्य पूछ लेता था, उस गनीराम की भलमनसाहत का कभी उसे ख़याल आया ?"

जिस उस्मान ने गनीराम और उसकी बेटी के अपराधियों को जेल के सीखचों तक पहुँचाया,उससे भी तो वह और कभी नहीं मिला। आख़िर क्यों ?

उसे लगा ये फूल नहीं हैं। ये तो फूल के रूप में साक्षात् गनीराम और उसकी बेटी हैं जो अचानक उसके सामने ज़िंदा हो उठे हैं। वह लगभग पाँच महीने बाद इस छत पर आया था और छत पर आने भर से उसे याद आने लगा था कि वह आख़िर किसको-किसको जानता है। उसने दूर-दूर तक नज़र फेरी। उसकी आँखों में कुछ और भी जले हुए घर दिखने लगे। वह दिमाग पर ज़ोर डालने लगा कि इन जले हुए घरों में रहने वाले किन-किन लोगों को आख़िर वह जानता है पर उसे उस्मान के अलावा और किसी का चेहरा याद नहीं आया। उसे आश्चर्य हुआ कि इन जले हुए घरों के बारे में उसे कोई जानकारी नहीं है। अगर वह किसी से इस बात को कहे भी तो कोई उसकी बातों पर विश्वास कैसे करेगा ? पर सच तो यही था कि उसे सचमुच इन जले हुए घरों के बारे में जानकारी नहीं थी। वह कहे कि वह पिछले चार-पाँच महीनों से टीवी और अख़बारों की ख़बरों से एकदम बेख़बर है तो उसकी बातों पर भला कौन विश्वास करे? पर आज उसे यह एहसास हो रहा था कि सचमुच उसके लिए ये बातें कितनी सच हैं। आज उसे अचानक याद आया कि पत्नी ने एक बार उसे मोहल्ले की घटनाओं को लेकर कुछ बताने का प्रयास किया था पर उसने उसे यह कहकर झिड़क दिया था कि मेरा दिमाग़ न खाओ अभी....मुझे बहुत काम है।

"तो क्या पत्नी के पास इन जले हुए घरों के संबंध में सारी जानकारियाँ हैं ?" उसके मन में यह सवाल भी आने जाने लगा। उसे लगा ...छत पर आते ही वह सवालों के पिटारे पर अचानक बैठ गया है। अपना छुट्टी का दिन भला कौन बर्बाद करे... यह सोचकर इन सवालों के पिटारे से उठ जाना ही उसने बेहतर समझा। छत की सीढ़ियाँ नापते उसे घर के बरामदे तक उतरने में समय न लगा। पड़ोस की महज़बीन जा चुकी थी, पत्नी भी अपनी दिनचर्या में व्यस्त थी। वह भी अपनी दिनचर्या में लीन होने लगा।

बेटे को घुमाना आज उसकी पहली प्राथमिकता में थी। उसने सोचा शाम चार से छह इसके लिए उपयुक्त होगा। वह शेविंग करने की तैयारी करने लगा। टीवी पर इस बीच ख़बरें आने लगीं थीं कि आर्थिक मन्दी का बुरा असर इस वर्ष की जी डी पी पर पड़ेगा और हज़ारों नौकरियों के जाने का ख़तरा भी मंडराता रहेगा। यह ख़बर उसे अच्छी नहीं लगी। शेविंग करने की इच्छा उसके भीतर जाती रही पर किसी तरह मन को तसल्ली देकर उसने शेविंग तो कर लिया पर ख़बर का असर दिमाग में बना रहा। उसने चैनल बदल लिया। इस चैनल पर हिन्दू-मुस्लिम पर जबर्दस्त डिबेट चल रहा था। इस डिबेट पर उसकी रुचि नहीं थी। कहाँ दंगा हुआ? कौन मरा ? कौन बचा? उसकी जगह नौकरी की चिंता उसके लिए बड़ी चिंता थी। उसने टीवी ऑफ कर दिया और बाथरूम की ओर नहाने चला गया। सिर पर शावर की ठण्डी बूँदें टपक रहीं थीं पर मन को नौकरी जाने का खतरा गर्म कर खौलाता रहा। एक अजीब तरह का द्वंद्व उसके भीतर ही भीतर चलने लगा।

जब नोटबंदी हुई थी तो गनीराम अक्सर उससे कहा करता था कि नौकरी का कोई भरोसा नहीं, इसलिए मन में कुछ अलग सोचकर भी रखो सर ! आज उसे उसकी कुछ बातें जिसको उसने हवा में ही उस वक्त उड़ा दिया था सच लगने लगीं थीं। वह कहता था "टीवी मत देखा करो सर! टीवी में बुनियादी मुद्दों से भटकाने वाली बातें प्लांड होकर अधिक आ रही हैं। टीवी खोलो कि वही लव जेहाद, हिन्दू-मुस्लिम, फलाना-ढिकाना !" आज वह गनीराम को थोड़ा ठीक तरीके से और जानने लगा था।

गनीराम और उसमें न जाने कितनी समानताएँ और असमानताएँ थीं। उन सब पर वह सोचने को आज विवश था। वह भी तो

एक छोटी सी ही नौकरी करता था, उसकी भी चिंताएँ उसके जैसी ही तो थीं पर उसकी तरह उसने अपने आपको अपने परिवार तक ही तो नहीं समेट लिया था कि आस-पड़ोस की चिंता से आदमी अपने को एकदम विलग कर ले। गनीराम की चिंता में हर वह आदमी शामिल था जो उसके निकट और आस-पड़ोस में रहकर उसकी दुनिया से बावस्ता रखता था। उसमें और गनीराम में यही एक बुनियादी फर्क था जिसका एहसास पाकर वह अपने भीतर शर्म महसूस करने लगा था।

अमूमन वह छुट्टी के दिन जब घर पर होता है तो प्रसन्न रहता है पर उसके चेहरे पर आज थोड़ी उदासी चढ़ आई थी। 93 नम्बर की पड़ोस की महज़बीन को न जान पाने की घटना से उपजी स्मृतियों ने उसे धीरे-धीरे मनुष्य होने की ओर आज अभिमुख किया था।

पत्नी आम तौर पर उसे दुनिया दारी में नहीं ढकेलती। उससे आस-पड़ोस की घटनाओं का ज़िक्र भी नहीं करती पर न जाने उसे आज क्या सूझा कि वह उससे बोल बैठी - "आज आप उदास लग रहे हैं थोड़ा ! बाबू को बाहर घुमा लाइए तो मन अच्छा हो जाएगा। वापसी में उस्मान के बेटे के संस्कार में भी शामिल हो आइए, मेहज़बीन उसी का दावत देने आई थी। उस्मान आज ज़िंदा होता तो कितना खुश होता। रिज़वाना की फूटी किस्मत देखिए कि बेचारी ने उस्मान के जाने के बाद बेटे को जना। यह हिन्दू-मुस्लिम दंगे भी आदमी को कितने दु:ख के अँधेरों में धकेल देते हैं न राघव!"

पत्नी की बातें सुन उसे अचानक काठ मार गया।

"तो क्या उस्मान भी ?"

"हाँ उस्मान भी !"

"आपको यह सब कब पता होगा ? क्या तब, जब हमारा खुद का बेटा किसी दिन दंगों की भेंट चढ़ जाएगा?

बोलते-बोलते पत्नी का गला भर आया। कुर्सी पर सामने बैठी पाकर उसे, राघव को उस वक्त उसका चेहरा दुनिया का सबसे उदास चेहरा नज़र आया।

000

ग़ज़ल

दो ग़ज़लें

अखिल भंडारी

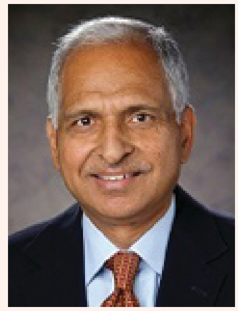

हुई मुद्दत कोई आया नहीं था
ये घर इतना कभी सूना नहीं था

वो मेरा दोस्त था लेकिन कभी वो
बुरे वक़्तों में काम आया नहीं था

वो मिलता था तो बस अच्छे दिनों में
मुझे फिर भी कोई शिकवा नहीं था

अजब यकसानियत थी ज़िन्दगी में
अगरचे शहर में क्या क्या नहीं था

उदासी इस क़दर बढ़ने लगी थी
सिवा हँसने के कुछ चारा नहीं था

न जाने क्यों मुहाजिर हो गए थे
हमारे घर में आख़िर क्या नहीं था

उसे मंज़िल नज़र आने लगी थी
मुसाफ़िर रात भर सोया नहीं था

000

उस का चेहरा बुझा बुझा सा है
चाँद भी कुछ थका थका सा है

मैं भी ख़ामोश हूँ उसे मिल कर
उस का सर भी झुका झुका सा है

इक ज़रा सी तो बात थी आख़िर
आज तक वो ख़फा ख़फा सा है

उस को हर शख़्स से शिकायत है
उस की हर बात में गिला सा है

उस के किरदार अजनबी से हैं
पर ये किस्सा सुना सुना सा है

उस के अल्फ़ाज़ सब पुराने हैं
फिर भी लहजा नया नया सा है

एक साया इधर से गुज़रा था
दिल अभी तक डरा डरा सा है

000

अखिल भंडारी
टोरांटो, कैनेडा
ईमेल-akhil.bhandari@outlook.com

कथा-कहानी

नियर अबाउट डेथ

डॉ. सन्ध्या तिवारी

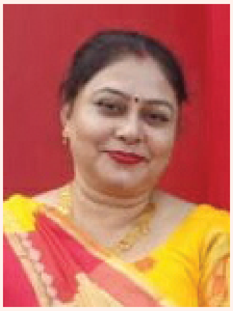

डॉ. सन्ध्या तिवारी
श्री राजेश तिवारी, चौक डाकघर, चौक पोस्ट ऑफ़िस, चौक बाज़ार, पीलीभीत, 262001, उ. प्र.
मोबाइल- 7017824491
ईमेल-sandhyat70@gmail.com

आईसीयू में ही अतीक न जाने क्या-क्या बड़बड़ाते रहते थे। उसके बाद जब रूम में शिफ्ट किया और उन्हें कुछ होश आया तो कहने लगे, बड़ा सा ब्लैक होल... जाने कैसे कैसे शैडो..., भयावने और डरावने चेहरे...।

मेरा दिल बैठा जा रहा है दी," कहते-कहते नीतू मेरा हाथ पकड़ कर सुबक उठी।"

"चुप हो जा नीतू। सब ठीक हो जाएगा। देखो, मौत से लड़कर आए हैं अतीक। तुम उसका ध्यान रखो।" मैंने उसे ढाँढ़स बंधाते हुए कहा।

"हाँ दी, आप ठीक कह रही हो। यह मौत के मुँह से ही वापस आए हैं तभी ऐसी बहकी-बहकी बातें कर रहे हैं, लेकिन ब्लैक होल, सुरंग, डरावने शैडो ये सब क्या है ?"

जैसे नीतू यह सवाल खुद से कर रही हो लेकिन जवाब बाहर ढूँढ़ रही हो।

हम दोनों अस्पताल के प्राइवेट बार्ड में अतीक के बेड के पास पड़ी बेंच पर आलथी-पालथी मारे फुसफुसाहट भरी आवाज़ में बातें कर रहे थे ताकि अतीक की नींद न टूट जाए। अतीक के बाएँ हाथ में सलाइन चल रही थी। अचानक अतीक ने करवट लेना चाहा तो ऊपर टँगी बोतल की नली झटके से हिली और उसके साथ ही हाथ में धँसी हुई सुई भी। अतीक ने कराह कर आँखें खोल दीं।

हम दोनों जैसे अपनी-अपनी तंद्रा के घेरे से जबरन बाहर खींच लिए गए थे।

"क्या चाहिए?" कहते हुए नीतू ने झट अतीक का हाथ यथावत् रख नली को सीधा किया, और इंजेक्शन के स्थान पर सहलाने लगी।

"देखो तो कौन आया है?" यह बात उसने शायद अतीक का ध्यान दर्द से भटकाने के लिए कही थी और वह इसमें सफल भी रही।

अतीक की पीली आँखें मुझ पर टिक गईं।

"अरे! नीरजा भाभी आप, आप कब आईं ?" अतीक ने कमज़ोर अस्फुट शब्दों में मुझसे पूछा।

मैंने अतीक का कमज़ोर हाथ अपने हाथ में लेते हुए कहा, "मैं कल दोपहर आई थी भइया।"

"अच्छा! मुझे यहाँ कौन लाया ?" अतीक ने नीतू की ओर देखते हुए पूछा।

"मैं लाई। नर्स और हॉस्पिटल के ड्यूटी स्टाफ के साथ।"

"अच्छा! अतीक अब बताओ नीरू दीदी को, तुमने पिछले दिनों क्या महसूस किया। बताओ न प्लीज़।" नीतू अनुभव की हथेली पर अपना गाल रगड़ते हुए बोली।

"मुझे कोई घड़ियाल पानी के नीचे खींचे लिए जा रहा था... मैं बिन पानी की मछली सा हाँफता हुआ तड़प रहा था... उस समय मुझे कोई बचाने नहीं आया.. नीतू भी नहीं...। बहुत बड़ा घड़ियाल था वह... नीरजा भाभी बहुत बड़ा... फिर ऐसा लगा जैसे मुझे ब्लैक होल... या किसी अँधेरी सुरंग... में धक्का... दे... कितनी ही प्रेत छायाएँ...मेरे आसपास... सब मुझे निगल लेना...।" टूटे- फ़ूटे शब्द में कहते-कहते अतीक एक बार फिर हाँफने लगे डर, घबराहट और कमज़ोरी के कारण उनकी आँखें बंद हुई जा रही थीं।

नीतू की आँखों में ढेरों प्रश्न और शंकाएँ उमड़ आई थीं। फिर भी उसने प्यार से अतीक का माथा सहलाते हुए पूछा, "पानी पियोगे?"

"हाँ" के संकेत में अतीक ने अपने सिर को जुम्बिश दी।

नीतू ने पानी की बूँदों भरा चम्मच अतीक के होंठों से लगा दिया।

एक घूँट पानी पीकर अतीक ने एक बार आँखें खोली, नीतू को देखा, फिर आँखें बंद कर गहन मौन में चले गए।

नीतू ने रूमाल से अतीक के होंठ पोंछे और मेरे पास आ बैठी।

कुछ देर की चुप्पी के बाद नीतू ने फिर वही बात छेड़ते हुए कहा, "देखा दी, जब से होश आया है ऐसी ही बातें किये जा रहे। मेरी समझ नहीं आ रहा कि इन्होंने ऐसा क्या देखा, क्य महसूसा,जिसे ठीक से शब्द नहीं दे पा रहे हैं।"

नीतू की बात सुन मैं कुछ कहते-कहते रुक गई लेकिन नीतू के बार-बार पूछने पर मैंने कहा, "इसे कहते हैं नियर अबाउट डेथ एक्सपीरियंस।" कहने को मैं कह चुकी थी लेकिन मेरे कहन में मुझे ही अनुगूँज जैसा कुछ सुनाई दे रहा था। कुछ असहज। कुछ असुंदर। कुछ अरूप।

नीतू मुझे अविश्वास से देख रही थी लेकिन शायद इस विषय पर और बात करना चाह रही थी।

वह बाहर निकल कर नर्स को बुला लाई। उसे अतीक के पास छोड़कर मैं और नीतू अस्पताल के कमरे से निकल कर बाहर कैंटीन में आ गए। हम दोनों आमने-सामने की कुर्सियों पर बैठ गए।

"चाय के साथ कुछ खाओगी नीतू ?"

मैंने बायाँ हाथ उसके हाथ पर रखते हुए प्यार से पूछा।

"नहीं दी, कुछ नहीं खाऊँगी केवल चाय पीकर कमरे में चलना है। अतीक को नर्स के हवाले करके आए हैं। ज़्यादा देर बाहर नहीं ठहर सकते।" जैसे उसने मेरे साथ-साथ खुद को भी यह बात याद दिलाई हो

"अच्छा ठीक है।" मैं कूपन देकर दो कप चाय ले आई।

हम दोनों चुपचाप चाय पीने लगे नीतू ने जैसे शांत पानी में कंकर उछाल दिया हो उसने पूछा, "दी यह नियर अबाउट डेथ एक्सपीरियंस सबको होता है... ?"

"नहीं रे, सबको होता तो सब बताते, न।"

मैंने कुछ सोचते हुए कहा, "दी, हो सकता है कि किसी को होता हो और वह भूल जाता हो... या किसी को होता हो और वह बताता न हो... ?"

"हाँ...ऐसा संभव है। लेकिन भूलता कोई नहीं।"

मैं मुस्कुराई तो थी लेकिन मेरी मुस्कान जल्दी ही दूर क्षितिज में खो गई। मेरा लहज़ा अचानक खुरदुरा और विषम हो गया। मेरी स्थिति नीतू से छिपी नहीं रही। उसने पूछा, "क्या हुआ दी आप कुछ परेशान हो गई?"

"नहीं, नीतू ऐसा कुछ नहीं, मैं एकदम ठीक हूँ।"

चाय का डिस्पोज़ेबल कप डस्टबिन में डालकर हम दोनों लिफ्ट की जगह सीढ़ियों की ओर मुड़ गए। जैसे- अबोले ही हम पाँच मिनट और बात करना चाह रहे हों।

"दी, एक बात बताओ ऐसे एक्सपीरियंस केवल मौत के समय ही आते हैं या फिर...।"

नीतू ने सीढ़ियाँ चढ़ते हुए पूछा।

निश्चित तो नहीं हाँ मैं ऐसा सोचती हूँ कि ऐसे एक्सपीरियंस मौत जैसी हालातों में ही आते होंगे। एक हाथ से सीढ़ियों की रेलिंग और दूसरे से साड़ी की प्लीट्स पकड़े जवाब दिया मैंने।

हम सीढ़ियाँ चढ़कर रूम के बाहर पहुँचे तो दो मिनट दम लेने के लिए रुके।

साँसों को संयत करके कमरे में पहुँचे तो अतीक नीम बेहोशी में थे। हमने नर्स को धन्यवाद कहा और हम दोनों बेंच पर बैठ गए। हम तकरीबन दस मिनट चुपचाप बैठे रहे, नीतू को पता था कि मुझे वापस जाना है लेकिन न उसने इस बारे में कुछ कहा और न मैंने।

मैंने थोड़ी देर बाद अपना सामान समेटना शुरू कर दिया। नीतू ऐसा करते हुए मुझे बेबसी से देख रही थी। लगता था वह बिना बोले ही शरीर के रोएँ-रोएँ से कह रही थी अभी मत जाओ दी...

"अच्छा नीतू ... मैं चलती हूँ।" मैंने नीतू की हथेली अपने दोनों हाथों के बीच लेकर कहा।

"कल चली जाना, दी।" नीतू ने मायूसी से कहा।

"मैं रुक जाती नीतू, लेकिन तुझे तो मेरे घर के हालात पता हैं। सास को साफ-सफाई में बहुत दिक्कत आती है। उनको लकवे के कारण किसी एक के वश की बात नहीं। ससुर जी बूढ़े हो चले हैं तेरे जीजा जी ने एक दिन किस तरह अकेले सब मैनेज किया होगा मैं ही जान सकती हूँ। मेरा जाना ज़रूरी न होता तो मैं अभी नहीं जाती।"

मेरी आँखें बेबसी से छलक आई थीं...और कुछ कहना सुनना बहुत भारी सा लगने लगा। लगा कि इस दु:ख और विदा की बेला का भार शब्द न वहन कर सकेंगे। सो हम चुपचाप आटो में बैठकर बस स्टैंड आ गए।

बस की खिड़की के साथ सिर टिकाए मन नियर डेथ एक्सपीरियंस को छोड़ मन कही जाना ही नहीं चाहता था। मन यादों के गलियारे पार करता हुआ ऐसी जगह जा अटका जहाँ मैं

जीते जी कभी नहीं जाना चाहती थी... लेकिन यादों के प्रेत अपनी दुनिया में गाहे-बगाहे घसीट ही ले जाते हैं...

वह मेरे पड़ोस में रहता था। अगली गली के नुक्कड़ वाला मकान था उसका। बुलावा-हकारी में आती जाती थी एक दूसरे के घर हमारी मम्मियाँ। रास्ते में आते-जाते दुआ सलाम हो जाती थी हमारे पिताओं की।

मैं उससे एक दर्जा पीछे की क्लास में थी। उसकी अगली कक्षा में प्रोन्नति होने पर उसकी पुरानी किताबों से मैंने छठी कक्षा से दसवीं कक्षा तक की पढ़ाई की थीं। तब किफ़ायतों और हुनरों से भरा समय हुआ करता था। कुछ रचा पगा हुआ। आज जैसा सूखा- सहमा नहीं।

किताबों के पैसे बचते थे और समय भी। उसकी किताबों में किए गए रिमार्क और अन्डरलाइन मेरे बहुत काम आते थे। किताब में की गई अंडर लाइन से लगता था यह बहुत ज़रूरी चीज़ है इसे तो याद करना ही करना है,और होता भी था कि एग्ज़ाम में उस इम्पोर्टेंट में से कुछ न कुछ फँसता ही था। कभी वह मुझे मैथ भी पढ़ाता था। कई बार लूडो खेलते हुए उसने मेरी गोटी नहीं पीटी। कैरम में उसने मुझे कभी हारने नहीं दिया। मुझे उसका साथ भला लगता था। बस इतना ही। मैंने बी ए में दाखिला लिया था। और वह सीपीएमटी क्वालीफाई करके काउंसिलिंग के इंतज़ार में था। न मैंने कभी कुछ कहा और न उसने।

उसे कॉलेज मिल चुका था। वह कॉलेज जाने से पहले आख़िरी बार हमारे परिवार से मिलने आया था। श्रावणी मौसम पूरे शबाब पर था। वह आया तो माँ ने उसे अन्दर कमरे में ही बुला लिया। जहाँ बैठी माँ गोंद के लड्डू बाँधने की तैयारी कर रही थी। माँ का हाथ बँटाने को मैं इमामदस्ते में गोंद को करीने से बारीक कर रही थी।

'नमस्ते आंटी' कहकर वह वहीं पड़े पलंग पर बैठ गया।

भुनते हुए मेवों की महक पूरे कमरे को घेरे थी लेकिन उसके लगाए परफ्यूम की महक हवा में बनी एक लकीर सी मुझ तक आ रही

थी। उसका लिबास उसे बहुत आकर्षक बना रहा था उसकी उठी हुई नाक यूनानी नाक का आभास दे रही थी।

इमामदस्ता हाथ में पकड़े आँखों पर पलकों की झाँप डाले न जाने मैं क्यों भित्तिचित्र सी हुई जा रही थी। बाहर रिमझिम फुहारों ने कब मूसलाधार का चोला ओढ़ लिया बातों में पता ही न चला।

"मुझे देर हो रही।" उसका यह वाक्य सुन होश आया, तो बादलों की झड़ी देख मन मयूर नाच उठा।

"बरखा रानी ज़रा जम के बरसो" की पंक्ति मन ही मन दोहरा कर मुस्कुरा दी।

माँ से बातें करते-करते वह कनखियों से मेरी ओर देख शहद सनी मुस्कान ठेल देता।

उसका मुस्कुराना बड़ा भला सा लगता। सवा एक घंटे बाद बारिश रुक गई। उसकी विदा बारिश पर टिकी थी।

मेरे लाख चाहने पर फिर बारिश नहीं हुई और वह जाने के लिए उठ खड़ा हुआ।

विदा का वक्त बहुत नाज़ुक था, लेकिन क्यों?

हममें तो कोई ऐसा क़रार न था। तो फिर? जो दिख रहा उसके पीछे क्या कुछ चल रहा है कोई अंतर्पाठ कोई अंतर्भावना या फिर ऐसा ही कुछ कोमल सा जैसे सद्य प्रस्फुटित अंखुआ।

वह दरवाज़े पर मुड़ कर खड़ा हुआ और मेरे माथे की लट को छूकर मुस्कुराया पैंट की जेब से एक सुंदर गुलाबी लिफ़ाफ़ा मुझे ऐसे पकड़ाया जैसे अपना सबसे कीमती सामान मेरे हवाले कर रहा हो।

जाते-जाते गली के मोड़ पर एक बार फिर पलट कर मुस्कुराया और चला गया।

मैं मुट्ठी में लिफ़ाफा भींचे दरवाज़े पर जड़ हो गई। लगा जैसे किसी ने मंत्रबल से कील दिया हो। लेकिन पसलियों के पिंजर में दिल ऐसे धाड़ धाड़ बज रहा था कि कोई चाबी भरा खिलौना हो। कि चाबी खत्म और सब कुछ शांत।

हलक़ सूख गया था। साँसों की गति को काबू करने के लिए हल्के-हल्के ठोंसे आने लगे।

"क्या हुआ? पानी पी लो।" माँ ने कमरे से ही पुकारकर कहा था।

बिना उनकी बात का उत्तर दिये मैंने फ्रिज से बोतल निकाल कर दो घूँट पानी पीकर गला तर किया।

मुट्ठी में दबा लिफ़ाफा जान लिए ले रहा था।

"माँ सिर दर्द है, थोड़ी देर लेटूँगी।"

कहकर अपने कमरे का दरवाज़ा बंद कर अपनी पढ़ने वाली मेज़ पर आकर बैठ गई।

गुलाबी लिफ़ाफे में वही सुगंध थी जो उसके पास से आ रही थी भीनी-भीनी। मैंने बहुत कोमलता से उसे खोला तो कुछ ताज़े गुलाब की पंखुरियाँ मेज़ पर झर गई।

पंखुरियों को आहिस्ते से उठाकर किताब के पन्नो के बीच दबा कर चुपके से कहा, यहीं रहना। कभी ये राज़ मत खोलना।

फिर क़ागज पर लिखी इबारत पढ़ने लगी। लिखा था-

प्यारी नीरू,

मैं नहीं कह सकता कि मेरा सोचना सही है, लेकिन आज तक जैसा मुझे लगा मैं वह तुम्हें बताना चाहता हूँ। आगे फैसला तुम पर है। जब तुम खूब घेर वाली फ्रॉक पहन कर दो झूले वाली चोटी बना कर मेरे घर आती थीं तब से तुम मुझे अच्छी लगती थीं।

अब जब तुम सफेद सूट पहन बालों को निर्बंध छोड़ती हो और कानों में छोटे-छोटे सितारे माथे पर छोटी सी बिंदी सजाती हो तो और अच्छी नहीं, बहुत अच्छी लगती हो।

तुम्हें किताबें देना, तुम्हारे साथ लूडो

खेलना, कैरम खेलना मेरे जीवन के सबसे खूबसूरत पलों में से थे। मैं तुम्हें कभी खोना नहीं चाहता। जैसा मैं तुम्हारे बारे में महसूस कर रहा हूँ, अगर वैसा ही तुम समझती हो तो मेरे कॉलेज जाने से पहले मुझे बताना। मैं इंतज़ार करूँगा।

तुम्हारा

रजत

पत्र छोटा सा था लेकिन मैंने उसे कई बार पढ़ा। जैसे उन शब्दों के पीछे का अन्तरपाठ समझ में न आ रहा हो। या एक एक शब्द जाने कितनी अर्थछटा से आच्छादित हो। जिसे कि मैं भेद नहीं पा रही।

आज पहली बार पेन हाथ में थरथरा रहा था। उत्तर समझ में आ रहा, लेकिन लोक लज्जा पेन की नोक पर सवार थी।

फिर भी मैंने लिखा-

मेरे रजत,

मुझे नहीं पता 'मेरा' लिखना ठीक है या नहीं...लेकिन तुम्हारे पत्र ने इतना अधिकार तो दे ही दिया है। मैं क्या बोलूँ सिवा इसके कि तुम्हारा साथ सम्मोहन रचता है। तुम्हारा साथ किसी को भी अच्छा लगेगा, लेकिन क्या हम जैसा सोच रहे वैसा हो सकेगा?

क्या हमारे माँ- बाप राज़ी होंगे? लेकिन तुम नहीं मिले तो ऐसा लगेगा जैसे तूफ़ानी रात में भटका मुसाफिर।

"जान चली जाए
जिया नहिं जाए
जिया जाए तो फिर
जिया नहिं जाए"

और क्या लिखूँ कुछ समझ नहीं आ रहा। जो नहीं लिखा वह तुम समझ लेना।

तुम्हारी

नीरू

वह दूसरे शहर के कॉलेज में जा चुका था। इस बार होली पर आया तो खूब खुशबू वाला रंग डालकर चुपके से कान में कहा था... बस तीन साल इंतज़ार करना।

मैंने बिना धोया होली के रंग का दुपट्टा पॉलीथिन में सहेज कर अलमारी में ताला जड़ दिया।

तालों में हम सब कुछ बंद कर सकते हैं, घर- मकान, तिजोरी- अलमारी... लेकिन अपनी स्मृति में हम कभी ताले नहीं जड़ पाते। काश! ऐसा हो पाता।

इस बीच उसके घरवालों ने शहर के दूसरे छोर पर मकान ले लिया। होली, दिवाली, तीज, त्यौहार उसका दिखना दिखाना भी बंद हो गया। प्रेम की थाती में कुछ चिट्ठियाँ, एक दुपट्टा और रजत का इंतज़ार मेरी अमानत था।

मैं तीन साल से उसकी राह तक रही थी। मेरा ग्रेजुएशन पूरा हुए साल भर बीत गया था। शादी के लिए हमेशा मेरी अनिच्छा देख घरवालों ने तीन सालों में कभी ज़ोर नहीं दिया। बेवजह युवा बेटी को और कितना घर में बिठाया जा सकता है और फिर शादी की भी एक उम्र होती है यही सोचकर घरवाले शादी की ठान चुके थे।

ज़िंदगी घटनाओं के संबल से आगे बढ़ती है केवल विचार मात्र से नहीं। मैं उसके ख़यालों में खोयी जीवन की सीढ़ियाँ चढ़ रही थी और घरवाले यथार्थ की।

उन्होंने मेरी शादी तय कर दी। इंतज़ार करते-करते केवल पन्द्रह दिन बचे थे मेरी शादी को। आग के दरिया में डूब-डूब जाने के दिन थे। किसी तरह एक नज़र देखने को मिल जाए मैं अपने मन का सारा हाल कह डालूँ। एक पात्र रीत जाए, एक पात्र भर जाए। फिर जो हो सो हो।

मैंने उससे कितना कुछ पूछना था कितना कुछ जानना। उसने ऐसा क्यों किया, वैसा क्यों नहीं किया।

क्योंकर वह नहीं लौटा, क्योंकर उसने इतने सपने दिखाए, मुझसे क्या ख़ता हुई, वह क्योंकर मजबूर हो गया ? दिन रात मरूस्थल की जलती रेत पर लोट लगाने से थे वे दिन...पूरी काया छलनी हो गई थी और आँखें धुँधली...। उसके आने की एक आहट मेरी ज़िंदगी भर की थिरकन बन सकता था लेकिन किस्मत के आगे किसका ज़ोर था।

"शादी के नाम से रंगत निखर आती है लड़कियों की। तुम्हारे होठों पर तो पपड़ियाँ तैर रही हैं। ऐसा लगता है तेरी फांसी का दिन नज़दीक आ रहा हो।" हम-उम्र फुफेरे भाई ने सबके बीच मज़ाकिया लहज़े में जब कहा तो पूरा घर खिलखिला कर हँसने लगा और मैं कमरे में जाकर सिसकने लगी थी।

"लो अब इसमें रोने की क्या बात है।" माँ ने बरामदे में बैठे-बैठे ही कहा।

"लड़की को अपना घर छोड़ते दु:ख तो होता ही है।" पापा ने कहा।

भाई पीछे-पीछे कमरे में चला आया, "क्या बात है नीरू, तू क्यों परेशान है, क्या शादी पसंद की नहीं, या कोई और बात? मामा-मामी ने तुमसे पूछकर रिश्ता तय किया। फिर क्या खटक रहा तुम्हारे दिल में? क्यों बार-बार आँखों का बाँध ढहा जा रहा ?"

कहते हुए फुफेरे भाई अक्षय ने मेरे कंधे पर हाथ रख दिया था। डूबते को जैसे तिनके का सहारा मिल गया हो। मैं बहुत देर उसके कंधे से लगी रोती रही। आँखों ने जब बरसना बंद किया तो सूरज पश्चिम के व्योम में उतर आया था।

"मामी, नीरू को मैं चाट खिला कर लाता हूँ, यह कुछ फ्रेश फील करेगी। इतना रोती-धोती है शादी तक अधिया जाएगी।" भाई अक्षत ने माँ से मुस्कुराते हुए कहा।

रास्ते में हम उम्र भाई कम दोस्त ने मेरा मन पूरी तरह कोर लिया। मैंने बताया, वह मुझसे तीन साल इंतज़ार करने के लिए कहकर गया अभी नहीं लौटा। मैं उसका इंतज़ार तीन साल से कर रही हूँ। मुझे पता लगा वह शहर में आ गया है, लेकिन शायद घर वालों के कारण वह मुझसे मिलने नहीं आ रहा। न ही कोई ऐसा माध्यम है कि मैं उसके मन का हाल जान पाऊँ। या उसे अपना हाल सुना पाऊँ। कहीं वह यह तो नहीं समझ बैठा, मैं उसे धोखा दे रही हूँ। केवल एक बार बस एक बार मिलना है। राह चलते चलते एक बार फिर मेरी आँखें गीली हो उठीं थी।

शायद मैंने प्यार की पहली चिट्ठी पर ही ग़लत नाम पता लिख दिया था, तो उसे लौट कर मेरे पास ही आना था। ख़ैर...फिर भी आख़िरी कोशिश में मैंने भाई के हाथ उसे बुला भेजा।

रविवार तय हुआ था मिलने के लिए। ऐसा लगा जीवन बस इसी रविवार के कारण चल

रहा था। बाकी के सारे दिन एक झटके में बेमानी हो गए।

रविवार आते-आते मेरा दिल न जाने कितनी बार डूबा और न जाने कितनी बार उबरा।

उस दिन अन्न का एक दाना मुँह में डालने का मन नहीं किया। सुबह सवेरे से ही एक-एक पाँव एक-एक मन का हुआ जाता था। गोरा चेहरा ललाई की जगह पीलख छोड़ रहा था। मैं सोच रही थी, रविवार को घर में सबके सामने कैसे मिलूँगी। वह कैसे आएगा! कैसे बैठेगा! क्या बोलेगा! उससे कितनी तो बातें मुझे कहनी थीं सुननी थीं। ...और बातें किसी फॉर्मल मैसेज की तरह तो नहीं हो सकतीं कि जब चाहे फॉरवर्ड कर दिया। उससे बात कहने के लिए एकांत चाहिए। एक जगह चाहिए। एक भूमिका चाहिए। कैलेंडर की तारीखों से रविवार और घर के सदस्यों में से हम दोनों को जादू की छड़ी से ग़ायब कर देने का मंत्र चाहिए। कहाँ पाऊँ ऐसी जादू की छड़ी जो मेरी इच्छा पूरी कर दे। मन करता चीख-चीखकर कहूँ बस एक घंटे के लिए अकेला छोड़ दो मुझे। ताकि जी भर रो सकूँ...। उससे अपनी बात कह सकूँ...। कितने शिकवे कितनी शिकायतें करने हैं मुझे और उसके भी सुनना हैं। पकते-पकते दु:ख का झोल गाढ़ा होकर जीवन के पतीले की तली से चिपक गया है लेकिन जीवन का चुरना नहीं रुक रहा।

कहते हैं हारे को हरिनाम। हाथ प्रार्थना में खुद व खुद जुड़ने लगे... सिर अपने आप सज़दे में झुकने लगा... कहीं तो मेरी अरदास कुबूल होगी...। ...और शायद कुबूल हो भी गई।

भाई ने कुछ सोचा, समझा और कहा, "रविवार को मैं मामा-मामी को तीन से छह वाला पिक्चर का शो दिखाने ले जा रहा हूँ। तू चलेगी क्या...?"

माँ के सामने जानबूझकर उसने बात अधूरी छोड़ी थी।

मैंने शीशे में खुद की आँखों के नीचे उभर आए काले घेरों को छूते हुए कहा, "नहीं, आप लोग जाओ। मेरी सहेली आने वाली है। हो सकता है मैं उसके साथ पार्लर जाऊँ।"

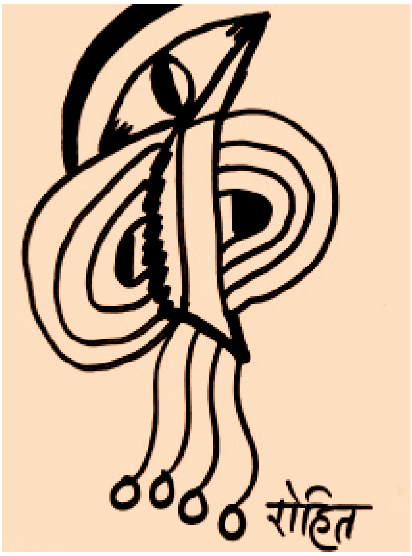

"कौन सी सहेली आ रही है।" माँ ने अपनी आँखें नई साड़ी की फाल में गढ़ाये हुए पूछा।

"अनीता, अनीता गुप्ता आ रही है। उसी के साथ पार्लर जाकर फेशियल कराऊँगी।"

"अरे वाह! अनीता आ रही उसे रोककर रखना, बहुत दिनों से उसे देखा नहीं।" मेरे उत्तर की बिना प्रतीक्षा किए माँ ने वारी जाऊँ वाली नज़रों से मुझे देखा और फाल टाँकने में व्यस्त हो गईं। इसके बाद मैंने और भाई ने एक-दूसरे को देखा, लेकिन न मैं कुछ बोली और न वह। मेरा मन उसे कई-कई जन्मों के लिए अशीष रहा था।

रविवार शाम चार बजे का वक्त तय था। उस दिन फर्श को खूब रगड़ कर चमकाया। बरामदे में पड़े दीवान पर कोरी नई चादर बिछाई। धुले साफ कुशन बदल कर सोफा सुसज्जित किया। बरामदे के एक छोटे स्टूल पर महीनों से बासी पड़ा गुलदान फूल फेंक कर धोया फिर नमक मिला पानी भरकर उसमें सुंदर फूलों वाला इकेबाना सजाया।

किचन में जाकर सबसे महँगे और सुंदर कप प्लेट निकाल कर ट्रे में सजा दिए। अदरक, लौंग, इलायची सब खरल में कूटकर रख लिए कि कहीं उसने कुछ कहा और कूटने की आवाज़ में मैं सुन न पाई तो... हाय दिल खुद ही धक्क से रह गया।

नाश्ते के पैकेट निकाल कर बाहर रख लिये कि कहीं रसोई में ही सारा समय न चला जाय।

एक नज़र सारी व्यवस्था पर डाल मैं शॉवर लेने बाथरूम में घुस गई। अपने बालों को हल्की भीनी खुशबू वाले शैम्पू से धुला। प्रेस किया हुआ सफेद सूट पहना। सितारों टकी लाल चुनरी सेफ से निकाल तकिया के नीचे दबाकर रख दी कि कहीं उसकी तह न ख़राब हो जाये। सीधे हाथ में एक कंगन और बायें हाथ में एक घड़ी डाली। कान में एडी जड़े टाप्स पहने। सूने माथे पर एक छोटी बिंदिया सजाई। पैरों में तीन घुँघरू वाली पतली सी पायल भी पहन ली कि जब चलूँ तो एक रुनझुन मन की अव्यवस्थित लय को रिदम में पिरो दे। दोनों कानों के पास से एक-एक लट उठा कर पीछे छोटे से क्लैचर के साथ टाँक दीं और धुले बालों को पीठ पर निर्बंध छोड़ दिया।

ढाई बजे माँ पापा भाई मूवी के लिए जा रहे थे। माँ को साड़ी ब्लाउज के साथ मैंचिग रूमाल पकड़ा कर उनका जूड़ा सेट किया। पर्स निकाल कर दिया। पानी की बॉटल पकड़ाते हुए पूछा, "कुछ और चाहिए?"

"नहीं।" उन्होंने चप्पल में पाँव घुसाते हुए मेरी ओर देख कर कहा, "पैसे अलमारी में दाईं तरफ़ वाले लॉकर में रखे हैं, जितने चाहिए उतने निकाल कर ठीक से लॉक लगा देना और हाँ पार्लर जाना तो मेन गेट की चाबी पड़ोस वाली आंटी को दे जाना। अगर हम लोग पहले आ गए तो कम से कम घर तो खुल जाएगा।"

ढाई से तीन बजना चाह रहे थे। हलक़ बार-बार सूख जाता था। दिल बार-बार बैठा जा रहा था। हल्की सी आहट पर लगता दिल पसलियाँ तोड़ कर बाहर आ जाएगा। कभी बालों में कंघा करती, कभी कोई सामान जो दरवाज़े या पलंग की ओट से झाँक रहा होता उसे छुपा आती।

सितारों टकी चुनरी कभी दाएँ कंधे पर फैलाती कभी बाएँ पर। चार बजने को आए, दिल की धड़कनें इतनी बेतरतीब थीं कि लगता धमनियाँ या तो पूरी देह का खून उगल देंगी या फिर अपना काम छोड़कर सुस्त मुस्त पड़ी रहेंगी।

धक्-धक्, धक्-धक् की आवाज़ अपने ही कानों को बहरा किये दे रही थी। मेन गेट से

कई बार बाहर झाँककर निराश होकर कुर्सी पर बैठ जाती। फिर दो मिनट बाद दरवाज़े से मुंडी निकाल कर सड़क पर झाँक आती। चार बजकर बीस मिनट होने को आए, रह-रहकर मेरी आँखों में बेबसी के आँसू छलक आते।

चार बजकर पच्चीस मिनट पर दरवाज़े पर दस्तक हुई और मेरा दिल पूरे वेग से धड़धड़ाने लगा। चुन्नी को वक्ष पर ठीक से फैला कर निर्बंध बालों को दाहिने कंधे पर आगे की ओर समेट कर मैंने भरपूर सहज होने का अभिनय करते हुए दरवाज़ा खोला।

दरवाज़ा खोलने के एक मिनट के अंतराल में मन, मन ही मन आने वाले से न जाने कितने गिले शिकवे कर चुका था। लेकिन दरवाज़ा खोलने पर जिससे आँखें चार हुईं वह कल्पना में कहीं नहीं था या यूँ कहूँ कि ऐसा गुमान न था। लगा किसी ने मुझे अनजाने में ही कई मंज़िला इमारत से नीचे फेंक दिया।

रजत की जगह उसके पापा खड़े थे। रजत के पापा को देख एकबारगी मुझे लकवा मार गया। फिर भी खुद को सहज करते हुए मैंने उनके सामने हाथ जोड़ दिए और कहा-

"अंकल जी नमस्ते।"

"नमस्ते।" उन्होंने अभिवादन का उत्तर दिया। मन मानने को तैयार न था कि रजत बुलाने पर भी न आया। एक पल को सोचा रजत अपने डैडी के पीछे होगा इसलिए मुझे दिखाई नहीं दे रहा लेकिन वहाँ कोई नहीं था केवल ख़ाक उड़ रही थी। क्या मैंने कोई भूल की थी? या यह सब मेरी कोरी कल्पना थी? क्या तीन साल का इंतज़ार इतना बेमानी था कि एक बार मिला न जा सके? क्या मैंने नमक के गुड्डे से प्यार किया था जो प्यार के सागर में उतरना दूर किसी छिछले डबरे में भी उतरने से डरे।

"भाईसाहब हैं क्या?" रजत के पापा ने पूछा

"न, नहीं है।" मैंने बताया

"और भाभी जी ?"

"नहीं, वह भी नहीं हैं।" मैंने कहा

अब तक मेरे क्षोभ और दु:ख ने गहरे विडम्बना बोध का स्थान ले लिया था।

"मैं अन्दर आ जाऊँ क्या?" रजत के पापा की आवाज़ सुन मुझे भान हुआ कि अब तक हम दरवाज़े पर ही थे।

"जी", कहकर मैं दरवाज़े से एक ओर हट गई।

दीवान पर बैठते हुए उन्होंने पूछा, "कहाँ गए आपके मम्मी पापा?"

"पिक्चर देखने" मैंने कहा। मेरा पूरा चेहरा गर्म होकर लाल हो चुका था। कानों में से आग निकल रही थी। ऐसा लग रहा, किसी ने पानी के नीचे मेरा सिर दबा रखा हो... और मैं साँस लेने के लिए छटपटा रही हूँ ... और साँस नहीं ले पा रही... लेकिन रजत के पापा के सामने खुद को नर्वस भी नहीं दिखाना चाहती थी...।

इसलिए पूछा, "अंकल पानी लाऊँ?"

"नहीं, एक मिनट यहाँ बैठो मैं तुमसे कुछ पूछने आया हूँ।"

"क्या तुमने रजत को बुलाया?

'....'

"क्या यह बात तुम्हारे मम्मी पापा को मालूम है?"

".... "

"घर से भाग जाना क्या ठीक है? क्या मैं और तुम्हारे घरवाले यह सदमा सह लेंगे ? हमारी कास्ट एक नहीं फिर क्यों रजत के पीछे पड़ी हो? तुम्हारी शादी है, माँ- बाप जहाँ कहें वहाँ शादी क्यों नहीं करतीं ?"

"क्या... क्या... क्या...और क्या...?"

"मैं अवाक्... चट चट की आवाज़ करती लपटें जैसे अन्दर का सब कुछ लीले जा रहीं हों या कि जैसे कंक्रीट भरे ट्रक का डाला अचानक खुल गया हो और अरअराती हुआ बजरी झर्र से ज़मीन पर गिरी जा रही हो। उनकी नज़रों में मैं कितनी हल्की और बेतुकी हो चुकी थी। यकायक चीज़ों के मायने बदल गए।

प्यार, इंतज़ार, शिकायत शब्द बेतुका होकर झर गया था। जिसने खुद न आकर अपनी जगह अपने बाप को भेजकर हमारी और हमारे प्यार की खिल्ली उड़ाई हो, उससे कैसी शिकायत, कैसा प्यार...और फिर किस हक़ से उससे कुछ कहा जाए। जिसके लिए प्यार, अहसास, इंतज़ार के कोई मायने ही नहीं। जिसे प्यार से ज़्यादा अपने घर की इज़्ज़त और परंपरा प्यारी है उससे किस हक़ से रूठा जाए।

आँसू सूख चुके थे। मन निर्वात हो गया था। देह की सारी इंद्रियाँ देह को छोड़ जाने के स्तर तक शिथिल हो चुकी थीं। अचेत हो जाने के डर से कुर्सी की बैक दोनों हाथों से थाम रखी थी। ठंडे शीत पैरों को घड़ियाल पानी के नीचे खींच रहा था, बेहिसाब। मौत की गुलाटी जारी थी। जीवन के वेंटीलेटर पर मैं बिन पानी की मछली सी एक-एक साँस के लिए संघर्ष कर रही थी, ब्लैक होल..., सुरंग...,भयावह साये...।

प्राण का पंछी सुदूर गगन में उड़ान भरने को व्याकुल पर तौल रहा था, लेकिन न जाने कौन नियति नटी जीवन का धागा अपने पैरों में बांधे अभी और नचाना चाह रही थी।

एयर टाइट कार्क लगे प्राण देह की बोतल में क़ैद थे। मृत्यु का क्षण धरती पर उगा घास का फूल होकर भी आकाश कुसुम हो गया था।

स्मृति लोप होते-होते भी अमृता याद आ गईं थी-

"दुखांत यह नहीं होता कि- ज़िंदगी की लंबी डगर पर समाज के बंधन आपके लिए कांटे बिखेरते रहे हों और आपके पैरों से सारी उम्र लहू बहता रहे। दुखांत यह होता है कि- आप लहू-लुहान पैरों से एक उस जगह पर खड़े हो जाएँ, जिसके आगे कोई रास्ता आपको बुलावा न दे।"

000

कथा-कहानी

टी-सैट

उषाकिरण

उषा किरण
399/1 लेन नं० 11, प्रभात नगर, मेरठ
पिन- 255002 उ.प्र.
मोबाइल- 9412702551
ईमेल- usha791957@gmail.com

जल्दी- जल्दी चाय बना कर जैसे ही छलनी लेने के लिए हाथ बढ़ाया तो अचानक से अनन्या का हाथ लगने से गोल-गोल घूम कर चाय का मग लुढ़कता हुआ नीचे फ़र्श पर छन्न से गिर कर टुकड़े -टुकड़े हो गया।

"क्या तोड़ा ...फ्री का माल है न खूब तोड़ो...साला उल्लू का पट्ठा तो है न कमाने को, सुबह से शाम तक पिद कर।" भाई साहब ज़ोर से चिल्लाए बरामदे से। अवाक् अनन्या दोनों हाथों में मुँह छिपा किचिन के फ़र्श पर बैठ कर सिसकने लगी।

"अरे तो चिल्ला क्यों रहे हो अनन्या से टूट गया होगा"! भाभी बाथरूम से बोलीं, सब समझ रही थी अनन्या कि मक़सद तो उनका यही बताना था कि क़सूरवार अनन्या है। भाई साहब ने उसको किचिन में जाते देखा था तो उनको पहले ही पता था कि किचिन में वह ही है, तो ज़ाहिर है इसीलिए यह ताना मारा गया था।

टायफायड होने के कारण तीन महिने पहले ही सौरभ जॉब से रिज़ाइन करके आगरा से नौएडा आ गए थे। आगरे में खाने- पीने का परहेज़ और देखभाल भी ठीक से नहीं हो पा रही थी। सौरभ को बाहर ही खाना, खाना पड़ रहा था अभी तक। मार्केटिंग की जॉब होने के कारण टूर भी करना पड़ता था। अनन्या को अभी साथ नहीं भेजा गया था यह कह कर कि अभी इसके बस का नहीं है गृहस्थी सँभालना, पहले एक दो साल सीख तो जाए। ऑफिस से छुट्टियाँ भी नहीं मिल पा रही थीं तो रिजाइन करना पड़ा। अब सौरभ घर पर ही आराम के साथ-साथ जॉब के लिए एप्लाई भी कर रहे थे। उसी को लेकर यह ताना सुनाया जा रहा था, यह वह न समझती ऐसी भी नादान नहीं थी।

घबड़ाहट और शर्म के कारण उसने खाना नहीं खाया। जब भी कोई कड़वा बोलता या डाँट देता उसका मन कुम्हला जाता और उसकी भूख और नींद पहले गायब हो जाती। चुपचाप बहुत रात तक मुँह छिपा आँसुओं से तकिया भिगोती रही। अपने घर में कभी किसी ने इस तरह से बात नहीं की थी उससे। दोनों भाइयों की इकलौती स्वाभिमानी लाड़ली बहन थी वो। ऊपर से कमाई

का ताना ...शर्मिन्दगी और बेबसी में उसे रोना ही आता था ऐसे समय में।

"अरे ऐसा भी क्या कह दिया जो इतना रो रही हो ...सो जाओ"! सौरभ झुँझला कर करवट लेकर सो गए लेकिन अनन्या की आँखों से नींद कोसों दूर थी।

ऐसी परिस्थितियों में सौरभ भी कभी उसके पक्ष में कुछ नहीं कहते थे। बड़ों का सामना करना ये उनके संस्कारों में नहीं था। सौरभ बहुत छोटे थे तभी उनके पापा की डैथ हो गई थी अम्माँ ने ही उनको व भैया को बहुत मुश्किलों से पाला था। उन दिनों को याद कर अम्माँ व भैया को लेकर वे बहुत भावुक हो जाते थे। वह भी समझती थी कि बिना पति के मायके और ससुराल में रह कर औरों के आश्रित होकर बच्चों को पालने और जीवन निर्वाह करने में अम्माँ को कितनी ही बातें सुननी पड़ी होंगी। जाने कितनी घरेलू राजनीति और अभावों को झेला होगा जिससे व्यक्तित्व में ढेरों उलझने पड़ गई हैं। वह अपनी सेवा और प्रेम से बहुत कोशिश करती कि उनका दिल जीत ले पर भाभी का बनाया विषैला घेरा उनके हृदय तक अनन्या को पहुँचने ही नहीं देता था।

गल्ती उसकी हो या न हो कलह होते ही सौरभ चुपचाप निकल लेते थे। कभी सब्ज़ी में तेल या नमक ज्यादा हो जाता या कोई चीज बनानी नहीं आती, कोई ग़लती हो जाती तो हमेशा सासु माँ या भाई साहब छोटे घर से आई है या छोटे शहर की है का ताना देने से बाज़ नहीं आते थे।

अनन्या की ममेरी बहन आस्था की शादी में बराती बन कर आए सौरभ ने सहेलियों के साथ जूते चुराती, चुहल करती अनन्या को देख कर पसन्द किया था और दोस्त से रिश्ते की बात चलाने के लिए कहा था। सौरभ के घर में किसी को भी ये रिश्ता मंज़ूर नहीं था। भाभी अपनी चचेरी बहन से सौरभ की शादी कराने की साध बरसों से मन में सँजोए बैठी थीं। सासु माँ से और भाई साहब से अच्छा दहेज मिलने के सपने दिखा कर सहमति भी प्राप्त कर ली थी।

घर में फ्रिज लेने की बात भाभी ने बड़े पुलक से यह कह कर ख़ारिज कर दी थी कि " अरे क्या ज़रूरत है चाचा-चाची शादी में देंगे न गाड़ी, फ्रिज, बड़ा वाला एल. सी. डी. टी. वी. और बीस -तीस तोले सोना तो देंगे ही और कैश भी अच्छा- ख़ासा देंगे...अकेली बेटी है ! अम्मा जी क्या बताएँ आपको हमारी नीती कितनी गुनी है। सर्वगुण सम्पन्न है बस ज़रा सी हाइट ही कम रह गई लेकिन जँचती बहुत है !"

सबने मन बना लिया था कि नीती ही घर की छोटी बहू बनेगी। लेकिन सौरभ अड़ गए थे, वो किसी भी हाल में नीती से शादी को तैयार नहीं हुए तो हार कर सबको मानना ही पड़ा। बुझे मन से ही शादी सम्पन्न हुई थी। मुँह - दिखाई पर ही सासु माँ लम्बी साँस लेकर हाथ में पाँच सौ का नोट थमा चुपचाप चली गई थीं।

"हुँह ... इतनी भी कोई हूर की परी न हैं जिनके पीछे दुनिया पगलाई पड़ी थी !" बरामदे से उसको सुना कर ही ज़ोर से कहा गया वाक्य सुन कर घूँघट में अनन्या की आँखें छलछला आईं। दूध सा उजला रंग, तीखे नैन-नक़्श और पतली, लम्बी, छरहरी काया के चलते जो उसे देखता मुग्ध हो जाता। उसकी सुन्दरता के कारण घर वालों को कितनी मुसीबतें उठानी पड़ती थीं। गली में चक्कर लगाते,गाने गाते जाने कितने शोहदों की दोनों भैया ठुकाई कर चुके थे। ससुराल में उसका पहला स्वागत इतनी ठंडी तरह से हुआ कि वह सहम कर रह गई। उसे समझ नहीं आ रहा था कि उसकी ग़लती क्या थी ?

अपनी हैसियत और विदिशा शहर के हिसाब से जितना हो सकता था पापा व भैया ने बहुत अच्छी व्यवस्था की थी। पापा ने अपनी हैसियत से बढ़ कर दहेज दिया था जो इन लोगों की महत्त्वाकांक्षाओं के ऊँट के मुँह में मात्र ज़ीरा ही साबित हुई थी। शादी में भी भाई-साहब ने कोई कसर नहीं छोड़ी थी पापा को नीचा दिखाने में। खाने-पीने की व रहने की व्यवस्था को लेकर भैया और पापा को खूब खरी -खोटी सुनाई गईं।

अपनी फ्रैंड्स से सारी बातें सुन कर अनन्या को बहुत ग़ुस्सा आ रहा था। मम्मी से उसने कहा कि वह यह शादी नहीं करना चाहती है पापा को बोलो मना कर दें उन लोगों को ! पर मम्मी ने उल्टे उसे ही डाँट दिया था।

"काय बिन्नू, जौ कैसो बतकाओ कर रईं तुम? द्वारे ठाँड़ी बरात लौटाहौ तौ बिरादरी में नाक न कट जैहै? अरे जे लड़का वाले तौ ऐसी नखरपट्टी करतई हैं, ई में कौनऊ नई बात आय का? औ तुम काय ई खुचड़ में पड़ रईं? बे तुमाय भैया औ पापा हैं न, उनै देखन दो, उनयी को सिरदर्द है जौ।"

"पर वह लोग पापा और भैया की इतनी बेइज़्ज़ती कर रहे हैं हमसे नहीं सहन होता...!" वह रोने लगी। पापा ने बरामदे से सारी बातचीत सुन ली थी। अन्दर आकर अनन्या के सिर पर हाथ रख मुस्कुरा कर बोले "अरे बेटा ठीक है, करते ही हैं लड़के वाले। लेकिन बेटा सौरभ बहुत संस्कारी बच्चा है हमसे अलग ले जाकर माफ़ी माँगी और अपने भैया और बाक़ी रिश्तेदारों को भी मना किया है कि वे ऐसा न करें !तुम चिन्ता न करो ...मन छोटा मत करो, अब सब ठीक है!"

कई दिनों से कामवाली काकी नहीं आ रही थीं। अम्माँ जी का ग़ुस्सा सातवें आसमान पर था रोज़ कहती थीं "आने दो मरी को पैसे काटूँगी ! फ़ोन भी बन्द कर रखा है मक्कार ने ...ये न कि फ़ोन करके ही बता देती पूरे दस दिन हो गए...दूसरी मिलते ही निकालूँगी इस हरामखोर को ...!" लेकिन जब वो आई तो सिर और हाथ पर पट्टी बँधी देख कर उनका ग़ुस्सा कपूर सा उड़ गया।

"अरे रामकली क्या हो गया चोट कैसे लगी ...फिर मारा तेरे आदमी ने क्या ? अरे एक फ़ोन तो कर देती हमें !" अनन्या को लगा अब हमेशा की तरह काकी पल्ले से मुँह ढँक कर रोने लगेगी पर वो आराम से बैठ गई।

" बताती हूँ अम्माँ जी ज़रा दम भर लूँ..."!

"अम्मा जी अब मैं न काम करूँगी, आपके वास्ते इसे लाई हूँ सुसमा को। ये भोत अच्छा काम करेगी मन लगा के !" साथ लाई औरत की तरफ़ इशारा करके बोली।

" अरे पर हुआ क्या, काम क्यों छोड़ रही है ? दस साल से काम कर रही है अब क्या हुआ ...ये तो बता पहले ?"

"अरे अम्माँ जी का बताएँ आप तो जानती ही हो, छोटी बेटी और बेटा के साथ आधी रात तक मर-खप कर चाट बनाती तो वो मरदूद ठेला लगाता और एक पैसा नहीं देता घर में, सब खाने-पीने में उड़ा देता। ऊपर से नशे में हमसे मार पिटाई सो अलग। मैं सारे दिन घरों में बर्तन घिसूँ हूँ और मेरी फूल सी बच्ची कोठी में बच्चे खिलाने का काम करे है तब जाकर चार पैसे आवे हैं मरा उसमें से भी हड़प लेवे हा मार-पीट के !"

"अरे मेरी बहुरानी ज़रा पानी तो पिला दो!" पल्लू से आँखें पोंछ कर बोली। अनन्या ने पानी लाकर दिया तो एक साँस में पानी पी गई," जीती रहो बहू, सुहाग बना रहे!"

"पर अम्माँ जी दस दिन हुए बदजात, कमीने ने हद्द ही कर दी !" फिर इधर- उधर देख कर आवाज़ धीमे कर फुसफुसा कर बोली -"कुत्ता नशे में बिटिया की रज़ाई में घुस गया। बस अम्माँ जी मुझसे न रहा गया मैंने डंडा उठा कर अच्छी तरह ठुकाई लगा दी। उस कमीने ने इतनी ज़ोर से धक्का दिया कि मेरा भी सिर फट गया हाथ पैर में भी चोटें आईं ! बिटिया ने पुलिस को फ़ोन कर दिया ! अब मरा हवालात में बन्द है ! हमने सोच लिया है अम्माँ जी चाहे जो हो बस अब घर में न घुसने देंगे ! मैं और अमित अब खुद ठेला लगाएँगे ! बस दो-चार दिन में जरा जान आ जाए ! आपके पास मेरा फ़ोन नंबर है न अम्मा जी कोई पार्टी हो तो हमें बुलाना हम पार्टी का भी ऑाॅडर लेंगे, अपने जानने वालों को भी बताना वो किटी पार्टी का भी ऑडर दिलाना..बहू रानी तुम भी कहना अपनी सबसे ...अब हम चाऊमीन भी बनाएँगे ...!"

"राम-राम कैसा वक्त आ गया है कलजुग ही है, तूने ठीक किया अब ज़मानत मत करवाना सड़ने दे जेल में !" कह कर अम्मा जी ने नई कामवाली का इंटरव्यू लेना शुरु कर दिया।

जब वह अपना हिसाब करके जाने लगी तो अनन्या पीछे से दरवाज़ा बन्द करने गई और चुपके से उसके हाथ में पाँच सौ का नोट थमा दिया ! "काकी मिलने आती रहना और अपना ध्यान रखना !" कहते - कहते उसका गला भर आया। काकी की बहुत ममता थी उस पर खूब आशीष देती थीं।

"हाँ बहू रानी अब अकल आ गई अब कुछ न बिगाड़ पाएगा मुआ मेरा !"

इधर- उधर देख धीरे से कान पर झुक कर फुसफुसा कर बोलीं, "बहूरानी यही रीत है जग की, दबे को ही दबाए जाए है दुनिया ...सीना तान के खड़े हो जाओ एक बेरी तो सेर भी पूँछ दबा ले है, बस बेटा जब जागो तभी सवेरा!"

"खुस रहो ... साल भर में गोद में चाँद सा बेटा खेले !" आशीष देती वह चली गई और उसके शब्दों को बहुत देर कर अनन्या मन ही मन मथती रही। कभी-कभी जैसे ईश्वर ही अँधियारे में किसी माध्यम से कोई राह सुझा देते हैं।

कई दिनों से लगातार मम्मी बुला रही थीं "बिन्नू, इतै कौ फेरा लगा जाओ। कइएक मइना हो गय। बगीचा में सीताफल सोई पकन लगे। ऐन फरें हैं ई बेर। तुमाय पापा सोई कै रय ते के बिन्नू भौत दिनन सें नईं आईं !"

सौरभ को मना कर उसके साथ वह कुछ दिन के लिए चली गई थी। सुबह ही बगीचे में चिड़ियों की चहचहाहट और पापा के रामायण-पाठ की मन्द गुनगुनाहट से उसकी आँखें खुल गईं। पूजा घर से अगरबत्ती की सुगन्ध आ रही थी। सौरभ गहरी नींद सो रहे थे।

अनन्या चाय का कप लेकर बगीचे में ही चली गई। पापा ने चश्मे से उसे देख कर पाठ करते- करते ही झूले पर पास आकर बैठने का इशारा किया। सुबह की शीतल, सुगन्धित बयार, तरह-तरह की चिड़ियाएँ, आम, जामुन, बेर, नीबू, सीताफल, आँवले, अमरूद के पेड़ों पर फुदक- फुदक कर चहचहा रही थीं। खूब सारे गुलाब, चम्पा, मोंगरे, कुन्द, रात की रानी, हरसिंगार के फूलों की सुवास और रामायण की चौपाइयों से बगीचे में अलौकिक प्रभाव छाया हुआ था।

उसका मन पुलकित हो गया। वह ही घर-आँगन जिसमें बेटी जन्म लेती है, पलती-बढ़ती है शादी के बाद उसके लिए मन्दिर सा पावन हो जाता है। उसकी ममतामयी शीतल बयार मायके आई बेटी का सारा ताप-पीड़ा हर, नव-जीवन का संचार कर देती है। इसी बगीचे में जाने कितने पेड़ उसके हाथों लगाए हुए थे। पापा जब भी कोई पौधा लाते तो अनन्या के हाथों से ही लगवाते थे। बचपन से ही पापा के साथ इस झूले पर बैठ जाने कितनी कहानियाँ सुनी हैं, जाने कितनी बार रामायण का पाठ किया है, पापा की गोद में बैठ रो-रोकर मम्मी और भाइयों की शिकायतें की है, सहेलियों के साथ मस्ती की है, सावन की मल्हारें गाई हैं।

ज़मीन पर बिछे हरसिंगार के फूलों को हथेलियों में सहेज कर वह झूले पर आ बैठी। पापा अयोध्या-कान्ड का सस्वर पाठ कर रहे थे साथ में भावार्थ भी पढ़ते जाते थे-

"अस अभिलाषु नगर सब काहू। कैकयसुता हृदयँ अति दाहू।

को न कुसंगति पाइ नसाई। रहइ न नीच मतें चतुराई।"

नगर में सबकी ऐसी ही अभिलाषा है, परन्तु कैकेयी के हृदय में बड़ी जलन हो रही है। कुसंगति पाकर कौन नष्ट नहीं होता। नीच के मत के अनुसार चलने से चतुराई नहीं रह जाती।

पापा ने मोरपंख लगा कर रामायण बन्द कर मम्मी को आवाज़ लगाई, "सुनो चाय दे जाना ज़रा दो कप और वो बिस्कुट भी लाना!"

"पापा पता है मैं नौएडा में सबसे ज़्यादा ये बगीचा ही मिस करती हूँ !"अनन्या हाथ में थामे फूलों को सूँघते हुए बोली।

"हाँ बेटा इस बार बहुत दिन बाद आई ...सौरभ बेटा की तबियत कैसी है अब ...घर में सब कैसे हैं ?

"अब बिल्कुल ठीक हैं पापा, घर में भी सब ठीक हैं !"

"पापा एक बात बताओ किसी को बिना हराए कैसे जीता जा सकता है ?"अनन्या कुछ देर बाद सोच कर बोली उसके हर सवाल का जवाब पापा के पास होता था बचपन से ही,तो आज घुमा कर मन की उलझन मुस्कुरा कर पूछ बैठी। सीधे कह कर दुखी भी नहीं करना चाहती थी। उसके मन में अम्मा के प्रति बहुत करुणा व ममता थी वो उनका दिल जीतना

चाहती है पर उन्होंने अपने हृदय के कपाट बन्द कर रखे थे चाह कर भी कोई खिड़की उसे नज़र नहीं आती थी। सौरभ भले ही कुछ न कहें पर उनको भी इस बात का दुख रहता ही था। भाभी से भी संबंध मधुर बनाना चाहती है, पर वो हमेशा उसको शतरंजी चालों में लपेटती रहती हैं।

"बेटा तुम्हारे प्रश्न में ही तुम्हारा उत्तर है। जहाँ हराना नहीं तो वहाँ जीत का भी कोई मतलब रह नहीं जाता। और जहाँ हार-जीत नहीं वहाँ लड़ाई भी कैसी ? फिर कुछ सोच कर बोले "बेटा ऐसे भी कह सकते हैं कि हार पहले ही मान लो तो जीत तो तुम गए ही। कहते हैं न `हारे को हरिनाम '...हमारा अहंकार ही हमें जीतने नहीं देता! हमें अपमान इसीलिए तो महसूस होता है क्योंकि हम मान चाहते हैं,अगर मान ही न चाहो तो अपमान कैसा ?"

फिर कुछ रुक कर बोले "और बेटा अगर लगे कभी कि हमारे बस कुछ नहीं तो दूसरी तरफ भी देखना चाहिए ईश्वर कोई इशारा देते जरूर हैं !"

मम्मी दो कप चाय और आटे के बिस्किट लेकर आ गईं तब तक, "देखो बिन्नू, जे बिस्कुट तुमाय आबे की ख़बर मिलतई पापा बनवा ल्याय कनस्तर भर कें। तुमे पसन्द हैं न, ऐइसें!"

"अरे वाह मम्मी मेरे साथ भी रख देना थोड़े से !" बिस्किट कुतरते हुए बोली।

"हओ-हओ...काय नईं? अब जे बताओ के खाना में का बनाएँ ? दामाद जू की पसन्द कौ बताओ कछु।"

"अच्छा मम्मी दामाद जी की पसन्द... और हमारी पसन्द का क्या?" अनन्या ने मम्मी को छेड़ा।

"तुम आज लटपटा बेसन और लहसुन की चटनी बनाओ, महिनों से नहीं खायी, सौरभ को भी ज़रूर पसन्द आएगी मम्मी !"

"हओ....दामाद जी उठ गए सायद, देखें जायके ...बिन्नू तुम भी आय जाओ देखो कछु चाहिए हों उनको..!"

खाने में टमाटर और प्याज वाला पतला लटपटा बेसन, लहसुन की चटनी, पनिया अचार, प्याज़ देख कर अनन्या की भूख भड़क उठी।

"अरे वाह...सौरभ देखो इसको खाने का तरीका ये है थाली में रोटी बिछा कर ऊपर ये सब्जी उड़ेल दो, और ये चम्मच रख दो उधर अब हाथ से मींड कर इस तरह खाओ साथ में प्याज और ये पनिया अचार कुतरते जाओ।" अनन्या मज़े लेकर उँगलियाँ चाट कर खाती जा रही थी और सौरभ को भी सिखाती जा रही थी। सौरभ भी हँस- हँस कर अनन्या की तरह मीड कर खाने की कोशिश कर रहे थे !

"अरे वाह मम्मी यह सब्ज़ी मैंने पहली बार खाई है बहुत टेस्टी है वाकई और यह चटनी भी लाजवाब है !" सौरभ प्याज़ कुतरते हुए बोले। अनन्या ने देखा पापा- मम्मी के चेहरे खुशी से चमक रहे थे।

अनन्या दिन भर में कई बार बगीचे के झूले पर आकर बैठ जाती और चिड़ियों, फूलों को निहारती, झूलती हुई गुनगुनाती रहती या कुछ न कुछ टूँगती रहती। सुबह ही नहा धोकर वह झूले पर आ बैठी थी। सौरभ भी आकर झूले पर बैठ गये! आन्तरिक उल्लास,बेफिक्री से अनन्या का सौन्दर्य द्विगुणित होकर दमक रहा था। हरसिंगार के फूलों का गजरा बना कर उसने अपने बालों में टाँक लिया था। भीगे सुगन्धित लम्बे बाल पीठ पर पड़े झूले की गति के साथ झूम रहे थे। एक पैर से ज़मीन पर हल्का सा टेक दे वह हल्के-हल्के झूलती अपनी ही धुन में गुम धीमे-धीमे गुनगुना रही थी पेड़ों से छन कर आती सुबह की सुनहरी धूप उसके चेहरे से अठखेलियाँ कर रही थी। किसी मुग्ध वनकन्या सी धीरे-धीरे गुनगुनाती, अपने-आप में गुम अनन्या के अलौकिक सौन्दर्य का यह रूप नवीन था सौरभ के लिए। अनन्या की तरफ मुग्ध भाव से देख हाथ पकड़ बहुत कोमल स्वर में बोले, "अनन्या तुम यहाँ कितनी खुश रहती हो वहाँ क्यों नहीं रहतीं ऐसी ही ?"

अनन्या ने ख़ामोशी से सौरभ को देखा और कोई जवाब नहीं दिया बस मस्ती से गुनगुनाती रही-

"झूला झूलन चलो बृजनार, बागन झूला डरे...."

सैटरडे -सन्डे की छुट्टियों में दोनों भाई भी सपरिवार आ गए थे। घर में खूब रौनक हो गई। अनन्या कभी भाइयों संग बतियाती, कभी भाभियों संग चुहल करती और कभी भतीजे, भतीजियों संग मस्ती करती, खेलती तो कभी कहानी सुनाती। भाभियों की कढ़ाई भी चढ़ी ही रहती कोई न कोई व्यंजन बनता ही रहता। सौरभ के खूब लाड़-चाव हो रहे थे। सौरभ भी पापा के संग और भाइयों के संग खूब बातों में व्यस्त थे।

हँसी-खुशी में सबसे बात करते, सहेलियों के साथ शॉपिंग व मस्ती करते, खाते- पीते, गाने-गाते दस दिन कब गुज़र गए अनन्या को पता ही नहीं चला। सौरभ का स्वास्थ्य भी जगह चेंज होने से पहले से बेहतर लग रहा था।

लौटते समय मम्मी ने अपने हाथ से बना कर खूब सारे गोंद के लड्डू, मठरी, आटे के बिस्किट, अचार, मुरब्बे और घर भर के लिए कपड़े साथ बाँध दिए थे। लौटते समय गेट पर खड़े हाथ हिलाते पापा मम्मी को दूर तक मुड़-मुड़ कर देखती अनन्या का मन भारी हो गया था और आँखें नम।

दो महीने बाद नौएडा में ही सौरभ का नया जॉब लग गया अनन्या ने सुकून की साँस ली।

एक दिन सौरभ की बहन मनीषा को देखने लड़के वाले आए तो मुम्बई वाले चाचा जी का दिया महँगा वाला टी सैट निकाला गया। कबूतर के पंखों से नाज़ुक, पतले, चौड़े, गुलाबी और सुनहरे बेल -बूटों वाले ख़ूबसूरत कपों और पूरे सैट को धो-पोंछ कर अनन्या ने मेहमानों के जाने के बाद सँभाल कर डिब्बे में रख दिया,पर जैसे ही अलमारी में ऊपर रखने के लिए उठाने लगी गत्ते का डिब्बा नीचे से धसकता सा लगा तो उसने सँभाल कर वापिस नीचे ही अलमारी में रख दिया।

"बात सुनो टी सैट का डिब्बा टूट सा रहा है तो मुझे कल दूसरा ला देना उसे बदल दूँगी!" उसने कमरे में आते ही सौरभ से कहा।

"ठीक है कल ला दूँगा याद दिला देना !"

सुबह ही बड़े ज़ोर के शोर से चौंक कर अनन्या व सौरभ की नींद टूटी। सभी ज़ोर-ज़ोर से एक साथ चिल्ला रहे थे। अनन्या और

सौरभ हड़बड़ा कर कमरे से बाहर भागे। टी सैट टुकड़े- टुकड़े हुआ फ़र्श पर पड़ा था, सभी लोग ग़ुस्से से अनन्या को ही घूरने लगे। भाभी, भैया, मनीषा और अम्मा जी सब उसे ही दोष दे रहे थे कि उसने सैट का डिब्बा उठा कर ऊपर क्यों नहीं रखा ?अनन्या एक पल को स्तम्भित सी खड़ी सौरभ को देखने लगी कि शायद वो कुछ कहेंगे पर हमेशा की तरह वे मौन साधे थे।

"अरे ! मैंने यूँ ही पड़ा देखा तो कहा लाओ मैं ही रख दूँ ऊपर, बस मरे मेरे बूढ़े हाथों से फिसल गया। छोटी बहू क्यों नहीं रखा तुमने उठा कर ऊपर ...हद्द होती है लापरवाही की भी !" अम्मा जी ने उसे ज़ोर से ग़ुस्से से डाँटा।

"अरे पर आपने क्यों उठाया ? वह डिब्बा नीचे से टूट रहा था इसी से तो हमने ऊपर नहीं रखा।हमने तो कहा भी था इनसे कि हमें दूसरा डिब्बा ला देना कल बदल देंगे।" बहुत इत्मिनान व शान्ति से कह कर अनन्या बाथरूम में घुस गई पर उसके कान बाहर की सरगोशियों पर ही टिके थे।

सब हैरानी से एक दूसरे का मुँह देखते रह गए। हमेशा की तरह ग़लती होने पर, डाँट खाने पर मुँह छिपा कर रोने वाली अनन्या का यह नया ही रूप था।

"अरे !कितने आराम से कह कर चल दीं महारानी जैसे कुछ हुआ ही नहीं !" बड़बड़ाती हुई भाभी झाड़ू लेकर सैट की किर्चें बुहारने लगीं। बाक़ी सब लोग भैया, मनीषा, अम्मा सैट के ऊपर कुछ देर तक मरसिया पढ़ते रहे।

"हद्द है...बताओ कितना महँगा था।"

"अब तो मिलेगा भी नहीं इतनी फ़ाइन पेपर जैसी बोन चाइना अब कहाँ आती है?"

"च् च् च् कितनी सुन्दर शेप थी... जे चौड़े -चौड़े कप अब कहाँ मिले हैं मरे !"

वह सैट अनन्या को भी बहुत पसंद था। दुख उसे भी बहुत हो रहा था पर ऊपर से वह एकदम सहज भाव से सबका नाश्ता बनाती रही जैसे कुछ हुआ ही न हो। उसको यह अच्छी तरह समझ में आ गया था कि वो लड़ नहीं सकती तो हार-जीत से परे कोई और समाधान ढूँढ़ना ही होगा।

अनन्या को सहसा ध्यान आया कि मोनू को पढ़ाने जो दीप्ति आती है उसने एक दिन उससे कहा था "भाभी आपने संस्कृत में एम.ए. और एम.एड .किया है न? यदि आप जॉब करने में इंट्रेस्टेड हों तो मेरे कॉलेज में वैकेन्सी है, उनको संस्कृत में एम.ए., एम.एड. कैंडिडेट चाहिए, पेपर में भी एड दिया था!" उस समय अनन्या ने कह दिया था कि सोच कर बताती हूँ लेकिन उसके बाद घर में ज़िक्र करने की हिम्मत ही नहीं पड़ी।

कुछ सोच कर उसने दीप्ति को कॉल किया, "दीप्ति तुम कह रही थीं कि तुम्हारे स्कूल में कोई वैकेन्सी है उस पर एपॉइन्टमेन्ट हो गया क्या ?"

"नहीं भाभी उनको कोई क्वालिफ़ाइड कैंडिडेट अभी नहीं मिला है।"

"तुम प्लीज़ कल मेरी एप्लिकेशन ले जाना !" कह कर अनन्या को सुकून सा तो मिला पर जानती थी ये कोई आसान काम नहीं है।

जब अनन्या ने एप्लाई किया तो घर में काफ़ी हलचल मची थी।

"जो औरतें नौकरी करती हैं उनके बच्चे हाथ से निकल जाते हैं पति भी भटक जाते हैं और ऐसी भी क्या आफ़त है, लग तो गई है सौरभ भैया की जॉब ...इतनी क्या हाय-माया है पैसों की ?"

भाभी ने उपदेश पिलाया तो अम्मा जी ही कैसे पीछे रहतीं घुटने पर तेल मलती बोलीं -

"बहू हमारे भरोसे तो मत रहना भई तुम्हारे बच्चों के गू - मूत हमसे न होंगे अब इस उम्र में!"

"अरे अम्माँ जी अभी कहाँ हैं बच्चे ? और जब होंगे तब देखा जाएगा ! अभी तो एप्लाई कर रही हूँ देखो लगती भी है या नहीं !" कह कर वह अपने कमरे में चली गई।

"अरे भैया ! इनके तो लच्छन अभी से कुछ बदलते लग रहे हमें !" भाभी की फुसफुसाहट पीछे- पीछे उसके कानों तक पहुँच गई थी...अनसुना कर वह बहुत सावधानी से अपना फ़ॉर्म भरने बैठ गई।

"अच्छा सुनो कल कॉलेज में मेरा इंटरव्यू है तो तुम ऑफ़िस जाने से पहले मुझे छोड़ देना प्लीज़ उधर से रिक्शे से आ जाऊँगी ! दीप्ति कह रही थी कि जॉब तो लगी ही है समझो बस इंटरव्यू की फॉरमेल्टी ही है ! उनको कोई क्वॉलिफाइड कैंडिडेट मिल ही नहीं रहा है!"अनन्या ने सोने से पहले सौरभ से हिम्मत कर कहा।

"अरे तुम सोच लो, मैं जानता हूँ अम्मा को अच्छा नहीं लगेगा !"

" हाँ तो अच्छी तो मैं भी नहीं लगती उनको तो क्या करें, फिर बताओ क्या करें!"

झुँझला पड़ी थी अनन्या। सौरभ में और सभी गुण थे, वह जान छिड़कते थे उस पर लेकिन अब वह यह अच्छी तरह जान गई थी कि अपने लिए उसे खुद ही खड़ा होना होगा और उसके लिए भावुकता छोड़ कर मज़बूत और बोल्ड बनना ही होगा और कोई उपाय नहीं है।

"तुमको याद है न सौरभ मैंने शादी से पहले ही तुमको बता दिया था कि मैं जॉब करूँगी और तुमने कहा था कि तुम कभी ऐतराज़ नहीं करोगे ...तो फिर अब यह क्यों?"अनन्या ने सायास आवाज़ को तल्ख बना कर कहा।

"अरे मुझे कोई एतराज़ नहीं पर अम्माँ...!" अनन्या ने घूर कर उसकी तरफ देखा तो सौरभ ने करवट लेकर चादर ऊपर तक खींच ली।

सुबह ही अनन्या तैयार होकर सौरभ के साथ स्कूटर पर कमर में हाथ डाल कर सट कर बैठ गई। उसने सिर से पल्लू हटा कर कमर में खोंस लिया। स्कूटर चलाते सौरभ सोच रहे थे बात - बात पर रोने-बिसूरने वाली अनन्या इस एक साल में कितनी बदल गई है।

ठंडी ताज़ी हवा के झोंके अनन्या के खुले बालों से अठखेलियाँ कर रहे थे पर उसने उनको कान के पीछे नहीं समेटा यूँ ही गालों पर उन्मुक्त अठखेलियाँ करने दिया।

"ज़िंदगी इतनी भी मुश्किल नहीं !" परम संतुष्टि का भाव जाने कहाँ से आकर चुपके से अनन्या के कान में फुसफुसा गया। आत्मविश्वास से प्रदीप्त उसके चेहरे पर गुनगुनी धूप सी मुस्कान चुपके से पसर गई ...।

000

ढलती शाम का हम सफ़र

मार्टिन जॉन

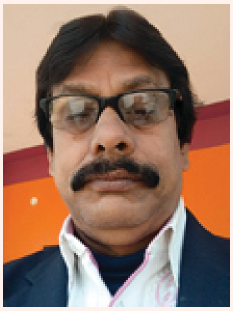

मार्टिन जॉन
अपर बेनियासोल, पो. आद्रा, जि. पुरुलिया, पश्चिम बंगाल 723121
मोबाइल- 9800940477
ईमेल– martin29john@gmail.com

तक़रीबन तीन सालों से जालीदार पिंजड़े में क़ैद तोते की नज़र जब पिंजड़े के दरवाज़े पर पड़ी तो एकबारगी उसे यक़ीन नहीं हुआ। दरअसल पिंजड़े का छोटा सा दरवाज़ा खुला पड़ा था। उसने अगल-बगल गौर से झाँका। आस-पास तो कोई नहीं था। तो फिर दरवाज़ा कैसे खुल गया? उसने अपने सर को झटका दिया।

'ख़ामख्वाह इस पचड़े में पड़ रहा हूँ...चाहे जिसने भी खोला हो, इस मौके का फ़ायदा उठाना चाहिए है मुझे।' उसने खुद से कहा और पलक झपकते दरवाज़े से बाहर निकलकर पिंजड़े के ऊपर जा बैठा। उसने आँखें ऊपर उठाईं। खुला आसमान उसे दावत दे रहा था। उसने अपने डैने ज़ोर से फड़फड़ाए- एक बार, दो बार, तीन बार। वह पूरी तरह आश्वस्त हो लेना चाहता था आसमान की ऊँचाइयाँ नाप सकेगा कि नहीं।.....तीन साल की क़ैद से रिहा होने का इससे बढ़िया और माक़ूल मौका उसे कभी नहीं मिलेगा। आज़ादी की साँस लेने की बरसों पुरानी कल्पना साकार होने वाली थी। खुले आकाश का आमंत्रण स्वीकार करने के लिए जैसे ही वह उद्धत हुआ, उसकी नज़र अपने दोनों पालनहारों पर पड़ी। दोनों वृद्ध थे। इतने बड़े घर में उन दोनों के अलावा कोई नहीं था। वृद्ध घर के सामने छोटी सी बगिया के बीचों-बीच आराम कुर्सी पर बैठा था। वृद्धा कोई दर्द निवारक तेल से उसके घुटने की मालिश कर रही थी। उसने फड़फड़ाते पंखों को समेट लिया और उन दोनों को गौर से निहारते हुए तीन साल पीछे लौट गया।

उस वक़्त उसकी उम्र तीन महीने की रही होगी। पंख लगभग उग आए थे। देह में मज़बूती आ गई थी। किशोर वय और युवा अवस्था की संधि रेखा की देहरी पर खड़ा था। अब उसे उड़ान

भरनी थी माँ का अनुसरण करते हुए। वह दिन भी आ गया जब वह माँ के पीछे –पीछे उड़ चला। पहली उड़ान थी, सो ख़ुशी और रोमांच से लबरेज़ था। सब कुछ पहली बार देख रहा था हवा में अपने पंखों को लहराते हुए – दूर तक फैला आसमान, नदी, पहाड़, पेड़-पौधे, घर, मकानात, गलियाँ, बस्तियाँ, इंसानों का हुजूम ....वगैरह वगैरह।

उड़ते हुए वह इन नज़ारों के देखने में इतना मसरूफ़ हो गया था कि सामने से तेज़ी से आते हुए एक परिंदे से टकरा गया। सामने की दिशा से आनेवाला परिंदा जवान था। वह अपने को सँभालते हुए आगे बढ़ गया लेकिन वह संतुलन खो बैठा। नतीजन लड़खड़ाते हुए इसी बगिया में गिर पड़ा। वह बुरी तरह ज़ख़्मी हो गया था।

'माँ...माँ ' की कारुणिक चीत्कार करते हुए बहुत देर तक उसी अवस्था में पड़ा रहा। बगिया में टहलते हुए जब घर के मालिक सुदेश बाबू की नज़र उस पर पड़ी तो उसे सँभालकर उठाया और अपने कमरे में ले आए। अपने स्तर पर उन्होंने उसका इलाज किया। चौबीसों घंटों की देख-भाल से वह स्वस्थ तो हो गया, लेकिन उड़ने में असमर्थ था। फिर भी दिन के उजाले में उसे बगीचे में छोड़ दिया जाता, इस उम्मीद में कि आते-जाते कभी उसकी माँ अथवा उसके बिरादरी के किसी सदस्य की नज़र उस पर पड़ जाए। उड़ने की कोशिश में वह अपने डैने फड़फड़ाता तो था लेकिन दाहिने डैने में पीड़ा की एक लहर-सी उठती और वह वहीं बैठ जाता।

एक दिन वह उड़ने की कोशिश में पंख फड़फड़ा रहा था कि एक आवारा बिल्ली उसके सामने नमूदार हो गई। बिल्ली को देखकर उसके प्राण सूख गए। वह थर-थर कांपते हुए जोर गले से चीत्कार करने लगा। अपनी जीवन –लीला समाप्त होने के भय से उसने आँखें मूँद ली। कुछ ही पलों में वह बिल्ली का निवाला बनने वाला था कि ऐन मौके पर सुदेश बाबू की पत्नी सामने प्रकट हो गई। बिल्ली के इरादे को भाँप कर उसने ज़ोर से हाँक लगाई। बिल्ली तेज़ी से बगीचे की दीवार फाँदकर ओझल हो गई। भय के अतिरेक से मुँदी आँखें जब उसने खोली तो खुद को वृद्धा की हथेली में पाया जो उसे बड़े प्यार से सहलाते हुए बुदबुदा रही थी, 'कैसे तेरी माँ से तुझको मिलवाऊँ...तू तो उड़ भी नहीं सकता। गली के कुत्ते, बिल्ली घात लगाए हुए हैं...चल बेटा, अब हमारे साथ ही रह...मुझे मालूम है, इस हालत में, बगैर माँ के हमारे साथ रहना तेरे लिए कितना मुश्किल होगा; लेकिन तुझे यूँ ही छोड़ भी तो नहीं सकती....तेरी हिफाज़त तो करनी ही होगी।' उसके बाद वह पिजड़े में बंद हो गया और टिया बेटा के नाम से पुकारा जाने लगा। हालाँकि पिंजड़े की ज़िंदगी उसे रास नहीं आ रही थी। सारा दिन अपनी कच्ची आवाज़ में चीखता –चिल्लाता। लेकिन धीरे –धीरे उसने पिजड़े में कैद रहकर ज़िंदगी बीतने की आदत डाल ली। इस दौरान उसे इस बात का इल्म हो चुका था कि उसका नाम टिया है। सारा दिन दोनों वृद्ध 'टिया बेटा..टिया बेटा' संबोधित कर कुछ-न-कुछ बतियाते रहते थे।

पिंजड़े के ऊपर खड़े –खड़े दोनों वृद्धों को निहारते हुए टिया सोचने लगा, ज़िंदगी की ढलती शाम में दोनों कितने अकेले हो गए हैं। कहने को तो दो जवान बेटों के माता-पिता हैं लेकिन गुज़रे कई सालों में एक बार भी उन्होंने घर में कदम नहीं रखा। बेहतर कॅरियर बनाने के लिए एक बार जो विदेश गए, नौकरी और अपने परिवार में इस कदर रम गए कि उनकी सुध लेने की उन्हें फुरसत ही नहीं रही। टिया इस बात को शिद्दत से महसूसता है कि बीते कई सालों से वह पिजड़े में क़ैद रहा तो क्या हुआ। उन्होंने अपनी औलाद से भी ज़्यादा उस पर प्यार, ममता और स्नेह उड़ेला है। ज़रूरत से ज़्यादा देख-भाल का ही नतीजा है कि वह क़ैद में रहकर भी कभी अस्वस्थ नहीं हुआ। बिलकुल हृष्ट-पुष्ट। पिंजड़े के अंदर उसके भोजन के रूप में हरी, लाल मिर्च, चना, मटर, सेब, अमरूद हमेशा उपलब्ध रहते। अक्सर ऐसा होता था कि दोनों जब एक दूसरे से बतियाते हुए ऊब जाते हैं तो उसके पास कुर्सी लगाकर बैठ जाते हैं। उससे इस तरह बतियाते, जैसे वह उनका हमदर्द, हमराज और हमज़ुबाँ है। बातचीत के दौरान अपनी औलाद की बेरुखी का रोना एक बार ज़रूर रोते। उसे मालूम है, उससे घंटों बतियाकर वे दोनों अपना अकेलापन दूर करते हैं। स्वयं को मुझमें रमाने की कोशिश करते हैं। वह भी अपनी ज़ुबान में दिलासा देता रहता है। हालाँकि वह भी क़ैद में रहकर अपने समाज कट गया था। उसे भी अक्सर अपनी बिरादरी से बिल्कुल अलग और दूर रहने का अफ़सोस कचोटता रहता है। बावजूद इसके जब-जब वह उन दोनों के एकाकीपन को महसूसता, उसके एकाकी जीवन का एहसास कमतर हो जाता। कभी–कभी तो उसे लगता कि जैसे वह उन दोनों की ज़िंदगी के तार से कस कर बँध गया है और जैसे उन दोनों के प्राणवायु उसमें जा समाए हैं।

इसी बीच उसके कानों में 'गुड मॉर्निंग, गुडऑफ्टरनून, गुडनाइट' के स्वर गूँजने लगे जिन्हें वे उसके सामने जाकर बड़े प्यार और अपनेपन से सुबह, शाम और दोपहर को दोहराया करते हैं...कभी- कभी तो सुदेश बाबू उसी की ज़ुबान की नक़ल करने की कोशिश करते हुए अक्सर दोहराया करते, "खाना खा लिया बेटा...देख आज तेरे लिए मैं क्या लाया हूँ.....देख देख ये कश्मीरी सेब.....ये काबुली चना.... ये हरे हरे कैप्सिकम...इन्हें खाते रहना बेटा....बड़ा मज़ा आएगा...सेहत के लिए बेहद फायदेमंद है।" कहते-कहते उनकी ज़ुबान लड़खड़ा जाती। आँखें पनीली हो जाती। सीने में दर्द की एक लहर हिलोरे मारने लगती। दोनों बेटों के बचपन की याद से वे भीग जाते। उस समय पत्नी आकर उन्हें सँभालती। जबकि वह भी मुँह में आँचल ठूँस कर सुबकने लगती।

टिया ने अपने सर को फिर एक बार झटका दिया। उसने मन-ही-मन खुद से कहा, 'क्यों इतना जज़्बाती हो रहा है...जब इंसानी रिश्ते ही कायम नहीं रहते तो हमारे रिश्ते की क्या बिसात !..... इतना सोचने का वक़्त नहीं।' और उसने पंख फड़फड़ाए, एक लंबी साँस ली, आसमान को निहारा। हवा के सीने को चीरते हुए जा बैठा सामने के एक पेड़ की एक डाल पर। अचानक दोनों की नज़रें उड़ते

हुए टिया पर पड़ी तो धक् से रह गए।....अरे, यह कैसे हो गया ? .. तो क्या सचमुच टिया हमें छोड़कर भाग रहा है ? यह सोच कर दोनों के हाथ पैर फूलने लगे। उसकी जुदाई की कल्पना से दोनों सिहर उठे। एक ही झटके में टिया इस रिश्ते को नकार कर बिसरा देगा, इसकी उन्हें कतई उम्मीद नहीं थी। वे दोनों बड़े बेबस और कातर निगाह से कभी खाली पिंजड़े को, कभी पेड़ की डाल पर बैठे टिया को निहार रहे थे। कल की तो बात है जब उनके पड़ोसी ने बातचीत के दरम्यान यह कह डाला था कि परिंदों में सबसे बड़ा एहसान फ़रामोश तोता ही होता है। उस समय उन्हें पड़ोसी की बातें बहुत बुरी लगी थी।

"जा जा, तू भी जा !.........जब अपना ही खून सगा नहीं हो पाया तो तू कौन है !" सुदेश बाबू की पत्नी भीगे स्वर में बोल पड़ी, "चलो जी, अब यह लौटकर नहीं आने वाला !" और वह घर की ओर मुड़ गई। सुदेश बाबू नहीं गए। वहीं खड़े रहे। टिया को निहारते हुए अकस्मात् उनके दिमाग में स्कूली जीवन में पढ़ी हुई प्रेमचंद की एक कहानी कौंध गई। 'आत्माराम' – हाँ, यही शीर्षक था कहानी का। प्रसंग कुछ ऐसा ही था। कहानी का मुख्य किरदार महादेव का तोता आत्माराम पिंजड़े का दरवाज़ा खुला पाकर उड़ गया। आत्माराम को महादेव बेहद प्यार करता था। अपनों से ज़्यादा उसपर स्नेह बरसाता था। आत्माराम कभी इस पेड़ से उस पेड़ पर जा बैठता और महादेव खाली पिंजड़ा लिए 'सत गुरुदत्त शिवदत्त दाता, राम के चरण में चित्त लागा ' दुहराता हुआ उसके पीछे –पीछे दौड़ लगाता रहता।

इस समय सुदेश बाबू महादेव का किरदार निभाने की बात सोच भी नहीं सकते थे। दोनों घुटनों का दर्द उन्हें लाचार कर दिया था। बमुश्किल कुछ ही क़दम चल पाते थे। कुछ देर तक वे बड़े प्यार से टिया को पुकारते रहे। लौट आने की गुहार लगाते रहे। अंत में जब उन्हें लगा कि टिया की वापसी की कोई संभावना नहीं है तो उनके क़दम घर की ओर मुड़ गए। मुख्य दरवाज़ा बंद कर अपने कमरे में भारी मन लिए बिस्तर पर लेट गए।

टिया से बतियाना, उसे प्यार करना, नमस्ते, गुडमॉर्निंग जैसे अभिवादन के शब्दों को सिखाना, दुलारना, पुचकारना उनकी आदत में शुमार हो चुका था। कल से बहुत कुछ बदल जाएगा।

अभी आधा घंटा भी नहीं बीता होगा कि सुदेश बाबू अचानक उठकर बैठ गए। शरीर की समस्त इन्द्रियों को समेट कर कानों के पास ले आए।

आँखें मूँदे ध्यान से सुना, "अरे, यह तो टिया की आवाज़ है।" तत्काल अपनी पत्नी को बुलाकर गौर से सुनने को कहा। "हाँ, हाँ यह तो टिया ही है दरवाज़े के पास।" अगर वह उम्रदराज़ न होती तो इस वक़्त तालियाँ बजाकर, उछल –उछलकर अपनी ख़ुशी का इज़हार करती। सुदेश बाबू उछलकर खड़े हो गए। दर्द जाने कहाँ गायब हो चुका था। हर्षातिरेक में वे भूल गए कि तेज़ चलना उनके लिए खतरनाक है। लगभग दौड़ते हुए वे दरवाज़े के पास पहुँचे। दरवाज़ा खोला तो उन्हें यक़ीन करना पड़ा कि यह टिया की ही बोली है।

उन्होंने देखा, दरवाज़े से बँधी एक लोहे की तार पर बैठा टिया उन दोनों को देखते ही अपनी गर्दन को ऊपर नीचे करते हुए कुछ बोल रहा था। टिया को देखकर उनके शरीर की शिराओं में ख़ुशी की ऐसी लहर दौड़ी कि वे थर-थर काँपने लगे। साँसें ऊपर-नीचे होने लगी। ज़ुबान तालू पर चिपक गए। अवाक् उसे एकटक निहार रहे थे और खुद को यक़ीन दिला रहे थे कि टिया वापस आ गया है। बमुश्किल सुदेश बाबू कुछ बोलने के लिए मुँह खोलते, टिया उड़कर उनके कंधे पर जा बैठा और वहीं गोल-गोल घूमते हुए अपनी गर्दन को ऊपर-नीचे करते हुए अपनी ज़ुबान में जो कुछ कहा उसके ज़वाब में उन्होंने पनीली आँखें लिए रुंधे गले से कहा, "हाँ हाँ, हमें मालूम है बेटा तू हमें छोड़कर कभी नहीं जाएगा ...कभी नहीं जाएगा !" पीछे खड़ी पत्नी उनके कंधे पर सर रखकर सुबकने लगी। सुदेश बाबू टिया को हथेली पर रखकर बेतहाशा चूमने लगे।

000

लघुकथा

सौतेला नागरिक

रीता कौशल

पासपोर्ट के कटे कोने को देख कर विमलकान्त को याद आया...उसके बचपन में नाते रिश्तेदारी में कहीं कोई मृत्यु हो जाती थी तो इसी तरह से कोना कटे हुए पोस्टकार्ड पर शोक सन्देश आता था। इसी सोच के साथ सैलाब उमड़ आया उसकी आँखों में। जिस माटी में जन्म लिया था उससे आज क़ानूनन उसका वास्ता ख़त्म हो गया। सिंगापुर के भारतीय दूतावास से उसका कोना कटा भारतीय पासपोर्ट डाक के द्वारा वापस आ गया था।

होने को तो पासपोर्ट कागज़ का पुलिंदा मात्र था, किन्तु उसका इस तरह से काट दिया जाना ...उफ्फ्फ ! उसे लगा जैसे किसी ने उसकी छाती से उसके हृदय को निकाल फेंका हो। वह एक विकसित देश का नागरिक बन गया था और उसका भारतीय पासपोर्ट रद्द कर दिया गया था। वह इस बात से कतई अनजान नहीं था कि अपनी असल पहचान खोकर अब वह दोयम दर्जे का नागरिक बन गया था...विकसित देश का सौतेला नागरिक!

000

रीता कौशल
PO Box 48, Mosman Park, Western Australia 6912
मोबाइल- +61402653495
ईमेल- rita210711@gmail.com

शहर भीतर गाँव, गाँव भीतर शहर

डॉ. विनीता राहुरीकर

विनीता राहुरीकर
श्री गोल्डन सिटी, 28 , फेस-2 ,
होशंगाबाद रोड़, जाटखेड़ी, भोपाल ,
मध्यप्रदेश-462043
मोबाइल-9826044741
ईमेल- vinitarahurikar@gmail.com

आठ बजते-बजते सुमित्रा का ह्रदय व्याकुल होने लगा। काम पर जाना है। शाम से ही बुखार हो आया था उसे। रात तक बढ़ गया था। रोटी भी बड़ी लड़की ने ही बनाई थी कल। आज भी उसने बड़की को बोल दिया था स्कूल से छुट्टी लेने को। बड़की सुमित्रा की खाट के पास ही बैठी गिलकी-आलू काट रही थी। वह तो अच्छा है घर में गैस चूल्हा आ गया है वरना लड़की बेचारी को लकड़ियाँ फूंकनी पड़ती। सुमित्रा को बेटी पर दया आ गई। चौदह साल की ही तो हुई है अभी, और खाना बनाना पड़ रहा है। हालाँकि आसपास की उसकी उम्र की अधिकांश लडकियाँ न सिर्फ घर का काम करती हैं बल्कि आस-पास की कोलोनियों के दो-चार घरों में बर्तन-झाड़ू-पोछा भी करती हैं। लेकिन सुमित्रा अपनी बेटी को खूब पढ़ाना चाहती है। मजबूरी में ही कभी उसे स्कूल की छुट्टी करने देती है।

नौ बजे तक बड़की ने सब्जी-रोटी बना ली ।सुमित्रा ने साड़ी के पल्ले से माथे का पसीना पोछा और उठकर बैठ गई । बदन की तमाम हड्डियाँ दर्द कर रही थीं। उसने बेटी को चाय बनाने को कहा और अपनी साड़ी ठीक करने लगी। बाल लपेटकर जूड़ा कस लिया।

"कहाँ चल दी उठकर?" बेटी ने चाय का कप थमाते हुए पूछा।

"काम पर।" रोटी के डिब्बे से दो रोटियाँ निकालकर चाय के साथ खाते हुए सुमित्रा ने जवाब दिया।

"बुखार में पड़ी है। क्यों जा रही है, आज छुट्टी करके आराम कर न। कल चली जाना। बुखार बढ़ गया तो!" बेटी ने हाथ छूकर कहा।

"एक घर का काम करके ही आ जाऊँगी, बाकि घरों में नहीं जा रही।" सुमित्रा ने फिर पल्ले से चेहरा पोंछते हुए कहा।

"पता नहीं तेरी ऐसी कौन सी मेडम हैं यह कि एक दिन के लिए भी तुझे छुट्टी नहीं देती। महीने की दो-तीन छुट्टियाँ तो सभी देते हैं।" बड़की ने मुँह बनाते हुए कहा।

"दरवाज़ा अंदर से बंद करके बैठना ठीक से। मैं घंटे भर में आ जाऊँगी।" कहती हुई वह घर से बाहर निकल गई।

भोपाल के आसपास बसे गाँवों में से ही एक गाँव था यह जाटखेड़ी, जो अब गाँव न रहकर

भोपाल शहर का ही एक हिस्सा बन गया है। 'जाटखेड़ी' अपनी मूल पहचान और अस्तित्व खोकर भोपाल शहर के पते के अंदर एक नगर के रूप में रह गया है, बहुत से अन्य गाँवों की तरह।

तेज़ी से बढ़ते शहरीकरण में शहर सुरसा की तरह अपने चारों तरफ बसे गाँवों को निगलते जा रहे हैं या फिर खेतों को निगल रहे हैं। गाँव छोड़ भी दे तो चारों तरफ की खाली ज़मीन या खेतों पर अपने पैर फैलाते जा रहे हैं। शहर का हिस्सा जब मकानों से खचाखच भर गया और उसमें अब और मकान बनने की गुंजाईश नहीं बची तो उसकी लपलपाती जीभ ने धीरे-धीरे एक-एक करके गाँव के खेत-खलिहानों को उदरस्थ करना प्रारम्भ कर दिया। फिर विकास के नाम पर नई बनी कोलोनियों तक पहुँचने के लिए कइयों के खेतों के बीच से होकर सड़कें बन गईं। खेत दो हिस्सों में बँट गए। कई कॉलोनियों तक पहुँचने के लिए खेतों में से होकर जाना पड़ता। तब किसानों पर बिल्डरों के कई तरह के आड़े तिरछे दबाव पड़ने शुरू हो गए। कई किसानों को मजबूरी में अपने खेत भू-माफियाओं को बेचने पड़ गए। अब बेरोज़गार और बेकार होकर किसान उन्हीं कोलोनियों में मज़दूरी कर रहे हैं और उनकी औरतें और लड़कियाँ अपने ही खेतों पर बने आलिशान मकानों में झाड़ू-पोंछा तथा बर्तन माँजने जाती हैं।

गाँव अपने भीतर उग आए शहर को कभी कौतुहल से, कभी डर से तो कभी एक बेबस तिलमिलाहट से देखते हैं और शहर अपने भीतर बचे रह गए गाँव को हिकारत से देखते हुए सोचता है कि यह क्यों बचा रह गया। ठीक वैसे ही जैसे अफ़सर बनने के बाद बेटा अपनी अनपढ़, गंवार माँ को हेय दृष्टि से देखता है। चमचमाती पॉश कोलोनियों के इर्द-गिर्द बचे रह गए ये पिछड़े, गरीब गाँव वैसे ही लगते है जैसे लालबत्ती पर रुकी हुई महंगी कार के आसपास नाक बहाते, मैले-कुचैले बच्चों का झुण्ड आ खड़ा हो गया हो। बड़ी-बड़ी कारों में सवार लोग गाँव के इन हिस्सों पर नज़र डालते हुए मुँह बनाकर सोचते है कि ये पता नहीं यहाँ से कब हटेंगे!

गाँव में बलात् घुस आया शहर कभी सोच ही नहीं पाता कि बिन बुलाया मेहमान तो वह खुद है, गाँव तो अपनी जगह पर ही है। अब तो गाँव की भोली-भाली संस्कृति पर शहर की आधुनिक और दिखावा भरी संस्कृति का प्रभाव भी बढ़ता जा रहा है। शहर ने गाँव के शरीर को ही नहीं आत्मा को भी चपेट में ले लिया है। तेज़ी से ग्रसता ही जा रहा है।

दो गलियाँ पार करके सुमित्रा गाँव से, जिसे अब बस्ती कहना ज़्यादा ठीक रहेगा, बाहर निकल आई। संकरी सड़क के दाईं ओर आठ फुट ऊँची दीवार थी। उस दीवार के पार बहुत बड़ी कॉलोनी थी, लगभग हजार-बारह सौ घरों की। सुमित्रा की जान-पहचान की बहुत सी औरतें उधर के घरों में काम करने जाती हैं।

बस्ती के लड़के काम-धंधों पर जाने की तैयारी कर रहे थे। अपनी ज़मीन के मालिक अब उन्हीं ज़मीनों पर बने 'बंगले वालों' के यहाँ ड्रायवर का काम करते या उनके कुत्ते घुमाते, उनकी फैक्ट्रियों या दुकानों पर काम करते। किसान अब 'अन्नदाता' के पद से नीचे उतर कर 'मज़दूर' की श्रेणी में आ गया।

कुछ ही दूरी पर बाईं तरफ बहुत बड़ा कॉलेज था, और उसी कॉलेज के सामने स्वर्णनगरी थी। सुना है यह कॉलोनी इसी शहर की नहीं वरन् आसपास के कई शहरों में सबसे सुंदर और भव्य थी।तभी इसका नाम स्वर्णनगरी रखा गया है शायद।सुमित्रा को हँसी आ गई कुछ ही फर्लांग की दूरी पर जाटखेड़ी की बस्ती है और उसी जाटखेड़ी के एक हिस्से पर यह भव्य स्वर्णनगरी। ज़मीन के एक ही हिस्से पर विपन्नता और सम्पन्नता का ऐसा अनूठा, विद्रूप, हास्यास्पद संगम दुनिया के शायद किसी अन्य हिस्से में देखने को नहीं मिलेगा।

एक गहरी साँस भरकर सुमित्रा ने कदमों को क्षणभर के लिए विश्राम दिया, पल्ले से तपे हुए चेहरे का पसीना पोंछा और फिर आगे बढ़ ली। कॉलोनी के भव्य गेट पर चार गार्ड खड़े थे। उनमें से एक मंगल था। सुमित्रा का पति। सुमित्रा ने क्षण भर रुककर साथ लाया डिब्बा मंगल को थमाया। आज मंगल की ड्यूटी सुबह की है। बारी-बारी से ड्यूटी तीन पारियों में चलती रहती है। मंगल ने आश्चर्य से सुमित्रा को देखा-"बुखार में तपी हुई पड़ी थी। काहे आई है काम करने को। आराम करती न घर पर।"

जवाब में सुमित्रा के तपे हुए चेहरे की जलती निगाह देखकर आगे कुछ कहने का साहस नहीं हुआ मंगल को।सुमित्रा आगे बढ़ गई।

गेट से अंदर पैर रखते ही तलवों पर सरसराहट सी हुई, एक ऊर्जा तलवों से होती हुई सीमेंट के ब्लोक्स को पार करती हुई नीचे की मिट्टी तक गई और प्रत्युत्तर में एक ऊर्जा मिट्टी से उठकर तलवों तक आई।

दो और तीन मंज़िला आलिशान तथा भव्य बंगलों की यह कॉलोनी सुमित्रा के खेत पर बनी है। चारों तरफ अपनी भव्यता के लिए प्रसिद्ध यह कॉलोनी, क्या कभी कोई जान पाएगा कि सुमित्रा का इसके साथ कितना गहरा नाता है। यहाँ आते ही सुमित्रा के फेफड़ों में ताज़गी भर जाती है। हवा भी पहचानी हुई अपनी सी लगती है।

इसी मिट्टी में जन्मी सुमित्रा अपने माता-पिता की इकलौती बेटी थी। माँ की गोद के बाद इसी मिट्टी ने उसे पाला। अन्न दिया उसे। बाबा ने उसकी शादी मंगलू से इसीलिए की, कि वह घरजमाई बनकर उनके खेत पर ही रहेगा और खेती की देखभाल भी करेगा। लेकिन बाबा ने मंगलू के कंधों पर पाँच-पाँच बहनों की ज़िम्मेदारी नहीं देखी। सुमित्रा की

गृहस्थी भी यहीं प्रारम्भ हुई। दो बच्चे भी यहीं हुए। बाबा जल्दी ही चल बसे थे। बाबा थे तो खेती की सारी ज़िम्मेदारी उन्होंने ही उठा रखी थी। मंगल तो बस उनका कहा काम कर देता था। उसमे स्वयं की विवेक-बुद्धि नहीं थी। तभी बहनों के ब्याह और बाद के खर्चों में टुकड़ा-टुकड़ा खेत बिकते रहे। कुछ मंगलू के पिता के पुराने कर्ज़े चुकाने में बिक गए।

सामने आम का बगीचा था। सुमित्रा ने आम के बूढ़े पेड़ों को मन ही मन शीश नवाया। इसमें से अधिकांश पेड़ उसके बाबा ने लगाए थे। गनीमत है बिल्डर ने इन्हें काटा नहीं। वहीं बच्चों के खेलने का पार्क बना दिया। इन्हीं पेड़ों के नीचे बचपन में वह खेलती थी, झूला झूलती थी। पूरे अधिकार के साथ। आज इनकी एक अमिया पर भी उसका हक नहीं। गाय, बैल और अन्य जनावर सानी-पानी करते, दोपहर भर विश्राम करते। कटी फसल सहेजी जाती। बाबा पत्थर का कच्चा चूल्हा बनाते और अनाज की ताज़ी बालियाँ भूनकर खिलाते। आज भी वह सारा समृद्ध दृश्य साकार होकर आँखों के सामने दिखाई देता है।

मोती और भूरा बैल, राजुड़ी और श्यामा गायें, उनके कुलांचे भरते बछिया-बछड़े। कल्लो भैस और उसका मुस्टंडा पाड़ा। भूरी बिल्ली और कालू कुत्ता....कहाँ चले गए सब?

सुमित्रा की छाती में कुछ अटक गया। आँखों से आँसू बहने लगे। पैर वहीं जम गए। आख़िरी बहन की लालची ससुराल और बिल्डर की महत्वाकांक्षा की भेंट चढ़ गया खेत का यह हिस्सा भी।अपनी ज़मीन और ढोरों की स्नेहमयी और आत्मसम्मानी मालकिन आज कामवाली बाई 'सुमित्रा बाई' बनकर रह गई है।

जिस ज़मीन ने हमेशा से अन्न की लहलहाती सुनहरी फसलें ही उपजायी थीं, जिसने हमेशा बीज को पोषण देकर अंकुरित किया और जड़ को थामे रखकर फसल को झूमने दिया। उसी ज़मीन की छाती में लोहे के सरिये उतारकर पत्थर भर दिए गए और मकानों की नीव तले बंजर कर दिया गया। कितना रोई थी सुमित्रा उस दिन जब पहले

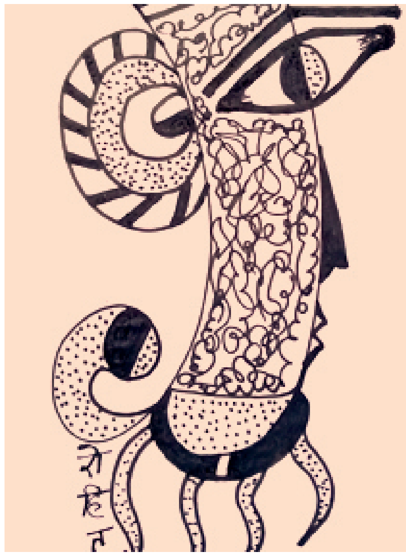

मकान की नींव खुदकर लोहे के बड़े-बड़े सरिये उतरते देखे थे उसने ज़मीन में। तब से अब तक लगता है उसकी खुद की छाती में भी लोहे के सरिये उतर गए हैं और हर समय चुभते रहते हैं।

जहाँ सुमित्रा कोठियाँ भर-भरकर अनाज सहेजती थी वहीं उसने तगारी भर-भर ईंट-गारा-रेत ढोईं। अनाज के सुनहले दानों की नरमी में डूबी रहने वाली उँगलियाँ सीमेंट की ठंडी कठोरता में उलझकर रुखी और भद्दी हो गईं। जब मकान सारे बन गए तब मंगलू मज़दूर से 'गार्ड' बन गया और वह बन गई 'सुमित्रा बाई'।

अपनी ज़मीन की रक्षा तो कर नहीं सका मंगलू पर इस कॉलोनी के गार्ड की ड्यूटी पूरी इमानदारी और मेहनत से निभाता है। मंगलू के प्रति एक गुस्सा, चिढ़, संताप, दया का मिला-जुला भाव तैर गया मन में।

अपनी सोच में डूबी वह कब अठ्ठाइस नम्बर बंगले पर पहुँच गई, उसे पता ही नहीं चला। नज़र भर बंगले को देखकर वह अंदर चली आई। जबसे यह घर बना है तबसे उसने किसी को भी यहाँ काम नहीं करने दिया है। शुरू से वही करती आई है, बिन नागा। आज भी मालकिन उसे देखते ही आश्चर्य में आ गई।

'बुखार में भी चली आई इतनी दूर? छुट्टी कर लेती।'

लेकिन एक फीकी मुस्कुराहट के साथ सुमित्रा झाड़ू उठाकर घर झाड़ने लगी। जहाँ इस घर की बैठक है वहाँ सुमित्रा का आँगन होता था। सामने बेर, अमरुद के पेड़ लगे थे। कालू कुत्ता और भूरी बिल्ली सुबह अलसाए से वहीं पसरे रहते। इस कोने में चमेली की झाड़ी थी, वहाँ मोगरा, यहाँ बीच में तुलसी जी का चौरा....और झाड़ू लगाती सुमित्रा का शीश आज भी झुक जाता उस जगह पर। जहाँ इस घर का नीचे वाला सोने का कमरा है वहाँ सुमित्रा की रसोई थी।माँ के ही नहीं दादी के ज़माने से। खानेवाले कमरे में सुमित्रा बिछौना करती थी।

सुमित्रा का घर। सुमित्रा का अपना घर। यहाँ बाबा बचपन में झूला झुलाते थे। माई

यहाँ चूल्हे पर खाना बनाती थी। इधर की दिवार पर भगवान् जी का केलेंडर लगा था।

यहाँ लकड़ी के फट्टे पर माँ के चमचम करते बर्तन जमे रहते। इधर लगे आईने में माई की नज़र बचाकर वह चुपके-चुपके खुद को देखा करती थी।

उसके घर पर ही बना है यह भव्य बंगला। घर भले ही न रहा लेकिन यह जगह आज भी उसकी आत्मा को अपनी तरफ खींचती है। तभी वह रोज़ दौड़ी चली आती है। बुखार में भी।अपने घर की आत्मा को मिलने, बुहारने और अपने पाप का प्रायश्चित्त करने।

क्षमा मांगने उसकी रक्षा न कर पाने की। उसे टूटने से बचा न पाने की। उसे मलबा बनकर कचरे के ढेर पर फेंकने से बचा न पाने की। आँखों के सामने टुकड़ा-टुकड़ा टूटते, बिखरते, देखती रह गई। और तगारी में उसे बटोरकर खुद ही.... ऐसा लगा था उस दिन जैसे किसी अपने के पार्थिव शरीर का अंतिम संस्कार करके अस्थि विसर्जन कर दिया हो।

आज काम करते हुए जीती रहती है, दोहराती रहती है पुरानी यादों को।मालकिन की आँख बचाकर सर टेक लेती है उस भूमि पर। भले ही बीच में महंगी टाइल्स आ गईं तो क्या हुआ, प्रणाम माटी तक तो पहुँच ही जाएगा। और पोछा लगाते हुए सुमित्रा की आँख से दो आँसू टपककर पोछे के पानी में घुल गए। यह शहर मुआ मेरा गाँव, खेत, ढोर-डंगर, घर सब लील गया.....

000

प्रमोशन

सतीश सिंह

पचीस अप्रैल की सुबह होते ही दिल की धड़कन तेज़ हो गई। आज ही मुख्य प्रबंधक (सीएम) से सहायक महाप्रबंधक (एजीएम) के प्रमोशन का रिज़ल्ट आने वाला था। किसी से मन की बात साझा करने की हिम्मत नहीं हो रही थी, लेकिन मन में उथल-पुथल मची थी। वैसे तो मार्च महीने से ही मन अशांत था। पत्नी भी मेरे प्रमोशन को लेकर चिंतित थी। रोज़ वह अपनी दो उँगलियों में से एक उँगली पकड़ने के लिये कहती थी। कभी प्रमोशन होने वाली उँगली मैं पकड़ लेता था तो कभी नहीं होने वाली। पत्नी को ज्योतिष पर बहुत भरोसा था। थोड़ा -बहुत ज्योतिष का ज्ञान भी है उसे। हाथ की रेखाओं को पढ़ना जानती है वह। मार्च महीने से ही तकरीबन हर रोज़ किसी न किसी ज्योतिषी को यू-टयूब पर मेष राशि का भविष्य अप्रैल महीने में क्या होगा के बारे में सुनती थी। लगभग सभी ज्योतिषी मेष राशि वाले नौकरीशुदा व्यक्ति का अप्रैल महीने में प्रमोशन का योग बता रहे थे। हालाँकि, मेरा ज्योतिष पर विश्वास नहीं था, लेकिन कभी-कभी मेरा मन भी प्रमोशन हो जाएगा को लेकर आश्वस्त हो जाता था।

मैं एक राष्ट्रीयकृत बैंक के मुंबई स्थित मुख्यालय में पदस्थापित था। नरीमन पॉइंट में मेरा ऑफ़िस था। यहाँ, काम का स्वरूप अलग था। बैंक शाखा की तरह काम नहीं होता था। मानव संसाधन और प्रशासन का काम देखता था मैं। एक गृह पत्रिका का संपादक भी था। ऐसा नहीं है कि इस बार मैंने प्रमोशन के लिये कोशिश नहीं की थी। अपना काम हमेशा मैं पूरी ईमानदारी से करता था, लेकिन मेरे कामों को प्रतिशत में मापना या पॉइंटस देना संभव नहीं था। आमतौर पर जहाँ, सिस्टम द्वारा कामों को मापा नहीं जा सकता, वहाँ, बॉस की मनमानी चलती है। जो बॉस का खास होता है, वार्षिक मूल्यांकन रिपोर्ट में उसे ही शत प्रतिशत नंबर मिलते हैं। लगातार ३ सालों तक 100 नंबर मिलने पर ही प्रमोशन के योग बन पाते हैं।

100 नंबर पाना इतना आसान नहीं होता है। यह अमूमन चमचागिरी से संभव हो पाता है, लेकिन मैं स्वभाव से चमचागिरी करने में पारंगत नहीं था। इसी वजह से ऑफ़िस में योगदान देने के कुछ दिनों के बाद, बॉस से साथ तनातनी शुरू हो गई, जिसका ख़ामियाज़ा मुझे जल्द ही भुगतना पड़ा। साल 2017 में मुझे 100 में 90 नंबर आए। पत्नी को जब यह मालूम हुआ तो वह बहुत नाराज़ हुई। उसने कहा तुम अब अपने को बदलो, नहीं तो अपने बैच में सबसे पीछे रह जाओगे। तुम्हारे बैच वाले कब के एजीएम बन गए। कुछ तो उपमहाप्रबंधक (डीजीएम) भी बन गए हैं और तुम अभी भी मुख्य प्रबंधक बनकर घूम रहे हो। क्या सबसे तेज़ तुम्हीं हो? क्या तुम्हारे बैच वाले बेवकूफ हैं? बेटियाँ छोटी थीं, लेकिन उलाहना देने में पीछे नहीं रहती थीं। छोटी बेटी छठी क्लास की छात्रा थी, लेकिन जैसे ही उसे मालूम हुआ कि इस साल भी डैड को 100 नंबर नहीं मिले तो उसने तुरंत कहा, डैड आप एजीएम कब बनोगे? मेरी सहेली के डैड तो डीजीएम भी बन गए हैं। आप ठीक से काम क्यों नहीं करते हो? बैंक की सोसाइटी में रहने के कारण उसे किसके डैड किस पद पर हैं अच्छी तरह से मालूम है।

अंतत: सभी की ज़िद के सामने मैंने हार मान ली। मैंने पत्नी को वचन दिया कि मैं अपने को बदलने की कोशिश करूँगा। बॉस के साथ मैंने अपने संबंध को बेहतर करने की कोशिश करने लगा। ऑफ़िस का काम तो पहले से ही ईमानदारी से कर रहा था। अब बॉस के निजी कामों को

सतीश सिंह
ईमेल-satish5249@gmail.com
मोबाइल - 8294586892

भी करने लगा। बॉस के घर के बाथरूम की मरम्मत से लेकर उनके घर सब्ज़ी-भाजी पहुँचाने लगा। दिवाली-दशहरा में मिठाइयाँ भी घर पहुँचाई। बॉस के वर्षों से फँसे कई निजी काम करवाए। दो सप्ताह दिल्ली रहकर बॉस के फ्लैटों की रजिस्ट्री करवाई। इतना ही नहीं, बॉस की पत्नी और उनके बच्चों का काम भी गाहे-बगाहे किया। इसका फ़ायदा भी मुझे मिला, लगातार दो साल 100 नंबर मिले। फिर भी, तीन साल 100 नंबर नहीं मिलने के कारण प्रमोशन को लेकर मन में आशंका के बादल उमड़-घुमड़ रहे थे। हालाँकि, इंटरव्यू में बॉस द्वारा अनुशंसा करने पर प्रमोशन हो सकता था, लेकिन बॉस की नियत पर मुझे शक था। फिर भी, मन के किसी कोने में उम्मीद की रोशनी जगमगा रही थी।

कोरोना महामारी के कारण हर दूसरे दिन ऑफ़िस जाना पड़ रहा था, आज मेरा ऑफ़िस जाने का टर्न था। सुबह छह बजे उठा। नित्य क्रम से फारिग होने के बाद रोज़ की तरह कार की सफाई करने के लिये फ़्लैट से नीचे आया। रातभर बारिश होने के कारण मौसम खुशनुमा हो गया था। ठंडी हवा चल रही थी। बादलों से आसमान अभी भी ढका हुआ था। वैसे तो मुंबई में बारिश होने का एक निश्चित समय होता है, लेकिन इस साल अप्रैल में ही बारिश हो रही थी, जबकि आमतौर पर मुंबई में जून महीने में बारिश शुरू होती है और सितंबर महीने में ख़त्म हो जाती है। लगता है कि इस साल कोरोना वायरस ने मौसम को भी संक्रमित कर दिया है।

मेरी सोसाइटी में बहुत सारे पेड़ थे। बाउंड्री वाल के किनारे-किनारे आम, जामुन, कटहल, नारियल, इमली, अशोक आदि के पेड़ लगे थे। सोसाइटी के बीच में भी कहीं-कहीं नारियल के पेड़ लगे थे। इसलिये, थोड़ी सी हवा चलने पर ठंडक का अहसास होता था। रातभर बारिश होने के कारण सोसाइटी के निचले भागों में पार्क किये गए चार-पाँच कारों के आधे टायर पानी में डूब गए थे। नारियल के कई पत्ते ज़मीन पर गिरे हुए थे। शुक्र था कि ये पत्ते मेरी कार पर नहीं गिरे थे। सोसाइटी में अंडरग्राउंड पार्किंग की सुविधा नहीं होने की वजह से सभी लोग खुले में ही अपनी गाड़ियाँ पार्क करते थे। बारिश की वजह से कार भीगी हुई थी। सूखे कपड़े से पोंछने से कोई फ़ायदा नहीं था, क्योंकि अभी भी बारिश होने के आसार बने हुए थे। इसलिये, मैंने कार की सफाई का इरादा छोड़ दिया, वैसे इस निर्णय के पीछे का बड़ा कारण टेंशन था। चिंता में नाश्ता भी नहीं किया। समय से पहले साढ़े सात बजे ऑफ़िस के लिये निकल गया। ऑफ़िस का समय 11 बजे से था, लेकिन मैं आठ बजे ही ऑफ़िस पहुँच गया। बैंक के गार्ड भी हैरान थे। एक गार्ड ने पूछा भी, क्या सर कोई मीटिंग है? कोरोना महामारी की वजह से आमने-सामने बैठकर मीटिंग नहीं हो रहीं थीं। बहुत ज़रुरी होने पर ही सोशल डिस्टेंस के साथ मीटिंग होती थी।

रिज़ल्ट ऑफिस टाइम के बाद ही आना था, फिर भी, बार-बार मैं बैंक की बेवसाइट खोल रहा था। इस आशा में कि रिज़ल्ट आ गया होगा। किसी भी काम में मन नहीं लग रहा था। बॉस जो भी काम करने के लिये बोल रहे थे। मैं उसे कल पर टाल रहा था। समय काटे नहीं कट रहा था। बारह बजे के आसपास एजीएम से डीजीएम के प्रमोशन का रिज़ल्ट आ गया। मेरे दिल की धड़कन और भी तेज़ हो गई, क्योंकि डीजीएम के रिज़ल्ट के बाद ही एजीएम के प्रमोशन का रिज़ल्ट आना था। बड़ी मुश्किल से लंच किया। निवाला गले के नीचे नहीं जा रहा था। जैसे-तैसे दो रोटियाँ खाईं। ऑफ़िस में रहते हुए रिजल्ट आया और मैं फेल हो गया तो मैं शायद गाड़ी ड्राइव करके घर तक नहीं जा पाऊँगा, इसलिये, लंच के बाद मैं घर के लिये निकल गया।

सहकर्मी मुकेश ने कहा-' क्यों घर जा रहे हो?'

मैंने कहा, 'मुझे घबराहट हो रही है।'

मुकेश ने मेरा मज़ाक उड़ाते हुए कहा, मुझे देखो, मैं बिलकुल शांत हूँ, जबकि तुम्हारी तरह मेरा भी एजीएम के प्रमोशन का रिज़ल्ट आना है। मैं कुछ नहीं बोला, क्योंकि बोलने से कोई फ़ायदा होने वाला नहीं था। मुझे मालूम था कि वह एजीएम बन जाएगा, क्योंकि वह बड़ा वाला चमचा था। वह हर सप्ताह बॉस के घर सपरिवार जाता है। दोनों एक ही राज्य के रहने वाले हैं। इतना ही नहीं, उसे तीन सालों से लगातार 100 नंबर मिल रहे हैं।

घर आने के बाद आँखें मींच कर सोने की कोशिश करने लगा, लेकिन तनाव की वजह से नींद नहीं आ रही थी। पिछले साल भी प्रमोशन नहीं हुआ था। प्रमोशन पाने के लिये दो सालों से नौकर की तरह बॉस के लिये काम कर रहा था, लेकिन मन में बार-बार यह सवाल भी उठ रहा था कि क्या प्रमोशन के लिये यह सब करना जरुरी है? क्या मैं बैंक में भर्ती इन कामों को करने के लिये हुआ हूँ? क्या ईमानदारी से अपना काम करने वाले का बैंक में प्रमोशन मुमकिन नहीं है? यह सब सोचते-सोचते कब आँखें लग गईं पता ही नहीं चला। सायंकाल लगभग पाँच बजे मेरी नींद खुली। आँखें खुलने की बाद फिर से मेरी बैचनी बढ़ने लगी। जब लगा कि अकेले तनाव नहीं झेल पाऊँगा तो पत्नी से बातें करने की कोशिश करने लगा। मेरा चेहरा देखकर पत्नी समझ गई कि मैं बहुत ज़्यादा टेंशन में हूँ। मेरा मूड ठीक करने के लिये वह चाय बनाने के लिये किचन चली गई। मैं भी उठकर ड्राइंग रूम चला आया। खुद को व्यस्त रखने के लिये चाय पीते हुए टीवी पर समाचार देखने लगा, लेकिन मेरा ध्यान हर मिनट रिज़ल्ट की तरफ चला जा रहा था। बार-बार मोबाइल पर मैं बैंक के सर्वर को एक्सेस कर रिज़ल्ट आया है या नहीं देख रहा था। अंतत, लगभग 6 बजे बैचमेट्स वाले व्हाट्सएप ग्रूप में रिज़ल्ट की पीडीएॅफ़ फाइल आ गई, लेकिन जिसका डर था, वही हुआ। कई बार रिज़ल्ट देखा, लेकिन मैं सफल उम्मीदवारों की सूची में अपना नाम नहीं ढूँढ़ पाया, लेकिन मुकेश एजीएम बन गया था। थोड़ी देर के लिये आँखों के सामने अँधेरा छा गया। दिमाग सुन्न सा हो गया। पत्नी भी बुत बन गई। उसके चेहरे पर उदासी साफ-साफ दृष्टिगोचर हो रही थी। दो बार फेल होने के बाद मुझे बॉस का खेल समझ में आया। अफ़सोस केवल इस बात का है कि इस चक्कर में मैंने अपने स्वाभिमान को मार दिया।

000

व्यस्त चौराहे

मीना पाठक

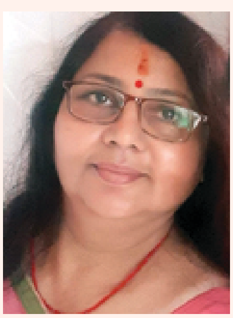

मीना पाठक
437- दामोदर नगर, बर्रा, कानपुर-208027, उत्तर प्रदेश
मोबाइल-9838944718
ईमेल-meenadhardwivedi1967@gmail.com

जब से आरोही ने नया ऑफ़िस ज्वाइन किया था, शहर के इस व्यस्त चौराहे से गुज़रते हुए रोज़ ही उस अम्मा को देख रही थी। मझोला कद, गोरी-चिट्टी रंगत, गंदे-चिकट बाल, बदन पर मैले-कुचैले कपड़े, दुबली-पतली, चेहरे पर उम्र की अनगिनत लकीरें लिए अम्मा चुपचाप कुछ न कुछ करती रहती। वह कभी अपना चबूतरा साफ़ करती, कभी चूल्हे में आग जलाती तो कभी अपने सेवार से उलझे बालों को सुलझाती हुई दिख जाती। आरोही जब भी उसे देखती उसके भीतर सैकड़ों सवालों के काँटे उग आते, 'कौन है यह, यूँ बीच चौराहे पर खुले में क्यूँ अपना डेरा जमाए बैठी है?'

छत के नाम पर ऊपर से गुज़रता हाइवे और दीवारों के नाम पर वो चौड़ा सा चौकोर पिलर; जो अपने सिर पर हाइवे को उठाए खड़ा था, वही उसका भी सहारा है। अम्मा ने कुछ बोरों में न जाने क्या-क्या भर कर उसी से टिका रखा है। वहीं ईंट जोड़ कर चूल्हा बना है और पास ही कुछ सूखी लकड़ियाँ रखी हैं। यही उसकी घर-गृहस्थी है।

उसे देख कर आरोही के मन में जाने कैसे-कैसे ख़याल आते! वह सोचती कि उम्र के जिस पड़ाव पर अम्मा हैं, उसके बेटे-बेटियों के बालों में भी सफेदी झाँक रही होगी। उनके बच्चे भी बड़े हो रहे होगें। इसका पति जीवित है भी या नहीं। क्या उसे अम्मा की याद नहीं आती या अम्मा ही सब भूल गई है। इतने शोर में यहाँ कैसे रहती है अम्मा ? इन्हीं सब प्रश्नों के साथ आरोही ऑफ़िस पहुँच कर अपने काम में जुट जाती। लौटते समय फिर से चौराहे पर उसकी आँखें अम्मा को ऐसे तलाशतीं जैसे मेले की भीड़ में कोई अपने को तलाशता है।

एक दिन किसी कारणवश आरोही को ऑफ़िस से जल्दी लौटना पड़ा। ऑटो से उतर कर चौराहे पर पहुँची तो आदतन उसकी आँखें अम्मा के चबूतरे की ओर उठ गईं। उसने देखा कि अम्मा कोई कपड़ा सिल रही थी। अचानक मन में ख़याल आया, क्यों न अपना लंच वह अम्मा

को दे दे..! अच्छा बहाना मिल गया था करीब जा कर उसे देखने का। उससे बात करने का..! उस दिन पहली बार आरोही के कदम खुद-ब-खुद अम्मा की ओर बढ़ गए। उसने देखा, अम्मा के सामने ही एक प्लेट रखी है।

"अम्मा..! प्लेट इधर करना ज़रा।" टिफिन खोलते हुए आरोही बोली।

अम्मा अपने काम में लगी रही। जैसे उसने सुना ही ना हो।

"प्लेट इधर कर दो अम्मा।" आरोही इस बार कुछ ज़ोर से बोली। उसकी तरफ देखे बिना ही अम्मा प्लेट खिसका दी और फिर से सिलाई में लग गई।

"लो, अम्मा !" लंच प्लेट पर रख कर उसके आगे सरकाते हुए आरोही ने कहा; पर अम्मा अपने काम में मग्न थी, कुछ न बोली।

अब तो रोज़ ही आते-जाते आरोही कुछ न कुछ उसके आगे रख देती; लेकिन अम्मा ने आरोही की ओर कभी नहीं देखा, न ही उसके कहने पर चीज़ें अपने हाथ में लीं। जाने कितनी बार जी चाहा आरोही का कि बात करे अम्मा से, पूछे कि वह कहाँ से आई है? यहाँ क्यों रह रही है? उसके घर में कौन-कौन हैं? परन्तु उसके व्यवहार से आरोही की हिम्मत नहीं हुई। घर आ कर आरोही देर तक उसके बारे में ही सोचती रहती।

उस दिन लौटते समय आरोही ने देखा कि अम्मा आने-जाने वालों को उँगली दिखा कर कुछ बोल रही है, जैसे यातायात के नियमों को ताक पर रखने के लिए उन सबको डाँट रही हो, जिज्ञासावश आरोही अम्मा की तरफ बढ़ गई, कुछ और लोग भी उसी की तरह उत्सुकतावश रुक कर उसे देख रहे थे। अम्मा को देख कर आरोही ठिठक गई। उसकी आँखों में अंगारे दहक रहे थे। भौंहें कमान-सी तनी थीं। गले की नसें खिंच कर उभर आई थीं। अम्मा ऊँची आवाज़(लगभग चीखते हुए) में कुछ बोल रही थी, पर उसे समझ नहीं आया। वह चुपचाप देखती रही फिर वहीं बैठे एक रिक्शेवाले से पूछ लिया उसने, "क्या हुआ अम्मा को ?"

"कबहू-कबहू बुढ़िया पगलाय जात, थोड़ो दिमाग खिसको है जाको।" चुल्लू भर मसाला वहीं चप्प से थूक कर अँगोछे से दाढ़ी पर छलका थूक पोंछते हुए बोला वह।

सुन कर धक्का-सा लगा आरोही को। वह उसे इस हाल में पहली बार देख रही थी। उसे हमेशा चुपचाप अपना काम करते हुए ही देखा था उसने। वहाँ लोगों के खड़े होने से जाम लगने लगा था। आती-जाती गाड़ियों के हॉर्न तेज़ हो गए। तभी चौराहे पर खड़ा सिपाही सीटी बजाता हुए वहीं आ गया। उसे देखते ही वहाँ खड़े सभी लोग तितर-बितर हो गए। आरोही भी लौट आई।

रिक्शेवाले की बात सुन कर आरोही के दिल में कुछ चुभ-सा गया था। वह सोचने लगी कि कहीं अम्मा के पागलपन के कारण ही उसके अपने तो नहीं छोड़ गए यहाँ और यह सब भूल गई या उसके अपने छोड़ गए, इसलिए पागल हो गई ? उदास मन से आरोही घर लौट आई। घर का काम करते हुए अम्मा का चेहरा आँखों के सामने घूमता रहा। देर रात तक उसी के बारे में सोचती रही।

अगले दिन जाते समय देखा तो वह अपने चबूतरे पर नहीं थी। आरोही की आँखें उसे तलाश ही रहीं थी कि तभी अम्मा बाल्टी में पानी भरे वहीं पास के रेस्टोरेंट की तरफ से आती दिख गई। उसे देख कर आरोही का चेहरा खिल उठा। आज वह ठीक लग रही थी। उसने पेटीकोट के ऊपर अँगोछा बेल्ट की तरह बाँध रखा था। शायद पेटीकोट को सँभाले रखने के लिए। मन में तुरंत विचार कौंध गया कि अम्मा अगर पागल होतीं तो उन्हें अपने कपड़ों की सुध न होती। वह आग जला कर खाना पकाती है, अपना चबूतरा साफ़ करती है, इधर-उधर से लकड़ियाँ बीन कर लाती है। फटा कपड़ा सिल कर पहनती है। बालों में कंघी से जूँ निकालती है। वह पागल नहीं हो सकती लेकिन कल क्या हो गया था उसे ? सोचते हुए ऑफ़िस पहुँच कर काम में लग गई। दिन पर दिन अम्मा के प्रति उसकी जिज्ञासा बढ़ती जा रही थी। शाम को लौटी तो देखा कि अम्मा से दो महिलाएँ खड़ी कुछ बातें कर रहीं थी। उन्हें बतियाते देख आरोही स्वयं को रोक ना सकी। उन्हीं के बहाने वह भी अम्मा से बात कर लेगी, इसी लालसा से उधर बढ़ गयी। थोड़ी देर चुपचाप खड़ी उसकी बातें सुनती रही। अम्मा क्या कह रही थी, वह आज भी समझ नहीं पा रही थी।

"क्या हुआ ?" मायूस हो कर आरोही ने उन महिलाओं से ही पूछ लिया।

"पुलिस वालों ने बहुत मारा है।" उनमें से एक हमदर्दी जताते हुए बोली।

उन दोनों को आरोही से बात करते देख अम्मा भी उसकी तरफ देखने लगी। आज पहली बार अम्मा की आँखें उसकी तरफ उठी थीं। उन नीली आँखों से पीड़ा का सागर छलक रहा था। शायद इसी सागर की लहरों ने उसके चेहरे पर असंख्य लकीरें खींच दी थीं। उसने सिपाहियों की तरफ संकेत कर कुछ कहा और अपना पेटीकोट उठा कर दिखाने लगी। उसकी कमर के नीचे डंडे से मारने के कई निशान पड़े थे। वह कपड़ा नीचे कर घूम कर फिर से कुछ कहने लगी। पर उसका कहा कहाँ कुछ समझ पा रही थी आरोही। वो महिलाएँ भी अनुमान ही लगा रहीं थी। क्योंकि चौराहे पर खड़े पुलिसकर्मियों की तरफ उँगली उठा कर वह बार-बार अपनी चोट दिखा रही थी। थोड़ी देर वहीं खड़ी रही आरोही। मन अम्मा के लिए दुखी था पर उन सिपाहियों के लिए क्रोध उमड़ रहा था।

आरोही ने उन महिलाओं से ही प्रश्न कर दिया, "क्यों मारा उन लोगों ने ?"

दोनों ने कंधे उचका दिए। उससे रहा ना गया तो वह उनकी तरफ बढ़ी। यातायात सुचारू रूप से चल रहा था इस लिए दोनों खड़े बतिया रहे थे। आरोही दनदनाते पहुँच गई।

"अम्मा को इतनी बेरहमी से क्यों मारा आप लोगों ने ?" एकाएक उसकी आवाज़ सुन कर दोनों सिपाही चौंक पड़े।

"क्या हुआ, किसकी बात कर रहीं आप?" उनमें से एक सिपाही बोल पड़ा।

"वो जो सामने अम्मा रहती है, उसे क्यों मारा आप लोगों ने ?" बोली आरोही।

"अरे ! आप भी किसकी बात कर रहीं है! वह पागल है। आज बीच सड़क पर बैठ गई थी। जाम लग गया। कुछ लोगों ने हटाने का प्रयास किया तो उनके ऊपर झपट पड़ी, इस

लिए उसे..!"

"तो आप एक महिला पर हाथ उठाएँगे?" उनकी बात बीच में ही काट कर बोल पड़ी आरोही।

"इतना सोचने का समय नहीं था मैडम! जाइए, हमें अपना काम करने दीजिये।" इस बार रूड हो कर बोला वह। तभी दूसरा सिपाही चौराहे की ओर बढ़ गया। वहाँ जाम लगने लगा था।

"यह क्या जवाब हुआ आपका?" गुस्से से बोली आरोही।

"देखिये मैडम, आपको अगर उसकी बहुत चिंता है तो उसे अपने घर ले जाइए, हम यहाँ यातायात सँभालने के लिए खड़े हैं, समाज सेवा के लिए नहीं।" कह कर वह भी चौराहे की तरफ बढ़ गया।

आरोही अपना सा मुँह लिए घर आ गई। घर का काम ख़त्म कर के रात में लेटी तो अम्मा की चोट आँखों के सामने घूम गई। मन ही मन सोच रही थी कि क्या कर सकती है वह अम्मा के लिए..? सिपाहियों ने जो व्यवहार उसके साथ किया था, वह घर में बता भी नहीं सकती थी। बताती तो उल्टे डाँट पड़ती कि 'समाज सेवा का भूत चढ़ा है तो यह सब तो भुगतना ही पड़ेगा...भुगतो..!'

तभी अचानक कुछ ख़याल आया। आरोही उठी, आलमारी खोल कर अपना गाउन निकाल लाई। उसके साथ नहाने और कपड़े धोने के लिए साबुन की बट्टी और चोट पर लगाने का ट्यूब जो आधा से भी कम बचा था और कुछ बिस्किट के पैकेट, ये सब चीजें गाउन में लपेट कर एक थैले में रख लीं। अगले दिन ऑफ़िस जाते समय वह मन ही मन बहुत खुश थी कि अम्मा अब उसे पहचानने लगी है। कल बात भी की थी उसने। अब धीरे-धीरे बात करते हुए उसके बारे में सब जान लेगी वह और उसके घरवालों को ढूँढ़ने का प्रयास भी करेगी। चौराहे पर पहुँची तो अम्मा बाँस-सी तनी अपने दोनों हाथ कमर पर रखे खड़ी आने-जाने वालों को देख रही थी। आरोही के पुकारने पर वह घूमी और अभी आरोही कुछ कहती कि एकाएक वह उसके ऊपर झपटी.... आरोही कई कदम पीछे हट गई, डर से चीख पड़ी। दिल नगाड़े-सा बज उठा। गनीमत था कि वह किसी वाहन से नहीं टकराई, तभी वहाँ बैठे रिक्शेवालों ने अम्मा को ज़ोर से डपटा; परन्तु अम्मा पर कोई असर नहीं हुआ। अम्मा उस दिन की तरह फिर से आने-जाने वालों पर उँगली दिखा कर बरसने लगी। तभी उस दिन वाले सिपाही भी दौड़ कर आ गए।

"चोट तो नहीं आई मैडम?" पूछा उन्होंने।

"नहीं, बच गई।" हाँफते हुए बोली आरोही।

आवाज़ दे कर उन्होंने रेस्टोरेंट से पानी मँगा कर दिया। पानी पी कर थोड़ी संयत हुई तो उन लोगों से थैला दिखा कर बोली, "अब इसका क्या करूँ ?"

"आप थैला यहीं रख दीजिये, जब इसका दिमाग सही होगा तो खुद ही ले लेगी। इस समय इसका दिमाग़ ठीक नहीं है।" उनमें से एक ने कहा।

आरोही ने धीरे से थैला उसके बोरे के पास रख दिया और जैसे ही चलने को हुई, वे बोले,"अब आप समझीं कि उस दिन न चाहते हुए भी इसके साथ हमने सख्ती क्यों बरती !"

"क्या कुछ किया नहीं जा सकता अम्मा के लिए ?" उन पुलिसवालों ने आज उसके साथ जो किया था उसके लिए आँखों में कृतज्ञता थी तो अम्मा की मदद करने का निवेदन भी।

"हमने अपने स्तर पर प्रयास किया था एक बार; पर वृद्धाश्रम वालों ने नहीं लिया। यह कह कर कि "इसके पास न तो कोई आई डी प्रूफ है और न ही यह मानसिक रूप से स्वस्थ है। हम ऐसे बुज़ुर्गों को नहीं लेते क्योंकि इससे दूसरे बुज़ुर्गों को परेशानी हो सकती है।" सुन कर मायूस हो गई आरोही। ऑफ़िस के लिए बहुत देर हो गई थी। उन्हें धन्यवाद बोल कर तेज़ क़दमों से आगे बढ़ गई।

उस दिन आरोही ने अपने उन कई मित्रों को फ़ोन किया जो सामाजिक संस्थाओं से जुड़े थे। उनसे पूरी बात बताई और कहा कि अम्मा के लिए कुछ करें वो। एक-दो लोगों से आश्वासन भी मिला पर तीन चार महीने बीतने के बाद भी कुछ नहीं हुआ।

नवम्बर का महीना लग गया था। उसे चिंता हो रही थी कि सर्दियों में अम्मा इस खुले में कैसे रहेगी। आरोही ने फिर से उन मित्रों का फ़ोन खटखटाया। खासकर दिव्या का, जो उसकी कॉलेज फ्रेंड थी। इस उम्मीद में कि शायद कुछ हो सके। फिर से आश्वासन मिला। आरोही जानती थी कि होगा कुछ नहीं पर उससे जो भी हो सकेगा करेगी अम्मा के लिए। अपना मन बना लिया था आरोही ने।

तभी अचानक कुछ दिनों के लिए उसे शहर से बाहर जाना पड़ा। लौट कर आई तो देखा अम्मा वहाँ नहीं थी। कहीं इधर-उधर होगी, यही सोचते हुए दो दिन निकल गए। तीसरे दिन फिर नहीं दिखी अम्मा। शाम को लौटते समय खाली चबूतरा देख कर उससे रहा न गया। वह उधर बढ़ गई। वहाँ खड़े रिक्शेवाले से पूछने पर पता चला कि उसने भी कई दिनों से उसे नहीं देखा था। अब तो मन बेचैन हो उठा। कहाँ जा सकती है अम्मा..! इतने महीनों से उसे देखने की आदत-सी पड़ गई थी। अम्मा से एक अंजाना भावनात्मक रिश्ता भी जुड़ गया था। मन कितना भी काम में लगाती पर बार-बार अम्मा का ख़याल आ जाता। वह अपने बिस्तर पर करवटें बदल रही थी। अम्मा का चेहरा बार-बार आँखों के सामने आ रहा था। मन में एक ही सवाल..कहाँ चली गयी अम्मा..!

धीरे-धीरे महीना बीत गया। आते-जाते उसकी आँखें आम्मा को तलाशतीं। सफाई अभियान वालों ने उसका ताम-झाम भी हटा दिया था। रोज़ का वही रूटीन; पर उसमें अम्मा गायब थी।

दिसंबर की कड़ाके की सर्दी थी। उस दिन एक विवाह के उत्सव में आरोही जैसे ही पहुँची।

"हाय आरोही..!" चौंक कर आवाज़ की दिशा में देखा उसने, दिव्या थी।

"ओ..दिव्या ! कैसी है ?" उसे देख चहक उठी आरोही।

"एकदम मस्त..तू बता..!"

आरोही अभी कुछ कहती कि वह फिर बोल पड़ी, "बाई द वे..तू थी कहाँ? तेरा फ़ोन कितना ट्राई किया, आउट ऑफ़ रीच!!! कहाँ

थी ?"

"ओह्ह! कुछ मत पूछ, कुछ दिनों पहले इलाहाबाद गई थी वहीं एक रेस्टोरेंट में खाने के दौरान छूट गया। जब लौट कर उठाने गई तो गायब था। पूछा सबसे लेकिन नहीं मिला।"

"तो सीसीटीवी फुटेज देखती, तुरंत की बात थी, पता चल जता।"

"कहा था यार! पर जवाब मिला कि वो तो कल बॉस ही दिखा सकते हैं और हमारी वापसी की ट्रेन थी रात की, क्या करती!"

"चल छोड़, मैं तो इस लिए कह रही थी कि मैंने बहुत प्रयास करके सिन्धु जी को मनाया तब जा कर उन्होंने उस बूढ़ी अम्मा को वहाँ से उठवा कर अपने आश्रम में रखा पर अगले ही दिन अम्मा उग्र हो गई। उनका फ़ोन आया कि वे उसे वहाँ नहीं रख सकतीं..। उसके बाद मैंने तुझे कितना फ़ोन किया पर तेरा कुछ पता ही नहीं। फिर मैंने अपनी ज़िम्मेदारी पर उनसे कह सुन कर किसी तरह अम्मा को आश्रम की तरफ से ही सरकारी हॉस्पिटल में भर्ती कराया है।"

"सच्च !" आरोही की आँखों से ख़ुशी छलक पड़ी।

"हाँ रे..झूठ बोलूँगी क्या तुझसे! तू नहीं जानती कि बुढ़िया कितनी खडूस है ! बिना पैसे अपने आश्रम में किसी भी बुज़ुर्ग को ऐंट्री नहीं देती। इतना सरकारी अनुदान मिलता है और बड़े-बड़े लोगों से दान भी फिर भी यूँही किसी बुज़ुर्ग को नहीं रखती वह, जो लोग अपने बुज़ुर्गों को छोड़ने आते हैं उनसे पूरी पड़ताल कर एक बड़ी रकम रखवाने के बाद ही रखती है अपने यहाँ। समाज सेवा का ढोंग भर है, उसके यहाँ जो भी वृद्ध हैं, वे सब घरों से बेदखल किये हुए ऐसे बुज़ुर्ग हैं; जिनको आश्रम में रखने के बदले उनके बेटे उसे रकम देते हैं। यह सब अन्दर की बात है। तुझे बता रही हूँ। अपने तक ही रखना।"

अम्मा अस्पताल में थी। यह सुन कर आरोही का रोम-रोम ऐसे खिल उठा जैसे बसंत में धरती। अम्मा को छत मिल गई थी। बाकी किसी बात से उसे कोई सरोकार नहीं था। आरोही उसका हाथ चूम ली।

"थैंक्यू दिव्या ! बता नहीं सकती कि मैं कितनी खुश हूँ।" कहते हुए आवाज़ थरथरा रही थी आरोही की।

"वह तो देख ही रही हूँ मैं। चल अब अपना नम्बर दे, अम्मा कहाँ है! उसका पूरा डिटेल तुझे मेसेज कर देती हूँ। जा कर मिल लेना।" दिव्या ने कहा।

अगले दिन शाम को ऑफ़िस से जल्दी निकल कर आरोही हॉस्पिटल पहुँच गई। थोड़ा सा ढूँढ़ने पर अम्मा मिल गई। उसके बेड के पास जा कर खड़ी हो गई वह। अम्मा के सिर के सारे बाल गायब थे। अस्पताल का साफ़-सुथरा गाउन पहने और कंधे तक कम्बल ओढ़े अम्मा लेटी थी। ग्लूकोज चढ़ रहा था। यह सब दिव्या के कारण ही हुआ था। दिव्या वर्षों से नि:स्वार्थ समाज सेवा में लगी थी। बड़ी-बड़ी संस्थाओं में उसकी पैठ थी इसीलिए सबका कच्चा-चिट्ठा जानती थी और तभी वह इन लोगों से उसके जैसों के लिए कुछ काम ले पाती थी। आरोही ने धीरे से अम्मा के सिर पर हाथ रखा, अम्मा ने पलकें उठाईं और सूनी-सूनी आँखों से उसे देखने लगी। तभी जैसे अम्मा की आँखों में ख़ुशी की एक लहर आई और पलकों के कोरों से छलक गई। शायद अम्मा आरोही को पहचान रही थी।

"कैसी हो अम्मा ?" पूछने पर वह कुछ बोलने को हुई कि तभी आरोही ने उसके होंठों पर अपनी उँगली रख दी और सिर हिला कर बोलने के लिए मना किया। अपनी टोपी उसने अम्मा के सिर पर लगा दी। कुछ देर रुक कर वह स्टाफ नर्स के पास गई और अम्मा की तबीयत के बारे में जानकारी ले कर वापस घर आ गई।

अब आरोही रोज़ ही ऑफ़िस के बाद अम्मा के पास चली जाती। धीरे-धीरे अम्मा के भीतर जीवन लौटने लगा। अब वह उग्र भी नहीं होती। जब आरोही को देख कर अम्मा मुस्कुराती तब उसे दुनिया जहान की खुशियाँ हासिल हो जातीं। दिल ही दिल में दिव्या की आभारी रहती आरोही क्योंकि फ़ोन पर तो वह कुछ सुनती नहीं थी।

एक चेक भर कर दिव्या को दिया था उसने। दिव्या ने आश्रम के रजिस्टर पर अम्मा के नाम से जमा करा कर उसे रसीद व्हाट्सएप कर दिया था। वह संतुष्ट थी कि सिन्धु भाटिया अब उसे आश्रम से निकाल नहीं सकती थी। निकालती तो वह वैसे भी नहीं क्योंकि दिव्या ने अपनी ज़िम्मेदारी पर अम्मा को वहाँ रखवाया था लेकिन वह नहीं चाहती थी कि सिन्धु भाटिया अम्मा को आश्रम में बोझ समझ कर रखे। भले ही पैसे लेती हों सिन्धु भाटिया पर वह उन्हें छत दे रहीं है, जिन्हें अपनी ही छत के नीचे से बेदखल कर दिया गया था। वह बहुत खुश थी कि अम्मा को वृद्धाश्रम ही सही, एक घर और परिवार मिल गया था।

अम्मा के स्वस्थ में धीरे-धीरे सुधार हो रहा था। इस बीच वह एक बार भी उग्र नहीं हुई। डॉक्टर ने उसे बताया कि कई बार अकेलापन और निराशा के कारण ऐसा होता है। एक दिन उसने अम्मा को एक पेन और डायरी दी और कहा कि उसे कुछ याद हो और लिख सकती हो तो लिखे कुछ अपने बारे में। तब अम्मा की आँखों से सोता-सा फूट पड़ा। वह अम्मा को दिलासा देने के लिए आगे बढ़ने को हुई कि तभी नर्स ने उसका हाथ पकड़ लिया और इशारा किया कि वह चुपचाप खड़ी रहे। अम्मा हिलक-हिलक कर खूब रोयी। नर्स ने अम्मा का रोना उसके स्वास्थ्य के लिए अच्छा बताया। कहा कि रो लेने से उसके मन में भरा सब कुछ आँसुओं के साथ बह जाएगा फिर अम्मा तरोताज़ा हो जाएगी। वैसे भी वह मन से ही बीमार है देह से नहीं। हुआ भी वही, धीरे-धीरे अम्मा ठीक हो कर आश्रम चली गई।

आरोही के मन को चैन मिला। आज भी समय निकाल कर वह महीने में एक-दो बार अम्मा से मिलने जाती है। उसे देख कर अम्मा की आँखें चमक उठती हैं। पर अब भी कुछ प्रश्न उसके मन में घुमड़ते रहते हैं। आख़िर अम्मा कौन है? क्या उसका कोई घर नहीं? कोई अपना नहीं? अगर हैं, तो कहाँ ? उसकी इस हालत का ज़िम्मेदार कौन है ? पूछने पर अम्मा कुछ बताती क्यों नहीं? आरोही आज भी इन प्रश्नों के उत्तर तलाशते हुए उस व्यस्त चौराहे से गुज़र जाती है।

000

भाषांतर

शो-केस में रखा ताजमहल

बलविंदर सिंह बराड़

अनुवाद: सुभाष नीरव

बलविंदर सिंह बराड़
फ्लैट नंबर -77, पोकेट नंबर- 7, सैक्टर-12, द्वारका, नई दिल्ली-110078
ईमेल-balwinderbrar930@yahoo.in
मोबाइल- 9868427527

सुभाष नीरव
डब्ल्यू ज़ैड-61ए/1ए, पहली मंज़िल, गली नंबर -16, संतोष भवन, वशिष्ट पार्क, सागरपुर, पंखा रोड, नई दिल्ली-110046
मोबाइल- 9810534373
ईमेल- subhashneerav@gmail.com

सर्दी का मौसम।

धुँध भरा दिन।

हड्डियों को चीरती शीत हवा।

सूरज ने भी धुँध की रजाई तान रखी है।

दरख़्तों के पत्ते पीले-भूरे होकर झड़ रहे हैं।

वह अपने ट्रेनिंग सेंटर के शीशों में से बाहर झाँक रहा है। शीशे धुंध के कारण धुँधले हो चुके हैं। गली में से गुज़रने वाले लोग सायों की तरह दिखते हैं। रंग-बिरंगे साये। स्वैटरों, जैकेटों, शॉलों, लोइयों में लिपटे साये। सामने वाली गली में से आने वाले साये उसका ध्यान खींचते हैं। ये साये करीब आते हैं। शीशों के पास आकर दाएँ-बाएँ मुड़ जाते हैं। उनके मुड़ने पर ही पहचान होती है। यह आदमी है, लड़का है या लड़की।

वह कितनी देर से देख रहा है।

एक काले शॉल वाली लड़की स्कूटर पर से गुज़रती है। देखकर उसकी आँखों में चमक आ जाती है। चेहरे पर मुस्कान फैल जाती है। उसको सुकून मिलता है। दिल में एक गरमाहट भरा अहसास जागता है। सर्दियों की गुनगुनी धूप जैसा। बिल्कुल वैसा जब वह पहली बार आई थी। ऐसी एक ठंडी, ठिठुराती शाम में गुनगुनी धूप जैसा अहसास लेकर।

स्कूटर बाहर खड़ा कर, शीशे का दरवाज़ा आहिस्ता-आहिस्ता खोलकर अंदर दाख़िल हुई थी। अंदर आकर इधर-उधर निगाह डालती वह मुस्करा रही थी। काला शॉल, काले बाल, चढ़ते सूरज की लाली जैसा आभा बिखेरता चेहरा। सुंदर-सा गोरा नाक और गालें सर्दी में सुर्ख़ हो चुकी थीं।

चुपके-से वह उसके सामने आ खड़ी हुई। सुदेश ने भी मुस्कराते हुए उसको सामने वाली कुर्सी पर बैठने का हाथ से इशारा किया।

वह बैठ गई। ठंड से सुन्न हो चुके अपने हाथों को मल रही थी वह।

"हाँ जी, बताओ?" सुदेश ने पूछा।

"सर, मैं कंप्यूटर सीखना चाहती हूँ।" वह उसी तरह मुस्कराती हुई बोली।

"किस परपज़ के लिए सीखना चाहते हो... मेरा मतलब, आपको आलरेडी कंप्यूटर के बारे में कोई नॉलेज है?" सुदेश ने जानना चाहा।

"सर, मैं इस मामले में बिल्कुल अनपढ़ हूँ। मैं इंटरनेट, सर्फिंग, ईमेल, चैट वगैरह सीखना चाहती हूँ।"

"अच्छा !... आप बेसिक कोर्स करना चाहते हो।"

"यॅस सर।"

"आपका नाम?" सुदेश ने पूछा।

"नमिता... नमिता मल्होत्रा।"

फीस को लेकर बात हुई। फिर टाइम के बारे में। दोपहर तीन बजे का टाइम तय हो गया। तीन से चार का टाइम बिल्कुल खाली था। फिर वह उसी तरह मुस्कराती हुई चली गई। अगले दिन तीन बजे आने का वायदा करके। वह बाहर धुँध में साये की तरह ग़ायब हो गई।

सुदेश बाहर से ध्यान हटाकर अंदर निगाह दौड़ाता है। सभी कंप्यूटर खाली पड़े हैं। उसका ट्रेनिंग सेंटर कोई ज़्यादा बड़ा नहीं। उसने पाँच-छह कंप्यूटर ही रखे हुए हैं। किसी भी बैच में चार-पाँच से अधिक ट्रेनी नहीं होते। कई बार वह खाली पड़े रहते हैं। कंप्यूटर की ट्रेनिंग देने के साथ-साथ उसको टाइपिंग और प्रिंटिंग का जो काम मिलता है, वह कर लेता है। जिसके चलते उसका गुज़ारा अच्छा चल रहा है।

उसकी नज़र सामने दीवार पर लगे क्लॉक पर अटक जाती है। साढ़े चार होने वाले हैं। वह बेचैन-सा हो जाता है।

अचानक दरवाज़ा खुलता है। दो लड़के अंदर आते हैं। सुदेश उन्हें देखकर पूछता है,"प्रवीन, कैसे... आज पहले दिन ही लेट हो गए?"

"सर, बाहर ठंड बहुत है... घर से निकलने को दिल ही नहीं करता।" लंबा-सा

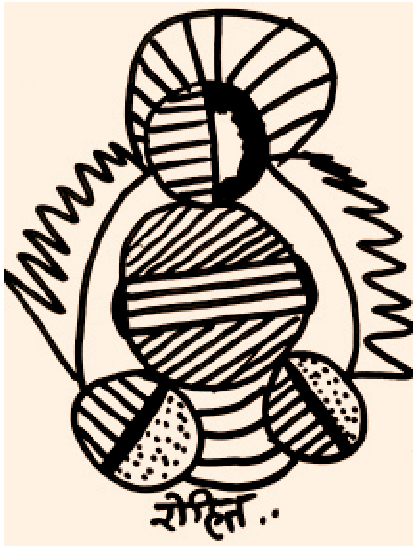

लड़का जवाब देता है।

"चलो बैठो, शुरू करते हैं।" सुदेश मन ही मन उसके जवाब पर मुस्कराता है।

फिर वह मन ही मन सोचने लगता है कि नमिता तो इतनी ठंड में भी सही वक़्त पर आ जाती थी। अगले दिन वह ठीक तीन बजे आ गई थी। उसी तरह मुस्कराती हुई बोली थी, "गुड आफ्टर नून सर!"

"गुड आफ्टर नून।" सुदेश ने भी मुस्कराकर जवाब दिया था।

सुदेश ने उसकी ओर देखा। आज भी उसने कल की तरह जीन्स पहन रखी थी। कंधों पर काला शॉल लपेटा हुआ था। फिर सुदेश ने पूछा, "हाँ नमिता, शुरू किया जाए आज का लैसन?"

"यॅस सर।"

सुदेश कंप्यूटर के बारे में, इसके कंपोनेंट्स के बारे में, फंक्शनिंग के बारे में कुछ देर उसे समझाता रहा। पर नमिता बोर हो रही थी। वह बोली, "सर, आप इसकी हिस्ट्री, ज्योग्राफी रहने दो, प्रैक्टीकल सिखाओ...।"

"ओ.के.... लैट्स स्टार्ट...।" यह कहकर सुदेश ने कंप्यूटर ऑन करने के बारे में, नोट पैड खोलने के बारे में बताया। मगर नमिता से फिर रहा न गया। वह फिर मुस्कराती हुई बोली, "सर, आप मुझे पहले ईमेल करना सिखाओ।"

सुदेश थोड़ा-सा हँसा, "सबसे पहले ईमेल! कमाल है। लैसन जब शुरू करते हैं तो ए-बी-सी से शुरू होता है। ... और तुम सीधे जैड पर पहुँच गई हो... पहले ज़ैड सिखाने को कह रही हो।"

"पर सर आप मुझे एक बात बताओ। यदि किसी को 'ए' लिखने की बजाय पहले 'ज़ैड' लिखना सिखाएँगे तो जितनी मेहनत के साथ वह 'ए' सीखेगा, उतनी ही मेहनत से पहले 'ज़ैड' लिखना भी सीख सकता है।" नमिता ने मचलते हुए दलील दी।

"ऑफ़ कोर्स... सीख सकता है... पर सिस्टेमैटेकली सीखना ज़्यादा फायदेमंद होता है। एक बेस बन जाता है।"

"नहीं सर, कुछ भी हो, आप पहले मुझे ई मेल करना सिखाओ।" नमिता ने अपनों की तरह मचलते हुए कहा।

"अच्छा, पहले यह बताओ। ई मेल किसको करना है? कोई ख़ास है?" सुदेश ने नमिता की रम्ज़ के साथ रम्ज़ मिलाते हुए पूछा।

"जी हाँ, कोई ख़ास ही है।" नमिता नखरे के साथ होंठ दबाकर हँसी को दबाती हुई बोली।

"क्या मैं पूछ सकता हूँ, कौन है?"

"है कोई... जी वह मेरा फियांसे है।" वह उसी तरह नखरे के साथ बोली।

"अच्छा-अच्छा! ये बात है। मैं भी सोच रहा था, लड़की इतनी उतावली क्यों हो रही है, ई मेल सीखने के लिए।" दोनों खिलखिला कर हँस पड़े।

उसने देखा कि नमिता जब हँसती थी तो उसकी आँखें भी हँसती थीं। ऐसा लगता था मानों वह सच्चे दिल से हँसती थी। दिल की गहराइयों में से। उसकी हँसी एक मनमोहक झंकार-सी थी।

"पर वो तेरा फियांसे, तेरा मंगेतर है कहाँ?" सुदेश ने पूछा।

"बंगलौर।"

"क्या करता है वहाँ?" सुदेश का अगला सवाल था।

"वह कंप्यूटर इंजीनियर है।"

"अरे वाह! बहुत खूब... कौन सा इंजीनियर है, सॉफ्टवेयर कि हार्डवेयर?"

"सॉफ्टवेयर का।"

"फिर तो तुम्हारा ई मेल सीखना बहुत

ज़रूरी है। एक कंप्यूटर इंजीनियर की फियांसी को ई मेल करना तो ज़रूर आना चाहिए।"

"ई मेल भी और चैट भी। मैं उसके साथ चैट करना चाहती हूँ।" वह फिर चंचल हो गई।

"क्यों नहीं... आओ सबसे पहले हम तुम्हारा ई मेल आई डी बनाते हैं।"

सुदेश ने नमिता का ई मेल आई डी बनाया। उसको मेल बॉक्स खोलना, ई मेल भेजना, ई मेल पढ़ना बताया। फिर बोला, "लो, अब तुम प्रैक्टिस करो।"

सुदेश अचानक उन लड़कों की ओर देखता है। दोनों उसके चेहरे की तरफ देख रहे हैं। वह हड़बड़ा जाता है। अपनी सीट पर से उठकर उनकी तरफ जाता है, "आओ भई, हम शुरू करें...लैट्स स्टार्ट।"

वह कुछ देर उन्हें समझाता रहता है। इन्स्ट्रक्शन्स देता रहता है। फिर वह अपनी कुर्सी पर आ बैठता है और कहता है, "कोई प्रॉब्लम हो तो पूछ लेना।"

उस दिन उसने नमिता से भी यही पूछा था, "नमिता, कोई प्रॉब्लम तो नहीं?"

वह याद करके मन ही मन हँसने लगा।

नमिता शिकायती लहजे में बोली थी, "प्रॉब्लम तो है सर, मेरे से यह माउस ही कंट्रोल नहीं हो रहा। कभी स्क्रीन से बाहर चला जाता है, कभी क्लिक कहीं और करना चाहती हूँ, और यह होता कहीं और है।"

उसके पास जाकर हँसते हुए वह बोला था, "यह तो बहुत आसान है। तुम यह समझो कि जो यह कंप्यूटर है, मतलब मोनीटर है, यह तुम्हारी होने वाली सास है... और यह माउस तुम्हारी होने वाली सास की चुटिया... और चुटिया से पकड़ कर सास को कैसे कंट्रोल करना है, यह तो लड़कियाँ अब बड़ी अच्छी तरह जानती हैं।"

नमिता ज़ोर-ज़ोर से हँस दी थी। हँस-हँस कर दोहरी होती का सिर कंप्यूटर के की-बोर्ड से जा लगा था। हँसती हुई ने अपने दोनों हाथ मुँह पर रख लिए थे। कुछ पलों के बाद हाथ उठाये तो हँसते-हँसते उसका चेहरा लाल-सुर्ख हो चुका था। आँखों में से पानी छलक आया था। उसने अपने हाथ अपनी बगलों पर इस प्रकार रख लिए थे मानों हँसने से वे दुखने लगी हों।

उसको देखते हुए सुदेश भी हँस रहा था।

नमिता ने बड़ी कठिनाई से अपनी हँसी को रोकते हुए कहा, "सर, मेरी होने वाली सास बहुत अच्छी है। उसके बारे में मैं ऐसा सोच भी नहीं सकती।"

"यह तो तुम अब कह रही हो। शादी के बाद मैं पूछूँगा तुमसे, फिर देखना तुम्हारे विचार कैसे बदलते हैं।" सुदेश बोला।

"सर, आपकी मैरिज हो गई?" नमिता ने पूछा।

"नहीं, अभी नहीं हुई।"

'फिर आपको सास-बहू के रिश्ते के बारे में इतना एक्सपीरियेंस कैसे है?"

"आग का सेंक जानने के लिए ज़रूरी नहीं कि आग में अपना हाथ डालकर हाथ जलाया जाए। ज़रा दूर से ही सेंक का पता लग जाता है। मेरे आस-पास पूरा शहर बसता है शादीशुदा लोगों का। ... भुगतते वे हैं, एक्सपीरियेंस मुझे हो रहा है।"

दोनों खिलखिला कर हँस पड़े।

वह सोचने लगा कि यह लड़की हँसती हुई कितना सुंदर लगती है। मोतियों जैसे दूधिया दाँत। खूबसूरत आँखें। कहानियों में सुना था किसी राजकुमारी के बारे में, हँसती थी तो फूल झरते थे। आज आँखों देख लिया। सचमुच ऐसे हँसती है जैसे दीवाली में फुलझड़ियाँ चलती हैं। अनार चलते हैं।

वे दो दिनों में ही घुलमिल गए। दोस्तों की तरह। मानों बरसों पुरानी जान-पहचान हो। अन्य लड़कियाँ भी आती रही थीं। और आ रही थीं। पर कभी किसी के साथ इस तरह नहीं हुआ था। वह इतना घुला-मिला नहीं था। एक फ़ासला-सा रहता था। प्रोफेशनल फ़ासला। एक सचेत दूरी। पर नमिता दोस्तों जैसी लगती। निरा दोस्ती जैसा निकटता का अहसास।

उसने दूसरे-तीसरे दिन नमिता से पूछा, "नमिता, ई मेल और चैट का क्या हुआ? कोई ई मेल, चैट वगैरह की भी कि नहीं?"

"क्या करना था सर... कुछ भी नहीं। मेरे से एक घंटे में एक वर्ड टाइप होता है। ... बताओ मैं कैसे कर सकती हूँ?" नमिता बोली।

"इसीलिए मैं कह रहा था कि तुम स्टैपवाइज़ सीखो। दूसरा तुम्हें अपनी टाइपिंग स्पीड बढ़ानी पड़ेगी। तुम की-बोर्ड की प्रैक्टिस किया करो। पहले आधा घंटा की-बोर्ड की प्रैक्टिस... फिर आधा घंटा कंप्यूटर... ठीक है?" सुदेश ने सलाह दी।

"ठीक है सर।"

"लैट्स स्टार्ट राइट नाउ।" यह कहते हुए सुदेश ने नमिता को टाइपिंग का पहला पाठ समझाना शुरू किया, "तुम अपनी यह उँगली यहाँ रखो, इसको यहाँ और इसको यहाँ...।" उसने नमिता की उँगलियाँ पकड़कर की-बोर्ड पर टिकाईं। मुलायम पंखुडियों जैसी उँगलियाँ। बायें हाथ की उँगलियों के लंबे-लंबे नाखून देखकर एकदम बोला, "यह क्या?... अच्छा, समझ गया मैं।"

"क्या समझ गए आप?" नमिता ने पूछा।

"कुछ नहीं।"

"कुछ तो है, बताओ न?" नमिता ने जिद की।

"छोड़ो...।"

"नहीं नहीं... बताओ न?'

"मैंने एक कहावत सुनी थी। जहाँ फूल, वहाँ शूल... आज समझ गया।" सुदेश मुस्कराया।

"वह कैसे?... मैं नहीं समझी।" यह कहकर नमिता खिलखिला कर हँस दी। सुदेश ने नमिता के हाथ की ओर इशारा कर कहा, "ये देखो, फूलों जैसे खूबसूरत हाथों के साथ बरछों जैसे कांटे लगा रखे हैं तुमने।"

सुदेश की यह बात सुनकर नमिता फिर ज़ोर-ज़ोर से हँसने लगी।

अगले दिन नमिता के बायें हाथ के नाखून गायब थे। सुदेश ने पूछा, "नमिता, नाखून कहाँ गए?"

"वह मैंने काट दिए।"

‘'क्यों?"

"कल मेरा एक नाखून की-बोर्ड पर काम करते हुए टूट गया था। इसलिए बाकी भी काट दिए।"

"नाखून टूट गया था या... मैंने नाखूनों को बरछे कहा था इसलिए बुरा मान कर काट दिए। आय एम सॉरी।" सुदेश गंभीर होकर बोला।

"इसमें बुरा मानने वाली क्या बात थी? मैं तो उस बात को याद करके बाद में भी हँसती रही। इसमें सॉरी वाली क्या बात है?" नमिता फिर हँस पड़ी।

"मेरी वजह से या मेरे कंप्यूटर के की-बोर्ड के कारण तुम्हें शौक के साथ मेहनत से पाले नाखून काटने पड़े। मुझे यह अच्छा नहीं लगा। इस कारण मुझे सॉरी ही कहना चाहिए।" सुदेश ने विनम्रतापूर्वक कहा।

दरवाज़ा खुलने से उसकी सोच उखड़ जाती है। दो लड़कियाँ और एक लड़का अंदर आते हैं। उसको 'नमस्ते' करते हैं। यह अगला ग्रुप है। पहले वाले दोनों लड़के उठकर जाने लगते हैं।

"कल से टाइम पर आना। लेट नहीं होना।" वह जाते हुए लड़कों को नसीहत देता है।

फिर नए ग्रुप से पूछता है, "हाँ, कोई प्रॉब्लम या कुछ पूछना है तो बताओ। नहीं फिर आगे नया लैसन शुरू करें।"

दूसरी तरफ से कोई स्पष्ट जवाब नहीं मिलता।

"चलो, पहले मैं तुम्हें एक छोटी-सी असाइनमेंट देता हूँ। उसके बाद हम आगे बढ़ेंगे।"

उधर से फुरसत पाकर वह फिर दरवाज़े के करीब आ खड़ा होता है। बाहर धुँध और अधिक सघन हो गई है। अँधेरा छा रहा है। वह मन ही मन मौसम के खुलने की इच्छा करने लगता है। फिर उसको वे दिन याद आते हैं, जब सूरज धुँध का पर्दा हटाकर झाँकता था। सुनहरी धूप गली में, दीवारों पर, मुंडरों पर सोने का लेप फेर देती थी। शीशे में से धूप का एक टुकड़ा उसकी सामने वाली मेज़ पर आकर बैठ जाता। सुनहरे हंस की भाँति। मेज़ पर पड़े कागज़ हिलते तो हंस पंख फड़फड़ाता प्रतीत होता। कुछ देर बाद वह एक कोने की ओर सरकता सरकता उड़ जाता। उसको यह सब कुछ अच्छा-अच्छा

लगता। कितने अच्छे दिन थे। गुनगुने, गरमाहट और खुशबू से भरे हुए। खुशी और उमंग के अहसास से भरे हुए।

उसने मज़ाक -मज़ाक में एक दिन नमिता से पूछा था, "तुम एक कंप्यूटर इंजीनियर के साथ शादी कर रही हो, कोई ख़ास वजह?"

"कोई ख़ास वजह नहीं। यदि लड़का इंजीनियर न होता तो कुछ और होता। ... कुछ न कुछ तो कर ही रहा होता।" नमिता ने जवाब दिया था।

"पर यदि कुछ न कर रहा होता तो...?" सुदेश ने मुस्कराते हुए पूछा था।

"...तो शायद मेरे पेरेंट्स ऐसे लड़के के साथ मेरी इंगेजमेंट ही न करते। मेरे पेरेंट्स तो क्या किसी भी लड़की के पेरेंट्स शायद नहीं करते। वह चाहते हैं, लड़का कुछ न कुछ कमाता हो...भूखा न मरता हो।" नमिता बोली।

"इट मीन्ज़, तुम्हारे पेरेंट्स तुम्हें अच्छी तरह समझ ही नहीं सके। कोई लड़का नमिता के साथ विवाह करके भूखा नहीं मर सकता। ...कभी भी नहीं।"

"वह कैसे?"

"तुम जब हँसती हो तो फूल झरते हैं। तुम्हारा हसबैंड फूलों का बिजनेस कर सकता है। तुम हँसती रहना, वह फूल चुगता रहेगा। फूलों के बुके, हार बना बनाकर वह बेचता रहेगा। ... है न बढ़िया बिजनेस।" सुदेश के कहने की देर थी कि दोनों ठहाके लगाकर हँस पड़े।

नमिता थोड़ा हँसी रोककर शरारत भरे अंदाज़ में बोली, "इसका मतलब है, मैं जो यहाँ हँसती हूँ तो आप भी बाद में फूल चुगकर बुक्के बनाकर, हार बनाकर बेच देते हो।"

"नहीं, मैं फूल चुगता ज़रूर हूँ, पर उन्हें बेचता नहीं। ... सँभाल कर रख लेता हूँ। अपने दिल की यादों के फूलदान में सजाकर।" उसने मुस्कराकर जवाब दिया।

नमिता सुदेश की ओर देखकर नज़रें झुकाती हुई बोली, "अच्छा!...यह बात है।"

नमिता कुछ गंभीर हो गई।

"एक्सक्यूज मी, सर...।" एक लड़की सुदेश को बुला रही है।

सुदेश उसकी ओर मुड़ता है, "हो गया?"

"यॅस सर।" आवाज़ आती है।

वह उनकी असाइनमेंट देखने के बाद कुछ और इन्स्ट्रक्शंस देने लगता है। कंप्यूटर कमांड्ज़ बताने लगता है।

जब शॉर्टकट्स बताकर हटता है तो लड़का बोलता है, "सर, यह तो बहुत आसान है। आपने यह हमें पहले क्यों नहीं बताए।"

"पहले?... हर चीज़ का वक़्त होता है।" यह कहकर वह हल्का-सा मुस्कराता है।

'पहले?' वह अपने मुँह के अंदर ही दोहराता है। यह शब्द उसके ज़हन में गूँजने लगता है। नमिता ने एक दिन उससे सवाल किया था, "आप मुझे पहले क्यों नहीं मिले?"

"वह इसलिए कि तुम मुझे पहले नहीं मिलीं... तुम कंप्यूटर सीखने के लिए मेरे पास पहले नहीं आईं।" सुदेश के जवाब के साथ दोनों का ठहाका गूँज उठा था।

"हाँ, शायद मेरी ही गलती है।" नमिता बोली।

"गलती?...मैं समझा नहीं।"

"आय मीन... मैं ही देरी से आपके पास आई।" नमिता ने पछतावे भरे सुर में कहा।

"देरी से!... मैं अभी भी नहीं समझा।"

"क्योंकि अब मेरी मैरिज तय हो चुकी है। पहले मिलती तो...।"

"अच्छा!... यदि पहले मिलती तो...।" सुदेश ने उतावला होकर पूछा था।

"तो...तो मैं आपको प्रपोज़ कर देती।"

"ओह!... माय बैड लक।" सुदेश कुछ

रुककर फिर मुस्कराता हुआ बोला, ''क्यों मजाक उड़ा रही हो मेरा?''

''नहीं, यह मज़ाक नहीं....आई एम सीरियस।'' वह गर्दन झुकाकर कंप्यूटर में व्यस्त होने के अंदाज़ में बैठी थी।

सुदेश सोच में पड़ गया। कितनी ही बातें उसके ख़यालों में से गुज़र गईं। उसको ख़्याल आया, दो-तीन दिनों से नमिता परेशान-सी लग रही थी। उसने सुदेश को 'सर' कहना भी कई दिनों से छोड़ दिया था। दोनों के बीच अधिक निकटता का अहसास हो रहा था। सुदेश भी उसके आने की प्रतीक्षा करता रहता था। उसका चले जाना उसको अच्छा नहीं लगता था। नमिता को देखकर, उसे याद करते हुए उस पर एक नशा-सा तारी हो जाता था। उसके सामने आते ही सुदेश को हँसी-मज़ाक सूझने लगता था। उसके जाने के बाद किसी अन्य के साथ बात करने को भी दिल नहीं करता था।

सुदेश को बोलने के लिए कुछ भी नहीं सूझ रहा था। कुछ देर चुप रहने के बाद उसने हिम्मत कर के पूछा, ''नमिता... आख़िर मेरे में ऐसी क्या बात है?''

''ख़ास बात यह है कि आप मुझे अच्छे लगते हो। जैसी पर्सनैल्टी के बारे में मैं सोचती थी, आप वैसे ही हो।'' नमिता ने हल्की-सी मुस्कान बिखेरी।

''अच्छा!... और तुम्हारे वो कंप्यूटर इंजीरियर साहब?'' सुदेश ने पूछा।

''वो भी अच्छे हैं। उनमें कोई कमी नहीं। कोई भी लड़की ऐसे लड़के के साथ मैरिज कर के अपने आप को लक्की समझेगी। ... पर...।''

''पर क्या?''

''पर वो, वह नहीं जिसके बारे में मैं ख़यालों में सोचा करती थी।''

''इट मीन्ज़, तुम्हें वह पसन्द नहीं?''

''पसन्द है...बहुत पसन्द है।''

''तुम मुझे कन्फ्यूज़ कर रही हो।''

''मैं तो खुद कन्फ्यूज़्ड हूँ। ... कुछ समझ में नहीं आ रहा। यह मेरे साथ क्या हुआ? आप मुझे इतनी देर से क्यों मिले?...पहले क्यों नहीं?''

''वैसे तो अच्छा ही हुआ न। मैं देरी से मिला तो तुम्हें एक कंप्यूटर इंजीनियर मिल गया। यदि मैं पहले मिल जाता और तुम मुझे प्रपोज़ करती तो शायद तुम्हारी शादी मेरे साथ हो जाती। कंप्यूटर के एक मामूली डिप्लोमा होल्डर के साथ... और कहाँ अब कंप्यूटर इंजीनियर के साथ...।'' सुदेश ठहाका मारकर हँस पड़ा।

''आप अभी भी मज़ाक समझ रहे हैं। मैं सच कह रही हूँ।''

''नहीं, मैं मज़ाक नहीं समझ रहा। सच बात तो यह है कि मुझे इस बात की बहुत खुशी हो रही है कि तुमने मुझे अपने योग्य समझा। उस लड़की ने मुझे अपना जीवन-साथी बनाने के बारे में सोचा जो परियों जैसी है, सपनों जैसी है। मुझे लगता है, कहीं मैं खुशी के मारे मर न जाऊँ या कहीं पागल न हो जाऊँ।'' कहते-कहते सुदेश की आँखों में आँसू आ गए। उसने अपने चेहरे को हाथों से ढंक लिया और रोने लगा।

नमिता ने उसके चेहरे पर से हाथ हटाये।

''आप तो बच्चों की तरह रो रहे हो।'' नमिता उठकर उसके आँसू पोंछने लगी।

''मैं ज़िंदगी में पहली बार इतना खुश हुआ कि मुझे रोना आ गया।'' उसने नमिता का हाथ पकड़ लिया और उसके चेहरे की ओर देखने लगा।

दो आँसू नमिता की आँखों में भी छलक आए थे। फिर कितनी ही देर ख़ामोशी छाई रही। वे चुपचाप अपनी सीटों पर जा बैठे।

उस रात सुदेश को नींद न आई। उसकी आँखों में से नींद पता नहीं किधर उड़ गई थी। वह करवटें बदलता रहा। उसकी आँखों के आगे कभी नमिता का हँसता चेहरा, कभी संजीदा चेहरा घूमता रहा। नमिता उसके दिलो दिमाग में गहरे उतरती जा रही थी। दिल में एक मीठा-सा दर्द जाग रहा था। एक अजीब-से जज़्बे का अहसास अंगड़ाइयाँ ले रहा था।

वह एक ठंडी-सी साँस भरता है। बाहर की ओर टकटकी लगाकर देखने लगता है। फिर उसकी नज़र अंदर की ओर घूमती है। दाईं तरफ खाली पड़े कंप्यूटर पर नज़र अटक जाती है। वह अक्सर इस कंप्यूटर पर ही प्रैक्टिस किया करती थी। उस दिन भी वह इसी कंप्यूटर पर काम कर रही थी। इसी सीट पर बैठी थी, जब सुदेश ने अवसर-सा देखकर बात शुरू की थी, ''नमिता, यदि बुरा न मानों तो एक बात पूछूँ?''

''एक छोड़, दो पूछो।'' नमिता मुस्कराई।

''नमिता, क्या शादी से इन्कार नहीं किया जा सकता?''

''नहीं... मैं शादी से इन्कार नहीं कर सकती।'' उसका जवाब था।

''क्यों?... पेरेंट्स नहीं मानेंगे?''

''नहीं, मुझे यकीन है, मेरे पेरेंट्स मेरी हर बात मानेंगे।''

''फिर प्रॉब्लम क्या है?''

''प्रॉब्लम यह है कि मैं खुद ही इन्कार नहीं करना चाहती।''

''क्यों?''

''क्योंकि मेरे मम्मी-पापा बहुत अच्छे हैं। वे मेरी हर बात मानते हैं। मैं अपने पेरेंट्स की इकलौती बेटी हूँ। वे मुझे बहुत प्यार करते हैं। मेरे मम्मी-पापा ने भी लव-मैरिज की है। उनकी मैरिड लाइफ़ बड़ी सक्सेसफुल रही है। मैंने उन्हें कभी लड़ते-झगड़ते नहीं देखा। वे लव-मैरिज के हक़ में हैं। वे मेरी हर बात मान लेंगे।'' वह संजीदगी के साथ बता रही थी।

''फिर वजह क्या है?''

''वजह यह है कि अब टाइम निकल चुका है। बहुत देर हो चुकी है। उन्होंने मेरी इंगेजमेंट करने से पहले मुझसे पूछा था कि तेरी लाइफ़ में या तेरी नज़र में कोई लड़का है या तू किसी लड़के को चाहती है तो बता दे, नमिता।'' नमिता थोड़ा रुककर बोली, ''मैंने उन्हें साफ़ कह दिया था कि मेरी नज़र में या मेरी लाइफ़ में कोई लड़का नहीं। जो आपको अच्छा लगे, आप अपनी पसन्द का लड़का तलाश लो। मेरी सहमति भी ले लेना। उसके बाद मेरी मर्ज़ी के साथ ही उन्होंने मेरी इंगेजमेंट अमित के साथ की है। ... यदि आप पहले मिल जाते तो शायद...।'' नमिता ने सुदेश के चेहरे पर नज़रें गड़ा दी।

सुदेश बनावटी-सी मुस्कान चेहरे पर लाकर बोला, ''अब भी पेरेंट्स बात नहीं टालेंगे। इंगेजमेंट तोड़ी भी तो जा सकती है।''

"ऑफ़ कोर्स, बट... मैं खुद ही नहीं ऐसा चाहती।"

''क्यों?"

"क्योंकि मेरा भी तो कोई फर्ज़ बनता है अपने पेरेंट्स की फीलिंग्ज़ का रिगार्ड करने का। मुझे उन्होंने कभी शिकायत का मौका नहीं दिया। भगवान् करे हर किसी को मेरे मम्मी-पापा जैसे पेरेंट्स मिलें। ... आपको पता नहीं, अब तो मेरी शादी के कार्ड भी छप चुके हैं, बाँटे जा रहे हैं। मैं उनकी इन्सल्ट नहीं कर सकती। न ही अपनी वजह से किसी के आगे उन्हें शर्मिन्दा होते देख सकती हूँ। उनका दिल नहीं दुखा सकती। यह ज़िंदगी है, कंप्यूटर नहीं कि जो कुछ हम चाहें, अन-डू कर दें या डिलीट कर दें। आम ज़िंदगी में इस तरह नहीं हो सकता।" वह सयानों की तरह बोली।

"तो क्या अपने दिल में से मेरा नाम डिलीट कर सकोगी?" सुदेश ने पूछा।

"नहीं, बिल्कुल नहीं हो सकता।"

"फिर तुम्हें दुख नहीं होगा?"

"नहीं, मुझे इस बात की खुशी होगी कि एट लीस्ट मैं ऐसे व्यक्ति से मिली तो सही, जिसके बारे में मैंने अपने ख़्यालों में सोचा था। पहले तो मैंने यह सोच लिया था कि शायद ऐसा लड़का इस दुनिया में है ही नहीं। जो मेरी सोच के साथ मेल खाता हो। ख़यालों के साथ मिलता-जुलता हो। अब देख भी लिया है। बहुत नज़दीक से मिल भी लिया है। महसूस भी कर लिया है... क्या खुश होने के लिए इतना काफ़ी नहीं? माय ड्रीम ब्वॉय, माय प्रिंस चार्मिंग।" नमिता ने खुश होते हुए सुदेश की गाल पर लाड़ के साथ चुटकी काटी।

"पर यह तो सोचो कि यह मेरे साथ बेइन्साफ़ी हो रही है। मेरा क्या होगा?"

"आप ऐसा क्यों सोचते हैं? क्या हम यह नहीं सोच सकते कि अपना मिलना एक खूबसूरत घटना थी। इस खूबसूरत घटना को एक खूबसूरत याद के तौर पर अपने दिल में हमेशा के लिए बसा सकते हैं।"

"अपना मिलना एक खूबसूरत घटना थी, पर जुदा होना दुखदायक घटना भी तो है।"

"हाँ... है तो सही, पर यदि मिलने वाली

बात को याद करेंगे तो जुदा होने वाली बात दुख नहीं देगी। हमारी ज़िंदगी में कितनी अच्छी घटनाएँ घटती हैं। कितने खूबसूरत हादसे होते हैं। हम कितनी सुंदर-सुंदर चीज़ें देखते हैं। ... क्या वे सदा हमारे पास रहती हैं?... बस, उनकी खूबसूरत याद कभी भी उदास मन को खुशी से भर देती है।" वह फिलॉस्फरों की भाँति बोल रही थी।

"इतनी बढ़िया बातें कहाँ से सीखी हैं? सुंदर-सुंदर रंगों जैसी। खूबसूरत तस्वीरों जैसी।" सुदेश मुस्कराया।

"ये खूबसूरत बातें पहले तो नहीं सूझती थीं मुझको, पर जब से आपसे मिली हूँ, तब से सीख गई हूँ, माय प्रिंस चार्मिंग।"

"बस, बस बहुत हो गया...।" सुदेश ने हाथ से चुप रहने का इशारा करते हुए कहा। नज़रें मिलीं तो दोनों फिर हँस दिए।

हँसी रुकी तो सुदेश एकदम गंभीर हो गया, "नमिता, मज़ाक के साथ तो मज़ाक रहा। पर सीरियसली एक बार और सोच ले। कहीं गलत फ़ैसला कर उम्र भर पछताना न पड़े।"

"मैंने जो फ़ैसला करना था, कर लिया। यह फ़ैसला मैंने सोच-समझकर ही किया है।"

"प्लीज़ नमिता, अपने लिए नहीं तो मेरे लिए ही सही... प्लीज़, मेरे बारे में सोचो। मैं जी नहीं सकूँगा। मैं मर जाऊँगा या पागल हो जाऊँगा। मुझे क्या हो गया है? मैं खुद नहीं जानता। मैं अपने आप में नहीं रहा। मेरा दिल मेरे वश में नहीं। ... प्लीज़ नमिता, आज का दिन और सोच लो। जल्दबाज़ी में फ़ैसला न करो।" वह मिन्नत-सी करता हुआ बोला।

नमिता काम करने का दिखावा करती रही। उसका मन कंप्यूटर में नहीं लग रहा था।

दोनों ख़ामोश रहे।

नमिता जब जाने लगी तो सुदेश ने एक बार फिर कहा, "नमिता, पूरे तेईस-चैबीस घंटे हैं तेरे पास, ज़रा ठंडे दिमाग से सोचना। मैं कल तक प्रतीक्षा करूँगा कि तेरा फैसला बदल जाए।"

वह कुछ न बोली। वह सुदेश के चेहरे की ओर देखती रही। उसके चेहरे को पढ़ने की कोशिश करती रही। फिर हल्का-सा मुस्कराकर चली गई।

उसके मोबाइल की रिंग-टोन बजती है। वह चौंक पड़ता है। यादों की लड़ी टूट जाती है। वह तीन-चार बार 'हैलो-हैलो' करता है। दूसरी ओर से कोई हुंकारा नहीं मिलता। वह नंबर देखता है। कोई अनजाना-सा नंबर है। वह फिर यादों के वेग में बह जाता है।

उस दिन नमिता के जाने के बाद वह कितनी देर बेकरार, बेचैन रहा था। उसका दिल डूब रहा था। और यह रात भी सुदेश के लिए बड़ी भारी गुज़री थी। आँखों में ही गुज़री थी सारी रात। न उसने कुछ खाया, न पिया। न उसको नींद ही आई। वह ख़यालों के घोड़े दौड़ाता रहा। कभी वह सोचता, यदि नमिता ने 'हाँ' कर दी तो उसकी ज़िंदगी कितनी शानदार होगी। वह कितना खुश होगा। किस प्रकार वे दोनों अपनी ज़िंदगी बिताएँगे? कभी वह सोचता, अगर उसने इन्कार कर दिया तो उसका क्या होगा? उसका दिल ज़ोर-ज़ोर से धड़कने लगता। सब कुछ अँधेरा-अँधेरा-सा लगता। वह निराशा के अँधे कुएँ में जा गिरता। इसी आशा और निराशा की उधेड़बुन में उलझा वह अपने सपने घड़ता रहा, ढहाता रहा।

अगले दिन वह सुबह से ही नमिता की प्रतीक्षा करने लगा था। उसी प्रकार सोचों की दलदल में फँसा रहा। बाहर निकलने की जितनी कोशिश करता, उतना ही अंदर धँसता जाता। तीन बज गए। वह तैयार होकर बैठ गया। किसी भी पल नमिता आ सकती थी।

उसने खुश्क हो रहे होंठों पर जीभ फेर कर उन्हें तर करने की कोशिश की। उसको लगा मानों जीभ सूखकर लक्कड़ बन गई हो। उसका दिल ज़ोर से धड़क रहा था। उसको सबसे अधिक डर इस बात का था कि कहीं नमिता इन्कार न कर दे। 'न'सुनने के लिए उसका मन तैयार नहीं हो रहा था। वह तो बस 'हाँ' सुनना चाहता था।

उसने दीवार घड़ी की ओर देखा, तीन बजकर पाँच मिनट होने वाले थे। वह हैरान हुआ कि नमिता तो सही समय पर आ जाती थी। आज पाँच मिनट ऊपर हो गए। फिर सोचा, कहीं क्लॉक गलत टाइम तो नहीं बता रहा। उसने अपनी कलाई पर बंधी घड़ी की ओर देखा। वह भी वही टाइम दिखा रही थी। उसकी नज़र फिर क्लॉक पर जा टिकी। उसको लगा, जैसे सुइयाँ बहुत तेज़ दौड़ रही हों। सवेरे से यह बहुत धीमे-धीमे चल रही थीं। तीन बजने में ही नहीं आ रहे थे। एक-एक पल एक-एक घंटे जैसा लग रहा था। पर अब सुइयाँ बड़ी रफ़्तार के साथ भाग रही थीं। तीन बजकर दस मिनट, फिर पंद्रह मिनट। वह बार-बार बाहर गली की तरफ देखता। नमिता कहीं आती दिखाई न देती। फिर क्लॉक की ओर देखता। साढ़े तीन, पौने चार! उसका दिल बैठता जा रहा था।

क्लॉक ने टन-टन की आवाज़ के साथ चार बजाए। नमिता के जाने का समय हो गया था। पर वह तो आज आई ही नहीं।

'यू चीट... धोखेबाज़, ऐसा क्यों किया मेरे साथ?' वह मेज़ पर कुहनियाँ टिकाकर अपने हाथों में सिर पकड़कर निढाल-सा हो गया। सोचने लगा, 'नमिता आज क्यों नहीं आई?... शायद जानबूझ कर या कोई अन्य वजह?... हो सकता है, बीमार पड़ गई हो या कोई ज़रूरी काम पड़ गया हो। ऐसी बात होती तो वह मुझे फ़ोन कर देती। ... पर मुझे भी फ़ोन करके पता करना चाहिए। लेकिन मेरे पास तो उसका फ़ोन नंबर ही नहीं। कभी ज़रूरत ही नहीं समझी। मुझे हर ट्रेनी से पहले दिन ही एक फार्म भरवाना चाहिए जिसमें उसका नाम, पता, फ़ोन नंबर, क्वालिफिकेशन सब कुछ हो। ... पर अब नमिता का पता कैसे चले? 'जा रे मूर्ख! इतने दिन नमिता के साथ बातें करता रहा। उसका पता, फोन नंबर कुछ भी न पूछा। 'वह अपने आप पर लानतें दे रहा था। 'हाँ, बातों बातों में उसने बताया था कि वह रणजीत नगर रहती हैं... पर इससे अधिक तो कुछ नहीं पता।'

अगले दिन फिर सुदेश नमिता का इंतज़ार करता रहा। मगर नमिता न आई। उससे न रहा गया। उसने ट्रेनिंग सेंटर का शटर बन्द किया और स्कूटर लेकर रणजीत नगर की ओर निकल गया।

उसने रणजीत नगर की एक-एक गली दो-दो, तीन-तीन बार छान मारी। धीमे-धीमे स्कूटर चलाते हुए एक-एक कर घरों के बाहर लगी नेम प्लेटें पढ़ीं। कई गेटों पर या दरवाज़ों पर कोई नेम प्लेट नहीं थी। पूरे रणजीत नगर में उसको दो नेम प्लेट मल्होत्रा नाम की मिलीं। जिनमें से एक एडवोकेट डी.के. मल्होत्रा और दूसरी डॉ. नरेश मल्होत्रा की थी। कई बार सोचने के बाद उसने दोनों को रद्द कर किया। उसका विचार था कि नमिता का फॉदर न डॉक्टर हो सकता है और न ही एडवोकेट। नमिता की बातों से कभी इस तरह महसूस नहीं हुआ था। ... शायद वह किसी सरकारी डिपार्टमेंट में था। जिन घरों पर नेम-प्लेटें नहीं थीं, उनके खुले या अधखुले दरवाज़ों, गेटों में से उसने चलते-चलते अंदर झाँककर देखने की कोशिश की थी। शायद कहीं नमिता की झलक मिल जाए। परंतु बात न बनी। वह रात देर तक रणजीत नगर की गलियों में भटकता रहा।

बाकी रात वह घर के बिस्तर पर पड़ा रोता रहा। ठंडी आहें भरता रहा। अगले दिन सुबह उसने अपना ट्रेनिंग सेंटर न खोला। पर तीन बजने से पहले खोलकर बैठ गया। और फिर नमिता की प्रतीक्षा करता रहा। नमिता न आई। वह चार बजे के बाद फिर शटर बन्द कर रणजीत नगर की गलियों में आवारा-सा घूमता रहा।

दूसरे-तीसरे दिन वह बाज़ार में से स्कूटर पर जा रहा था। एक मोटर साइकिल पर एक लड़का और एक लड़की उसके पास से गुज़रे। उसको भ्रम-सा हुआ कि पीछे बैठी लड़की नमिता ही है। उसने पीछे मुड़कर देखा, वह नमिता ही थी। पर नमिता ने उसको नहीं देखा था। उसने उसी समय स्कूटर मोड़कर उनका पीछा करना चाहा। बाज़ार में रिक्शे, रेहड़ियों और आते-जाते लोगों की भीड़ थी, इसलिए स्कूटर मोड़ने में कुछ समय लग गया। वे तब तक अगला मोड़ मुड़ चुके थे। उसने पीछा किया, मगर उस मोड़ से आगे वे दिखाई न दिए। आगे दो-तीन गलियाँ और मुड़ती थीं। उसे अंदाज़ा लगाना कठिन हो गया कि वे किधर मुड़े हैं। उसने सारी गलियों में बारी-बारी से दूर तक स्कूटर भगाया। लेकिन उनका कुछ पता न चला।

वह एक मोड़ पर रुक गया। वह सोचने लगा, 'यह लड़का कौन हो सकता है? नमिता का भाई तो नहीं हो सकता। वह तो इकलौती औलाद है अपने माँ-बाप की। फिर कौन हो सकता है? उसका मंगेतर? या फिर कोई और?' उसके दिल में जलन पैदा हो रही थी। आरियाँ चल रही थीं। दिल तड़प रहा था।

'कैसे चिपक कर बैठी थी उसके साथ!' वह बड़बड़ाया। उसका साँस घुट रहा था। शरीर निर्जीव-सा, निढाल-सा हो रहा था।

'मेरे साथ ऐसा क्यों?' उसको कानों में से सेक निकलता महसूस हो रहा था। उसे लग रहा था कि वह पागल हो जाएगा। वह कितनी देर वहीं खड़ा रहा। फिर उसने अपने दाँत भींचे और ज़ोर का मुक्का स्कूटर के स्पीडोमीटर पर दे मारा।

यह सब याद आते ही उसका दायाँ हाथ अपने आप मुक्के में बदल जाता है और वह मेज़ पर जा टकराता है। खटाक होता है। उसकी तंद्रा टूट जाती है। वह खड़ा हो जाता है। एक चक्कर लगाता हुआ प्रैक्टिस करते लड़के-लड़कियों के पीछे आ खड़ा होता है। उन्हें देखता रहता है कि वह ठीक कर रहे हैं कि नहीं। फिर वह रैक पर पड़े अख़बार को उठाता है और उसके पन्ने पलटने लगता है। बिना कुछ पढ़े अख़बार को वापस रख देता है। पर अख़बार का एक छोटा-सा टुकड़ा उसकी आँखों के आगे तैरने लगता है। उसमें उसके लिए दोनों चीज़ें थीं - मौत भी और ज़िंदगी भी। उस क़हर की रात में...

आधी से अधिक रात बीत चुकी थी। साथ के कमरे में सब सो चुके थे। सुदेश के मम्मी-डैडी और छोटा भाई। सिर्फ़ सुदेश जाग रहा था। उसके कमरे में मद्धम-सी रोशनी थी, पर उसके ख़यालों में अँधेरा था। उसे रोशनी की कोई किरण नज़र नहीं आ रही थी। वह सोचता, परंतु सोच एक ही जगह पर आकर अटक जाती। वह इससे आगे सोचना बन्द कर देता। कोई रास्ता नहीं था। दिल को बहुत ढाढ़स दिए, बहुत दिलासा दिया। मगर सब व्यर्थ। दिल पर चलती आरियाँ दिलासों के टुकड़े-टुकड़े कर देतीं। उसने जो फ़ैसला कर लिया था, वह आख़िरीथा।

वह बेआवाज़ उठा। नंगे पैर, दबे पाँव आहिस्ता-आहिस्ता चलता हुआ साथ वाले कमरे के दरवाज़े के पास गया। दरवाज़े के साथ कान लगाकर आहट लेने लगा। उसको यकीन हो गया था कि सब गहरी नींद में सोये पड़े थे।

वह अल्मारी के पास गया। किताबों के पीछे छिपाकर रखी हुई अख़बार में लपेटी हुई एक मज़बूत रस्सी निकाली। उसे सीधा किया। बेड पर स्टूल रखा। स्टूल पर चढ़कर रस्सी को छत पर लटकते पंखे की पाइप के साथ बांधा। दूसरे सिरे पर फंदा बनाया। फिर उसने देखा कि रस्सी की लम्बाई अधिक तो नहीं। उसके पैर बेड के साथ तो नहीं लगेंगे। स्टूल थोड़ा पीछे किया। कहीं पैर लगकर स्टूल बेड से नीचे तो नहीं गिरेगा। खटका सुन कोई जाग सकता है।

वह स्टूल पर चढ़ गया। फंदा अपने गले में डाल लिया। छत की ओर, कमरे की दीवारों की ओर उसने उदास नज़रों से देखा। फिर उसने आँखें बन्द कर लीं। नमिता का चेहरा उसकी आँखों के आगे आ खड़ा हुआ। फिर मम्मी-डैडी का चेहरा दिखा। वह मन ही मन मम्मी-डैडी से माफी माँगने लगा। फिर अचानक बिजली की चमक की तरह ख़याल आया, 'मम्मी-डैडी से माफ़ी के लिए कुछ लिखना चाहिए। ... हाँ, एक सुसाइड नोट अवश्य लिखना चाहिए।'

उसने रस्सी गले में से निकाली। स्टूल पर से नीचे उतरा। कागज़-पेन लेने के लिए

अल्मारी की ओर बढ़ा। उसका पैर फर्श पर गिरे पड़े अख़बार के टुकड़े से टकराया जिसमें रस्सी लपेटी थी। उसने अख़बार को टुकड़ा उठा लिया। एकाएक उसकी नज़र एक ख़बर पर पड़ी। वह वहीं रुक गया। पूरी ख़बर पढ़ने लगा कि किस प्रकार एक दिलजले ने अपनी प्रेमिका का चेहरा...

वह वहीं खड़े-खड़े सोचने लगा, 'आयडिया अच्छा है। मैं तो चुपचाप सुसाइड कर रहा हूँ। उसको क्या पता चलेगा? उसको क्या अहसास होगा?... उसको क्या फर्क़ पड़ेगा मेरे मरने से? मुझे तो मरना ही है, पर उसे भी तो पता चले। यदि... मैं भी उसका चेहरा... याद तो रखेगी उम्र भर! जब आईना देखा करेगी, मुझे याद किया करेगी। और फिर उसके हुस्न का आनन्द कोई दूसरा नहीं उठा सकेगा।'

उसकी बुझी आँखों में चमक आ गई। चेहरा तन गया, 'गुड आइडिया'। यह कहकर उसने बेड पर रखे स्टूल पर चढ़कर पंखे के साथ बंधी रस्सी खोली और लपेट कर रख दी।

अगले दिन उसने हार्डवेयर की दुकान से तेज़ाब की एक बोतल खरीदी। बोतल स्कूटर की डिक्की में रखकर रणजीत नगर की ओर निकल गया। एक-दो गलियों में चक्कर मारने के बाद वह मेन रोड पर आ खड़ा हुआ। यह सड़क रणजीत नगर को बाकी शहर के साथ और इस छोटे से शहर के बाज़ार के साथ जोड़ती थी। वह एक चाय वाले खोखे के पास स्कूटर खड़ा करके आते-जाते लोगों को, वाहनों को देखता रहा। उसने सोचा कि यदि नमिता बाज़ार या कहीं और जाएगी-आएगी तो यहीं से ही होकर गुज़रेगी। परंतु वह किस समय गुज़रेगी, यह तो वह नहीं जानता था। अधिक देर वहाँ खड़े रहना उसे ठीक न लगा। खोखे वाले से चाय पीने का बहाना बनाकर वह कुछ देर और वहाँ रुका।

फिर उसने सोचा कि नमिता की शादी के दिन करीब आ रहे हैं। इसलिए अपने घरवालों के साथ बाज़ार में शॉपिंग के लिए तो जाती ही होगी। वह बाज़ार में तो मिल ही सकती है। कभी न कभी मेन बाज़ार में ज़रूर मिलेगी। आज नहीं तो कल।

फिर उसने मेन बाज़ार के चक्कर लगाने शुरू कर दिए। वह आते-जाते दुकानों के अंदर झाँकता। कपड़े वाली दुकानों के अंदर, ज्वैलरी की दुकानों और कॉस्मेटिक की दुकानों के अंदर। वह दिन में कई कई चक्कर बाज़ार के लगाता। घर जाने से पहले वह तेज़ाब की बोतल स्कूटर की डिक्की में से निकाल कर ट्रेनिंग सेंटर के अंदर एक कोने में छिपाकर रख देता। कई दिनों तक यह सिलसिला चलता रहा, पर उसको नमिता नही मिली।

"सर, हम जा रहे हैं।" सुदेश ने देखा कि वह तीनों लड़के जाने के लिए खड़े हो चुके हैं।

"ओ.के.... बाय।" सुदेश मुस्कराने का यत्न करता है।

वह उन्हें बाहर जाते देखता रहता है। वे आँखों से ओझल हो जाते हैं। वह फिर भी देखता रहता है। टकटकी लगाकर उस दिन की तरह। उसको एक लड़की नज़र आई थी। फिरोज़ी रंग का सूट पहने। यह तो नमिता आ रही थी। उसको अपनी आँखों पर यकीन नहीं आ रहा था। वह उसकी तरफ ही आ रही थी। उसने फौरन खड़े होकर कोने में से तेज़ाब की बोतल उठाई और मेज़ के नीचे पड़े डस्टबिन में रख दी। जहाँ कि उसका हाथ आसानी से पहुँच सके।

नमिता ने मुस्कराते हुए अंदर प्रवेश किया। कढ़ाई वाले फिरोज़ी रंग के सूट में वह खूब जंच रही थी। मानों उस पर जादू कर रही हो। वह नमिता को निहारता ही रह गया।

नमिता ने हाथ में एक खूबसूरत रैपर वाला गिफ्ट पैक था और दूसरे हाथ में कार्ड।

"हैलो...हाय।" नमिता मुस्कराई।

"हैलो...।" वह जैसे नींद से जागा हो।

"आज मैं आख़िरी बार आई हूँ यहाँ।" नमिता बोली।

"आख़िरी बार?... उस दिन क्यों नहीं आई?...अचानक लापता हो गई, क्यों?" सुदेश ने माथे पर बल डालकर पूछा।

नमिता सामने वाली कुर्सी पर बैठ गई। फिर एक लम्बा-सा साँस भरकर बोली, "उस दिन की तो पूछो ही न... उस दिन मैं तैयार होकर घर से चलने लगी यहाँ आने के लिए कि सडनली मम्मी सीढ़ियों पर से गिर पड़ीं। काफ़ी चोटें आईं। सिर में, टाँग पर... और भी छोटी-मोटी कई लगीं। फिर डॉक्टर के पास ले जाना पड़ा। तीन-चार दिन तो उनसे उठा ही न गया। ... फिर बताओ मैं कैसे आ सकती थी।"

"मुझे बता तो देतीं इस बारे में।" सुदेश ने गिला किया।

"आपका फ़ोन नंबर नहीं था मेरे पास। दो-तीन दिन तो मैं मम्मी को छोड़कर कहीं भी न जा सकी। वह तो बाथरूम तक भी नहीं जा पा रही थीं। तीन-चार दिन बाद शाम को मैं इधर से गुज़री थी। सोचा, आपको बता जाऊँ। पर सेंटर बन्द था। यहाँ तो लॉक लगा हुआ था।"

"अच्छा!" सुदेश कुछ और न बोला। उसको कुछ सूझ ही नहीं रहा था।

"हाँ, मैं एक ख़ास काम से आई थी। वह यह कि... लो, ये मेरी मैरिज़ का निमंत्रण पत्र... और यह आपके लिए गिफ्ट।" नमिता ने पहले कार्ड दिया और फिर गिफ्ट पैकेट उसे पकड़ा दिया।

"यह क्या?... यह क्या बात हुई?... मैरिज़ तेरी है...और गिफ्ट उलटा मुझे दिया जा रहा है... कि मुझे बच्चों की तरह खिलौना देकर चुप करवा रही हो?" सुदेश ने व्यंग्य भरे लहजे में कहा।

"यह एक यादगार है... मेरी तरफ से।"

"अच्छा!... खोलकर देख सकता हूँ अभी?" सुदेश ने पूछा।

"क्यों नहीं... ज़रूर खोलो।"

सुदेश ने पैकेट खोला। उसमें से एक खूबसूरत ताजमहल निकला, दूधिया-सा। उसने ताजमहल को हसरतभरी नज़रों से देखा। फिर नमिता की ओर देखने लगा।

नमिता मुस्कराती हुई बोली, "मैं दो साल पहले अपने कालेज के टूर पर गई थी आगरा। मुझे ताजमहल बहुत सुंदर लगा। उसकी याद के तौर पर मैं यह खरीद लाई थी। ... और सोचा था कि किसी ख़ास को प्रेजेंट करूँगी यह। जब आप नहीं मिले थे, तब मैंने सोचा था, चलो, मैं शादी के समय अमित को प्रेजेंट कर दूँगी। पर अब सोचती हूँ, इसके असली हक़दार आप हैं।" वह भावुक हो गई।

सुदेश हँसने लगा।

"इसमें हँसने वाली क्या बात है?" नमिता ने पूछा।

"मैं तो इसलिए हँस रहा था कि शाहजहाँ ने मुमताज की याद को, उसकी मुहब्बत को भेंट किया था ताजमहल। अब मॉर्डन ज़माने में एक मुमताज उलटा शाहजहाँ को ताज भेंट कर रही है।" सुदेश का जवाब सुनकर नमिता भी हँसने लगी।

नमिता कुछ देर और बैठी रही। वे आपस में बातें करते रहे। सुदेश के मन का बोझ जैसे हल्का हो रहा था। सारा गुबार निकल गया था। तेज़ाब वाली बात तो समझो वह भूल ही गया था।

नमिता चली गई तो सुदेश ने तेज़ाब वाली बोतल उठाकर सारा तेज़ाब बाहर नाली में उंडेल दिया। तेज़ तेज़ाब कुछ देर खौला, बुलबुले निकले, झाग उठी और फिर सब कुछ शांत हो गया।

उसकी शादी के बाद वह नमिता से कभी नहीं मिला। न ही नमिता कभी मिलने आई।

लगभग छह बरस बीत चुके हैं।

वह दीवार पर लगे क्लॉक की तरफ देखता है। समय काफ़ी हो गया है। लेकिन आख़िरी ग्रुप में से कोई नहीं आया। वह कुछ देर और प्रतीक्षा करता है। फिर उसे लगता है, आज कोई नहीं आएगा। वह घर जाने की तैयारी करने लगता है।

ट्रेनिंग सेंटर का शटर गिराकर वह ताला लगा देता है। बाहर स्ट्रीट लाइट जग रही हैं, पर धुँध के कारण धुँधली लग रही हैं। वह स्कूटर स्टार्ट कर घर की ओर चल पड़ता है। ठंड और धुँध के कारण धीमे-धीमे चला रहा है। फिर भी दस्तानों के अंदर भी उसके हाथ सुन्न होते हो रहे हैं और पैर भी।

वह स्कूटर घर के बाहर गली में खड़ा कर देता है। दरवाज़ा खुला हुआ है। सुन्न हो चुके हाथों को रगड़ता हुआ वह अंदर चला जाता है। ड्राइंग रूम में सामने शो-केस में ताजमहल पड़ा है। उसकी नज़र ताजमहल पर अटक जाती है। वह मुस्कराता है। एक आत्मीय-सा अहसास होता है, गुनगुनी गुनगुनी धूप जैसा।

उसका चार वर्षीय बेटा दौड़ते हुए आता है और 'पापा...पापा' कहता उसकी टाँगों से लिपट जाता है।

"बदमाश... इतनी ठंड में नंगे पाँव...?" वह उसे अपनी बाँहों में उठाकर चूमने लगता है।

उसकी पत्नी हाथ में बच्चे के बूट और जुराबें लिए आती है, "देखो, ये बूट नहीं डलवा रहा। कब से तंग किए जाता है।"

"अच्छा! यह इसके लिए है, मैं समझा, कहीं पतिदेव के स्वागत के लिए जूता उठाए आई हो।"

वे दोनों हँस पड़ते हैं।

उसकी पत्नी नखरे के साथ कहती है, "तुम्हें तो बस दिनभर मज़ाक ही सूझता रहता है।"

ooo

व्यंग्य

एक मुर्दा चर्चा

प्रेम जनमेजय

प्रेम जनमेजय
73 साक्षरा अपार्टमेंट्स,
ए-३, पश्चिम विहार, नई दिल्ली ११००६३
मोबाइल-9811154440
ईमेल-premjanmejai@gmail.com

दिल्ली दिलवालों की कही जाती है। यह दीगर बात है कि आजकल दिल्ली का दिल उसके पास नहीं है। और जब संसद के पास प्रजातंत्र नहीं है, विधान सभा के पास विधान नहीं है, उच्च न्यायालय तक के पास न्याय नहीं है और दिल्ली के आई टी ओ में स्थित पुलिस के पास दिल नहीं है तो बेचारी दिल्ली के पास कैसे हो?

सुना है कि कोरोनाकाल में देश की जी डी पी गिर रही है। इंसानियत, नैतिकता, ग़रीब की ग़रीबी आदि गिर रहे हों तो देश की जी डी पी क्यों न गिरे? दिल्ली के दिल की क्यों न गिरे! यह भी सुना है कि कोरोनकाल में आत्मा ने भी अपने शटर गिरा दिए हैं। बाज़ारवाद के युग में बेचारी आत्मा का कोई उपभोक्ता भी तो नहीं है। टके सेर भाजी और टके सेर ही आत्मा बिक रही है। जो नहीं बिक पा रही है वह गोदाम में सड़ रही है।

ऐसी ही कुछ आत्माएँ दिल्ली की एक बस में बैठी थीं। यह दिल्ली के केवल कोरोनाकाल की घटना नहीं है, यह तो दिल्ली में आने वाले हर काल की घटना है।

वह लड़का पटियाला हाउस बस स्टॉप से बस में चढ़ा था। चढ़ते ही रोने लगा था। जैसे मतदान करने के बाद परिणाम आने पर मतदाता रोने लगता है। लड़के की उम्र यही कोई ग्यारह-बारह के आस-पास होगी। वह बहुत ज़ोर से रो रहा था। सारी बस के चेहरे प्रश्नवाचक चिह्न के आकार में आ गए। प्रश्न और उनके संभावित उत्तर बस में, किसी ख़बरिया चैनल में ज्वलंत मुद्दे पर की गई बहस -से तैरने लगे।

-"क्या हुआ?........क्या हो गया भाई साहब?..........

-लड़का इतनी ज़ोर से क्यों रो रहा है? किसी ने इसे पीटा होगा.....

-लगता है इसके पास टिकट के पैसे नहीं है............अकेला चढ़ गया होगा........

-घर से तो नहीं भागा?......

-अरे भाई साहब, आजकल इन लोगों ने भीख माँगने का यह भी तरीका निकाल लिया है। या तो गाकर भीख माँगेंगे, नहीं तो रोकर। पूरा गैंग होता है इनके साथ।"

लड़के का रोना उसी तेज़ी में जारी था।

मैं बस में आगे की ओर खड़ा था। वैसे बस में चाहे आगे खड़े हों या पीछे आप चलते बस की ही गति से हैं। कोरोनाकाल में भी तो चाहें आप घर में हों या बाहर-- चलते कोरोना की ही गति से हैं। जानने की उत्सुकता में पीछे की ओर लौटा। तभी पिछली सीट पर बैठी वृद्ध-सी महिला ज़ोर से हँसी। वृद्ध -सी इसलिए कह रहा हूँ कि उसके बॉब-कट सफेद बाल मेंहदी में रंगे

होने पर भी अपनी झलक दे रहे थे पर चेहरा, अड़तीस से कम का ही था। शायद बच्चे ने रोते हुए उस महिला को कुछ बताया था। महिला के हँसने पर कुछ चेहरे बिना बात जाने पहले तो हँसे फिर आपस में ही पूछने लगे, "क्या हुआ? क्या हुआ भाई साहब?" प्रश्न महिला की ओर उछले, "क्या हो गया, बहन जी?"

"इसका दादा नीचे उतर गया।" महिला ने हँसते हुए कहा जैसे बड़ी मज़ेदार बात हो।

"नहीं,' लड़का बहुत ज़ोर से चिल्लाया, 'मेरा दादा गुज़र गया है।"

ओह......हो.......च्.......च्........... ...च..........वैरी सैड......पुअर बाय। लड़के का रोना जारी है।

एक बुज़ुर्ग ने उसे अपने पास खड़ा किया। उसके सिर पर हाथ फेरते हुए पुचकार कर कहा, 'नं इत्ता बड़ा होकर रोवे है। नां यू न रोत्ते हैं। चुप हो जा।"

महिला-सीट से एक बातचीत उभरती है।

"क्या प्रोबलेम है मौनी?"

"कुछ नहीं मम्मी, लड़के का ग्रैंड पा इज़ डैड।'

"ओह हाऊ सैड पुअर बाय। लेट्स हैल्प हिम...

"चलो गेट डाउन मम्मी! आई. टी. ओ. हैज आ गया। हरी अप!"

लड़के का रोना जारी है।

"चुप हो जा भले मानस! दादा तो सबी के मरते हैं.....यूँ नहीं रोत्ते..........चुप हो जा।"

बड़ा प्यार होगा इसका अपने दादा के साथ।..........कहाँ जाएगा रे...........?"

"जहांगीरपुरी।" लड़का सुबकियाँ लेते हुए बताता है।

"बच्चे इधर आ जाओ, मेरे साथ सीट पर बैठ जाओ।" दफ्तर का एक बाबू उसे अपने साथ बिठा लेता है। उसके साथ एक नवयुवक आँखों पर धूप का चश्मा चढ़ाए निर्द्वन्द्ध भाव से बैठा है। बच्चा अगली सीट पर सिर टिकाकर रोने लगता है।

"नहीं बेटे, अच्छे बच्चे रोते नहीं हैं। कहाँ रहता है?"

"जहांगीरपुरी"

"जहांगीरपुरी अकेले चले जाओगे?"

"हाँ.....लाल क़िले से बस बदलूँगा।"

जवाब देकर वह अपना रोना जारी रखता है या यह कहा जाए कि रोते-रोते वह अपने उत्तर दे रहा है।

"लाल क़िले से कोई बस मिलती भी है जी जहांगीरपुरी के लिए?"

"हाँ जी, बिल्कुल मिल जाएगी। मैं चढ़ा दूँगा इसे।"

"तुझे पैसे तो नहीं चाहिए।"

"नहीं.....हैं....."

"तेरी दादी है?"

"हूँ...........हूँ................ऊँ....."

"फेर क्या क्या है........क्यों रोता है............दादी की गोदी में बैठकर खेलियो। दादा से भोत प्यार लगता है इसका.......भई बच्चों में हो ही जावे है.......नं मई रो नं........चुप हो जा।"

"इसके माँ-बाप साथ नहीं हैं।"

"हाँ रे..........तू इकला जा रहा है क्या? तेरे माँ-बाप कहाँ हैं?"

"वो देर से......आएँगे....."

"अजी क्या जमाना आ गया है?"

"अजी सब शासन का पाप है।"

"पहले वालों ने ही क्या कर लिया। लड़ते रहे आपस में।"

रोना जारी है।

"न भई रो मत।.........इत्ता बड्डा होकर मत रो......रोवेगा तो दुनिया सोचेगी कि यू कोई पागल है.......रो मत........रोने वाले को सब पागल ही सोच्चे हैं......चुप हो जा भई.......दादा ही तो मरा है...........रो मत चुप हो जा देख।"

बस लाल क़िले के स्टाप पर रुकती है। बस यहीं तक है। सब उतरते हैं। लड़का उतर कर रोता हुआ तेज़ी से उस ओर चल देता है, जहाँ से जहांगीरपुरी की बस मिलती है। बस के लोग भी अपनी-अपनी दिशाओं में चल देते हैं।

बस के लिए एक बूढ़े आदमी की मौत हुई थी जिसने दुनिया के सुख-दुख, नाती-पोते देख लिये थे परन्तु लड़के के लिए उसका दादा गुज़र गया था।

000

लघुकथा

राजनीति के कान

कमलेश भारतीय

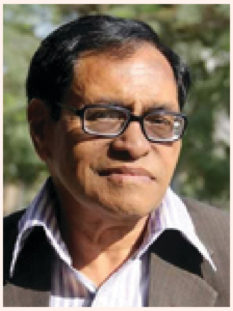

- मंत्री जी, बड़ा कहर ढाया है.... आपने।

-किस मामले में भाई?

- अपने इलाके के एक मास्टर की ट्रांस्फर करके।

-अरे, वह मास्टर ? वह तो विरोधी पार्टी के लिए भागदौड़...

-क्या कहते हैं हुज़ूर ?

- उस पर यही इल्ज़ाम है।

- ज़रा चल कर कार तक पहुँचने का कष्ट करेंगे?

- क्यों ?

- अपनी आँखों से उस मास्टर को देख लीजिए। जो चल कर आप तक तो पहुँच नहीं पाया। बदकिस्मती से उसकी दोनों टाँगें बेकार हैं। और भागदौड़ करना उसके बस की बात कहाँ ? जो अपने लिए भागदौड़ नहीं कर सकता, वह किसी के विरोध में क्या भागदौड़ करेगा ?

- अच्छा भाई। तुम तो जानते हो कि राजनीति के कान बहुत कच्चे होते हैं और आँखें तो होती ही नहीं। खैर। आपने कहा है तो मैं इस ग़लती को दुरुस्त करवा दूँगा।

खिसियाए हुए मंत्री जी ने कहा ज़रूर लेकिन आँखों में कहीं पछतावा नहीं था।

000

कमलेश भारतीय, 1034 बी, अर्बन एस्टेट 2, हिसार -1255005 (हरियाणा)
मोबाइल-9416047075
ईमेल-bhartiyakamleshhsr@gmail.com

व्यंग्य

वर्तमान समय और हम

हरीश नवल

हरीश नवल
65 साक्षरा अपार्टमेंट्स,
ए-३, पश्चिम विहार, नई दिल्ली ११००६३
मोबाइल-9818999225
ईमेल-harishnaval@gmail.com

समय की इकाईयों में वर्तमान सबसे महत्त्वपूर्ण है। बीता हुआ भूतकाल वर्तमान को ही प्रभावित करता है और भविष्य की चिंता वर्तमान का मुख्य धर्म है। हमारे पास इन तीनों में वर्तमान सबसे कम होता है। जहाँ कमी होती है वहीं चिताएँ अधिक होती हैं।

वर्तमान समय गहरी आशंकाओं से भरा समय है। वर्तमान में प्राकृतिक और अप्राकृतिक दोनों तरह की चुनौतियाँ हमारे समक्ष मुँह बाए खड़ी हैं। विशेष रूप से नगरों में रहने वालों का जीवन बहुत द्वंद्वों से भरा हुआ है। व्यक्तिवाद हावी है, उपयोगितावाद ने आज की दुनिया को, यानी हमें 'मतलबी' बना दिया है।

बस्ते का बोझ बढ़ रहा है परंतु शिक्षा का ओज घट रहा है। मूल्यों का स्थान कीमत ने ले लिया है। जो टिक रहा है वह बिक रहा है, मंडी का वर्चस्व सर्वोपरि है। संयुक्त परिवार टूट रहे हैं, संबंध असंबद्ध हो रहे हैं, भोग के लिए नागरिक योग कर रहे हैं।

हम मनुष्य मशीनी हो गए हैं और मशीनें मनुष्य सी हो रही हैं। विवाह जैसी मर्यादित संस्थाएँ टूट रही हैं। हम मीडियान्मुखी होते जा रहे हैं। हमें क्या खाना, क्या पीना, क्या पहनना, क्या ओढ़ना और यहाँ तक कि किस साबुन से नहाना, दाँत साफ करने से लेकर घर की सफाई के अंदाज़, मीडिया बता रहा है। हम फैशन के भ्रम जाल में फँसे हुए कीट-पतंगे हो गए हैं। गला काट प्रतियोगिता में हमारे हाथ कट रहे हैं, दूसरे की कमीज़ से अपनी कमीज़ साफ न होने पर हम खिन्न हो जाते हैं।

हमारे पाठ उलटे हो गए हैं। पहले हमें बताया जाता था कि ईमानदारी बड़ी चीज़ है। प्राथमिक कक्षाओं में प्राय: एक पाठ अवश्य होता था 'ओनेस्टी इज़ दा बेस्ट पॉलिसी' आज हमारी पालिसियाँ बदल गई हैं अब ईमानदारी को मूर्खता का पर्याय माना जाता है।

हमारे बुज़ुर्गों की दशा उजड़े बागबान जैसी हो गई है। उनके लिए हमारे घर 'नो मेन्ज़ लैण्ड'

हो गए हैं। घर में बरामदा न हो तो उन्हें बैठने के लिए जगह तलाश करनी पड़ती है।

मार्शल मैक्लूहन ने कह दिया 'वर्ल्ड इज़ ए ग्लोबल विलेज' यानी दुनिया एक वैश्विक ग्राम है। हम ग्लोबल हो गए हैं। वर्तमाान समय में यातायात और संचार के साधनों ने दुनिया को बहुत छोटा कर दिया है, परंतु हमारा विलेज तत्त्व गुम हो गया है। गाँव में किसी की बेटी गाँव की बेटी मानी जाती रही पर आज हमारे शहरों में हमारी बेटियाँ हर रोज़ भेड़ियों की नज़रों का शिकार होती हैं।

हम फेसबुक पर बहुत करीब हो गए हैं, फेस टू फेस पड़ोसियों को भी नहीं जानते। ट्वीटर पर हम लाइक करते थकते नहीं हैं पर खुले नागरिक जीवन में हमारी नापसंदगी हम पर सवार रहती है।

आज हमारे बच्चे अमेरिका और यूरोप की वर्कशाप हैं जिनसे वे अपने लिए डॉक्टर, इंजीनियर, वैज्ञानिक आदि-आदि ढलवाते हैं। हम 'भारतीय हैं", का संकोच हमें पीछे हटाता है और 'एन-आर-आई-' का गौरव हमें ऊँचा उठाता है।

जिस ऋण को हम पाप समझते थे वह आज वरदान समक्ष हो गया है। प्लास्टिक मनी के युग में क्रेडिट कार्ड का कद कितना ऊँचा है यह बताने की आवश्यकता नहीं है। हमारे क्रेडिट कार्ड हमें गोल्ड और प्लेटिनम संज्ञाओं से विभूषित होकर हमारे पदक बन चुके हैं।

शब्दों के सही अर्थ हम भूलते जा रहे हैं। आज हम डिग्री को शिक्षा समझते हैं, डिग्रियों को प्राप्त करने की होड़ सी लगी हुई है। हम सूचनाओं को ज्ञान मानकर प्रसन्न हो रहे हैं, 'गूगल' हमारे लिए भगवान् है। हम उस पर भरोसा करते हैं। सत्ता को हम व्यवस्था समझकर बदलने की कोशिश करते हैं। सत्ता बदल जाती है पर व्यवस्था वही रहती है। सफेद, पीली, लाल आदि टोपियाँ बदलने के बावजूद भी हम सिस्टम को नहीं बदल पा रहे हैं।

वर्तमान समय में हम इतना भ्रम में जी रहे हैं कि सुविधाओं को सुख समझकर उन्हें जुटाने के लिए जुटे हुए हैं। जहाँ तक वर्तमान

संबंधों का प्रश्न है हमारे रिश्ते आरोपित रिश्ते हैं, जो वास्तव में हैं हम उसको नहीं मानते जो हो नहीं सकता उसके होने की आशा में निरंतर निराश होते हैं। हमें भाई ऐसा चाहिए जो दोस्त जैसा हो, दोस्त ऐसा चाहिए जो भाई जैसा हो। लिहाजा हमें न भाई मिलता है न दोस्त। हम बहू को 'बहू' के रूप में स्वीकार नहीं कर पाते, उसे बेटी के रूप में देखना चाहते हैं, सास को सास नहीं माँ में रूपायित होता देखना चाहते हैं, यानि जो है वो हमें स्वीकार नहीं है इसलिए हम संबंधों का, रिश्तों का प्रलाप करते हुए महफिलों में देखे जा सकते हैं।

हमें आज घर में होटल जैसी सुविधाएँ चाहिए और होटल हम घर जैसा ढूँढते हैं। हमें शहरी, ड्राइंग रूम में गाँव की डेकोरेशन चाहिए और गाँव की चौपाल में शहरी सजावट चाहिए। हम कितने अजीब हो गए हैं कि मौसम के सही अंदाज़ को भी नहीं अपना पाते। गर्मियों में एयर कंडीशनर में चादरें ओढ़ कर सोते हैं और सर्दियों में घर में इतनी हीट रखते हैं कि हवा का तापमान शरीर को शीतलता न दे सके।

वर्तमान समय अपसंस्कृति का समय है। संस्कृति सिखाने वाले हमारे लगभग सभी चैनल अपसंस्कृति ही बिखेर रहे हैं। टी॰वी॰ के विभिन्न बड़े और महत्त्वपूर्ण 'रियल्टी शोज़' के कई निर्णायक अपनी असलियत पर उतरे रहते हैं। सर्वाधिक अंक देने का भाव कोई मेज़ पर खड़ा होकर करता है, कोई सीटी बजाकर देता है और कोई असभ्य भाषा में मत प्रकट करता है। सांस्कृतिक प्रदूषण का घोर युग है जहाँ तीन सौ रुपये का पिज़्ज़ा, दो सौ रुपये की मैगी या सौ रुपये का पॉपकार्न का पैकेट हमें कदापि महँगे नहीं लगते परंतु पुस्तक हमारे लिए हमेशा महँगी साबित हो रही है। फ़ोन से ऑर्डर करके हम दो हज़ार रुपये का नाश्ता करके आनंदित होते हैं किंतु पुस्तक का ऑर्डर करने में हमारा अर्थ शास्त्र डोलने लगता है।

हम बुक नहीं 'बुके' के समय में जी रहे हैं, पार्क नहीं पार्किंग ढूँढ़ रहे हैं, हम बाज़ारवाद के ऐसे पक्षधर हो गए हैं कि हमें उसका बाज़ारूपन में होता परिवर्तन नज़र नहीं आता।

वर्तमान में हमारा सबसे बड़ा सत्य 'वित्त-सत्य' बन गया है। येन केन प्रकारेण हमें धन चाहिए। हम बिचौलियों का समाज बनाने में लगे हुए हैं। हमें जिसका विरोध करना चाहिए उसके एजेंट बनने में शान समझते हैं। भ्रष्टाचार जहाँ सबसे अधिक हो वही करियर हमें सबसे ऊँचा लगने लगा है।

जहाँ तक योग्यताओं का प्रश्न है हम सभी अवगत हैं कि हमारे वतन में चतुर्थ श्रेणी के कर्मचारी के लिए भी कुछ शैक्षणिक योग्यता अनिवार्य है किंतु शासन करने वालों के लिए अँगूठा भी न हो तो चल जाता है।

यदि गाँव की बातें करें तो हमारे असली अन्नदाता आत्महत्या कर रहे हैं, क्योंकि उनके पास जीवनयापन के साधन नहीं हैं। दलितों के साथ कौन-सा अन्याय नहीं होता, रोज़ समाचार बताते हैं। प्रेम होने पर खाप पंचायत प्राणदंड भी देती है।

यह कैसा समय है कि यह नहीं बीत रहा, हम बीत रहे हैं। हम भोगों को नहीं भोग रहे, भोग ने हमें भोग लिया। हम तप को नहीं, तप ही हमें तपा रहा है। हमारी तृष्णा नहीं हुई, हम ही जीर्ण हो रहे हैं।

भर्तृहरि के शब्दों में-

फ्कालो न यात: वयमेव याता:। भोगो न मुक्त: वयमेव भुक्त:।।

तपो न तप्तं वयमेव तप्ता:। तृष्णा न जीर्णा वयमेव जीर्णा:।।

समय हमारी रक्षा करे।

000

व्यंग्य

राजनीतिक प्रेरणा-एक विवेचना

कमलेश पाण्डेय

भैयाजी राजनीति में हैं। कीचड़ में जैसे पत्तों के बीच कमल अपनी मुंडी ऊपर उठाये मुस्कराता रहता है, वे भी गले तक राजनीति में डूबे, उसी दलदल में जड़ें जमाये, सतह पर समर्थक-दल से घिरे देपीप्यमन रहते हैं। वे चौबीस बटे सात राजनीति ही बोलते-बतियाते, खाते-पीते, ओढ़ते-बिछाते हैं। कभी छींक देते हैं तो सर्वत्र राजनीति के कीटाणु बिखर जाते हैं, जिन्हें वे बिखरने देते हैं, किसी क़िस्म का मास्क वास्क लगा कर रोकते नहीं। रात को भी उनके खर्राटे दिगदिगंत राजनीति की लोरियाँ गुँजाते हैं, जबकि सुबह उठने पर... ख़ैर जाने दीजिए, बस यों समझिए, राजनीति ही उनके श्वसन-तंत्र की हवा, पाचन-तंत्र का अम्ल और उत्सर्जन-विसर्जन से प्राप्त तत्व है। उनकी चाल में साक्षात् राजनीति ही ठुमकती चली आती है और बोलने, चुप रहने, मुस्कराने या महज़ आँखें मूँद लेने में भी राजनीति की ही विविध भाव-भंगिमाओं के दर्शन होते हैं। उन्हें इश्क़ है राजनीति से सो उसका साकार स्वरूप ही नज़र आते हैं जैसे।

राजनीति से ऐसे गहरे निजी ताल्लुकात की वज़ह से लाज़मी है कि कोई और राजनीति से ज़रा -सा भी वास्ता रखे तो बहुत बुरा मानते हैं। अगर दूसरा कोई किसी निजी गतिविधि के लिये राजनीति से टुच्ची-सी भी प्रेरणा ले ले तो खुल कर अपनी नाख़ुशी ज़ाहिर करते हैं। राजनीति की जागीर पर भैयाजी का कब्ज़ा जब सिद्ध हो ही चुका तो बाकियों को क्या अधिकार है कि उससे रिश्ता रखे? अर्थात् कोई नहीं। प्रेरणा लेने से फायदा उठाने तक राजनीति के हर संभव सदुपयोग या दुरुपयोग पर उनका ही एकाधिकार है, ऐसा वे दृढ़ता से मानते हैं।

उन्हें हर पल अंदेशा रहता है कि जनता, विपक्षी दल, कोर्ट, मीडिया आदि सभी उनसे नज़रें बचा कर उनकी जानेमन राजनीति से आँखें लड़ाने और एक अदद प्रेरणा झटक लेने की फ़िराक़ में हैं। इसलिये वे राजनीति के मंच पर हो रही हर सीधी-तिरछी-उलटी हरक़त को समुचित गम्भीरता से लेते हैं। फिर एहतियातन एक सार्वजनिक बयान देकर याद दिला देते हैं कि ये हरक़त राजनीति से प्रेरित है ताकि सनद रहे और सोशल मीडिया पर वायरल किया जा सके। विपक्षी का तो हर बयान शर्तिया राजनीति-प्रेरित ही होता है। एक बार एक विरोधी ने यूँ ही उन्हें ईमानदार कह दिया तो उसे भी राजनीति से प्रेरित बता गए। वैसे ऐसा कहना वैसा था भी क्योंकि ईमानदार छवि से नेता को आर्थिक नुकसान होता है।

हम सब की तरह भैयाजी का भी मानना है कि ज़माना ख़राब है और इसका प्रमाण यह है कि जिसे देखो राजनीति करने में लगा है। राजनीति से प्रेरणा ले कर लोग आत्महत्या, बलात्कार और क़त्ल तक सम्पन्न कर रहे हैं। यही नहीं, ये कारनामे कोई ग़लती से बिना राजनीति से प्रेरणा लिये कर दे तो लोग इन पर हो या न हो रही कारर्वाई पर ही राजनीति करने लगते हैं। एफ़आईआर, ज़मानत, एन्काउण्टर, सज़ा वगैरह अब न्याय और नैतिकता के आधार पर कानून-सम्मत तरीक़े

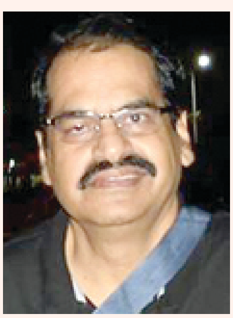

कमलेश पाण्डेय
बी-260, पॉकेट-2, केंद्रीय विहार, सेक्टर-82, नोएडा, उप्र 201304
मोबाइल : 9868380502

की बजाय राजनीति से प्रेरणा ले कर होने लगे हैं। भूख, ग़रीबी, बेरोज़गारी और असमानता जैसे मसलों पर किसी क़ोतवाल की तरह ज़िरह करने वाले एक चिंतक को भैयाजी ने कस कर डाँटा कि इन मुद्दों पर राजनीति न करें, क्योंकि ये सारे सवाल आँकड़ों के ज़रिये पहले ही हल हो चुके हैं।

कभी-कभी किसी राजनीतिक प्रेरणा से तरंगित हो कर कोई भीड़ आंदोलन पर आमादा हो जाती है तो पुलिस व प्रशासन सीधे भैयाजी से आदेश लेकर सीधी ही कारर्वाई करता है। यहाँ राजनीति से प्रेरणा लेने की नौबत तब आती है जब आँसू-गैस, लाठी-गोली से आहत प्राणियों की ख़बरें प्रसारित होती हैं। अक्सर कोई भीड़ ही ऐसी होती है जो सीधे राजनीति-तुल्य भैयाजी से ही प्रेरणा लेकर आरोप तय करने से लेकर सज़ा देने तक की कार्यवाही ऑन द स्पॉट ही निबटा देती है। ऐसी घटना के बाद इस भीड़ के आघातों के लक्ष्य की हिमायत करने करने वालों पर भैयाजी की नज़र में राजनीति करने का आरोप स्वयम् सिद्ध है। भैयाजी को सख़्त अफ़सोस है और जिसका ज़िक्र वे बार बार बयानों में करते हैं कि उनकी साफ़-सुथरी, कल्याणकारी, रचनात्मक व त्वरित परिणाम देने वाली राजनीति के विरोध में उनके विरोधियों ने राजनीति की नई वेराईटी खड़ी कर दी है जो एकदम गंदी, स्वार्थपरक और विध्वंसक है। पर उन्हें अपनी राजनीति के खरी होने पर पूरा यकीन है, जिसके दम पर वे खुद चलनी जैसा होते हुये भी अपने तमाम विरोधी सूपों में बहत्तर छेद कभी भी दिखा सकता है।

अगर आप भी राजनीति से प्रेरणा ले कर कुछ करने की फ़िराक़ में हैं तो आपके लिये भैयाजी की स्पष्ट चेतावनी है कि बाज आईये। जहाँ तक यह तय करने का सवाल है कि ली गई प्रेरणा राजनीति के खाते से है या नहीं, पैमाना शायर के लफ़्ज़ों में यों है कि आप आह भी भरें तो राजनीति-प्रेरित कहलाएगा, जबकि भैयाजी के हाथों सम्पन्न क़त्ल भी इस आरोप से बरी रहेगा।

000

गीत

दो गीत

सूर्यप्रकाश मिश्र

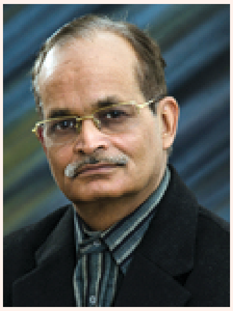

भीगा मौसम

खेत और बुधनी दोनों को
भिगो रहा बरसाती पानी
महक उठ रही इतनी सोंधी
झूम रहे हैं महुवा छानी

भीग रहे हैं तन मन दोनों
भीग रही है झीनी साड़ी
गीले सारे ताल तलैया
फिसलन वाली हुई पहाड़ी

देख रहा छिप छिप कर सूरज
नटखट बूँदों की मनमानी

अँगड़ाई बेचैन लग रही
खुला बन्दिशों का हर ताला
नज़र आ रहा है बूँदों में
हर बादल का उजला काला

भली लग रही है निगाह को
चंचल पुरवा की नादानी

गले मिल रहे महुवा जामुन
किस्से जिनके नेक रहे हैं
पंछी बने जहाज़ फिर रहे
भीगा मौसम देख रहे हैं

सूख रही थी हरी हो गई
रंग -बिरंगी प्रेम कहानी

000

माटी में सोना

उलझ गया सावन बुधनी में
नमक भरा है, घोल रहा है
बहक गया पुरवा का झोंका
भीगा बदन टटोल रहा है

पौध धान की भीग रही है
खेत, मेड़ सब पानी - पानी
लेकिन वो परदेश बस गए
कौन सुनेगा राम कहानी

मौसम इस किताब का पन्ना
धीरे - धीरे खोल रहा है

बदली झूले पर सवार है
बादल उसे ढकेल रहे हैं
मेढ़क और मेढ़की मिलकर
खेल पुराना खेल रहे हैं

दूर कहीं रो रहा पपीहा
पिया-पिया ही बोल रहा है

शिथिल हो रहे एक-एक कर
गढ़े अनगढ़े सारे बंधन
माटी में सोने के जैसा
परत दर परत भीगा यौवन

मन पीपल के पात सरीखा
झिझक छोड़कर डोल रहा है

000

सूर्य प्रकाश मिश्र, बी 23/42 ए के, बसन्त कटरा (गाँधी चौक), खोजवा, दुर्गाकुण्ड, वाराणसी- 221001, मोबाइल- 9839888743

संस्मरण

मेरे हिस्से के शरद जोशी

वीरेन्द्र जैन

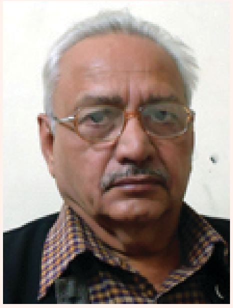

वीरेन्द्र जैन
2/1शालीमार स्टर्लिंग रायसेन रोड
अप्सरा टाकीज के पास भोपाल म.प्र.
462023
मोबाइल 9425674629

कोरोना महामारी के कारण जो देश व्यापी लाकडाउन लागू हुआ उसने समाज में बहुत सारे परिवर्तन पैदा किये, जिनमें से एक था साहित्यिक कार्यक्रमों का बन्द हो जाना। किंतु जहाँ न पहुँचे रवि वाली तर्ज पर कुछ प्रकाशकों के सहयोग से लेखकों ,कवियों की बातचीत का लाइव प्रसारण शुरू हो गया। इसमें सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह हुई कि इन कार्यक्रमों में साहित्यकारों के निजी जीवन और संस्मरण सामने आए। उल्लेखनीय है अपनी मृत्यु से कुछ ही महीने पहले राजेन्द्र यादव जी ने एक बातचीत में कहा था कि संस्मरण या आत्मकथा हिन्दी गद्य की मुख्य धारा में आता जा रहा है। गत 21 मई 2020 को राजकमल प्रकाशन समूह की ओर से ऐसी ही श्रृंखला में सुप्रसिद्ध लेखक ज्ञान चतुर्वेदी ने शरद जोशी को केन्द्र में रख कर अपने संस्मरण साझे किये। इसी कार्यक्रम ने मुझे भी प्रेरित किया कि मैं भी पाँचवें सवार की तरह शरद जोशी के साथ अपनी यादों को दर्ज कर लूँ।

कच्ची उम्र ही में लाइब्रेरी में उपलब्ध वृन्दावन लाल वर्मा के उपन्यासों से शुरू कर के मैंने पुस्तकें तो बहुत पढ़ डाली थीं किंतु लाइब्रेरी की पत्रिकाएँ मुझे बहुत आकर्षित करती थीं। उनके साथ दिक्कत यह थी कि किसी पहले पढ़ने वाले से खाली होने की प्रतीक्षा करनी पड़ती थी और वे डोरी से बंधी रहती थीं इससे कई बार खाली होने पर भी दूसरा कोई पसन्दीदा पत्रिका पर पहले पहुँच जाता था। शरद जोशी के लिखे से मेरा पहला परिचय इन्हीं पत्रिकाओं में प्रकाशित उनकी रचनाओं से हुआ था और वे मुझे पसन्द आने लगे थे। फिर हुआ यह कि लाइब्रेरी की पुरानी पत्रिकाओं की रद्दी बिकी जिसे एक दुकानदार ने खरीदा और उनको खरीदी दर से अधिक दर में पत्रिकाओं की तरह बेचना शुरू किया। मैं अपने पास उपलब्ध पैसों से लगभग पाँच किलो कादम्बिनी खरीद लाया था। उनमें सबसे पहले प्रकाशित क्षणिकाओं, फुटनोट के लतीफों और व्यंग्यों को छाँट-छाँट कर पढ़ डाला। शरद जोशी भी इसी दौरान पढ़ डाले गए थे। बाद में जिस राष्ट्रीय स्तर की पत्रिका में मेरी पहली क्षणिका प्रकाशित हुई वह कादम्बिनी ही थी। इसी प्रोत्साहन के कारण बाद में मैं धर्मयुग और अन्य पत्रिकाओं में छोटी-छोटी रचनाओं के माध्यम से छपने लगा था।

1972 में जब से मैं धर्मयुग में छपने लगा था तब वह देश की सबसे अधिक लोकप्रिय, स्तरीय, साहित्यिक और पारिवारिक पत्रिका के रूप में जानी जाने लगी थी। कादम्बिनी के संपादक रामानन्द दोषी का निधन हो गया था और उस पत्रिका स्तर और लोकप्रियता का पतन हो गया था। शरद जोशी उन्हीं दिनों धर्मयुग के प्रमुख व्यंग्यकार के रूप में उभर कर राष्ट्रीय स्तर पर छा गए थे, भले ही परसाई जी अपनी प्रहारक क्षमता के कारण शिखर पर थे और श्रीलाल शुक्ल का रागदरबारी आ चुका था। भारती जी धर्मयुग के कुशल संपादक के रूप में अपनी लोकप्रियता के शिखर पर थे। जैसा कि बशीर बद्र ने लिखा है-

शोहरत की बुलन्दी भी पल भर का तमाशा है
जिस डाल पर बैठे हो वह टूट भी सकती है

सो शोहरत को बनाये रखने के लिए भी प्रयत्न जारी रखने होते हैं। भारती जी को अपना शिखर बनाये रखने के लिए कुछ राजनीति करना पड़ती थी। वैसे तो पहले ही प्रगतिशीलों के समानांतर इलाहाबाद में परिमल गुट सक्रिय हो गया था, भारती जी ने उसका विस्तार राष्ट्रव्यापी कर दिया। सामान्य स्तर पर कहा जाए तो यह लोहियावादी लेखकों का संगठन था जिसको प्रसिद्ध लोहियावादी बद्रीविशाल पित्ती की प्रमुख साहित्यिक पत्रिका 'कल्पना' से बहुत संरक्षण मिला था। धर्मयुग यदाकदा प्रगतिशीलों के खिलाफ कुछ न कुछ लिखवाता रहता था। उसमें प्रकाशित होने वाले या प्रकाशित होने की आकांक्षा रखने वाले लेखक इस बात का ध्यान रखते

थे। सन्दर्भ के लिए बता दूँ कि धर्मयुग में मेरे नाम के साथ दतिया जोड़ दिये जाने से मेरे नाम में जो वैचित्र्य पैदा हुआ था, उससे वह मेरे मामूली लेखन के बाबजूद लोगों की निगाह में खटकने लगा था और इस कारण भी लोग मेरे नाम को जानने लगे थे।

इधर अस्सी के दशक में मध्य प्रदेश में साहित्यिक समझ और रुचि वाले अशोक वाजपेयी का उदय हुआ जिन्होंने भोपाल को सांस्कृतिक राजधानी बनाने का बीड़ा उठा लिया था। वे आईएएस थे, उनके पास पद था, सरकारी पैसा खुल कर खर्च करने के लिए मुख्यमंत्री अर्जुन सिंह का वरद हस्त प्राप्त था। वे जिसको चाहे भोपाल आमंत्रित कर सकते थे, सम्मानित कर सकते थे। उस समय ज़्यादातर साहित्यकार अपने रचनात्मक कर्म को सामने लाने, अपनी पहचान बनाने, और आर्थिक संकटों से जूझ रहे थे। भोपाल ने उन्हें यह अवसर देना शुरू किया। उन्होंने प्रत्येक लोकप्रिय कलाकार को आमंत्रित किया, आकर्षित किया जिनमें प्रगतिशील भी सम्मलित थे, जो अपनी समझ और प्रतिभा के कारण कुछ अधिक ही आगे रहे। परिणाम यह हुआ कि एक प्रतियोगिता सी प्रारम्भ हो गई जो स्वस्थ रचनात्मक प्रतियोगिता कम, अपितु सरकारी संसाधनों, और संरक्षण को अधिक से अधिक हस्तगत करने के प्रयासों की प्रतियोगिता अधिक थी।

शरद जोशी कभी उनके सबसे निकट अभिन्न मित्र होते थे। किन्हीं कारणों से शरद जोशी और अशोक वाजपेयी के रिश्तों में खटास आ गई, यह खटास उनके व्यंग्यों में मुखर होने लगी। अशोक वाजपेयी में अपने पद और शासन के संरक्षण के कारण एक सामंती प्रवृत्ति उभर आई थी, वे असहमति को दबाने की कोशिश करते थे, उन्होंने शरद जोशी के साथ भी यही किया। स्वभाव से अक्खड़ और राष्ट्रव्यापी ख्याति के शरद जोशी ने अपने लेखन से भरपूर प्रतिवाद किया। (मैं खुद तो 1974 से 1989 के बीच लगभग 10 साल तक मध्य प्रदेश से दूर पदस्थ रहा हूँ। ये सारी बातें विभिन्न लोगों के लिखित और मौखिक संस्मरणों व पत्रिकाओं के आधार पर कह रहा हूँ। इसमें कुछ ऊपर नीचे भी हो सकता है।)

मेरे साथ द्वंद्व यह था कि मैं प्रगतिशील जनवादी चेतना से प्रभावित और उसका पक्षधर रहा हूँ किंतु लेखन के क्षेत्र में मेरी जो थोड़ी बहुत पहचान बनी वह गैर प्रगतिशील मंचों से ही बनी। साहित्य के विमर्श में मैं हमेशा प्रगतिशील मूल्यों और राजनीति क पक्ष लेता रहा हूँ इसलिए मुझे लोग इस गुट में शामिल और इसके काले सफेद में भागीदार समझते रहे जबकि मेरी गुट के लोगों से बराबर की दूरी रही व इसके लाभों को न मैंने कभी माँगा, न पाया। अपितु मैं इनके बीच की प्रतियोगिता से उपजी विसंगतियों के मज़े लेता रहा हूँ। मैं प्रगतिशील जनवादी पत्र पत्रिकाएँ पढ़ता था और लोकप्रिय पत्रिकाओं में छुटपुट लिखता था।

कृशन चन्दर, हरिशंकर परसाई से वैचारिक रूप से मैं बेहद प्रभावित था। वे मेरे भी पितृ पुरुष थे, मेरी पहली व्यंग्य कृति की चर्चा करते हुए एक समीक्षक ने यह भी कहा था कि ये परसाई की गैलेक्सी के तारे हैं। जब ख़बरें आनी शुरू हुईं कि परसाई और शरद जोशी के बीच प्रतिद्वंदिता चल रही है, तो मेरा मानस स्वाभाविक रूप से परसाई जी के पक्ष में बनने लगा। मुझे ऐसा लगने लगा कि दोनों दो भिन्न छोर पर खड़े हैं और मुझे परसाईजी के पक्ष में खड़ा होना चाहिए। तब तक मैंने दोनों ही लोगों से ना तो कभी मुलकात की थी और ना ही कोई निजी परिचय था। उधर जनता पार्टी शासन काल आते ही कमलेश्वर ने सरकार के विपक्ष की भूमिका निभाते हुए सारिका में संपादकीय लिखना शुरू किया और धर्मयुग में संपादकीय न लिखने वाले भारतीजी के खिलाफ मोर्चा खोल दिया जिन्होंने कभी जयप्रकाश नारायण के पक्ष में कविता लिखी थी किंतु इमरजैंसी घोषित होते ही धर्मयुग का एक तैयार अंक नष्ट करवा दिया था, जबकि कमलेश्वर ने सरकारी सेंसर बोर्ड द्वारा अनचाही रचनाओं को काला करके छापा और इस तरह एक सन्देश दिया था। कमलेश्वर ने भारती जी को केन्द्रित कर के अपने तीन संपादकीय लेखों का शीर्षक दिया "जो कायर हैं, वे कायर ही रहेंगे"। ।एक ही संस्थान के दो प्रमुख पत्रों के बीच यह प्रतियोगिता बहुत विचारोत्तेजक थी। उत्तर में धर्मवीर भारती ने शरद जोशी से लिखने को कहा तो उन्होंने शीर्षक की पैरोडी बना कर एक व्यंग्य लेख लिखा "जो टायर हैं, वे टायर ही रहेंगे"। इसमें टायर को प्रतीक बना कर कमलेश्वर की बात का उत्तर दिया गया था। कमलेश्वर ने भी परसाईजी से नियमित कालम लिखाना शुरू कर दिया था। इन्हीं दिनों कमलेश्वर को सारिका से निकालने की बात चल निकली, किंतु टाइम्स आफ इंडिया ग्रुप के मालिकों के लिए यह काम कठिन था, क्योंकि न केवल सारिका सबसे चर्चित कहानी पत्रिका बन चुकी थी, अपितु फिल्में लिखना प्रारम्भ कर चुके कमलेश्वर की लोकप्रियता भी चरम पर थी। मालिकों ने सारिका को मुम्बई से दिल्ली ट्रांसफर करने का फैसला कर लिया क्योंकि वे जानते थे कि कमलेश्वर मुम्बई नहीं छोड़ेंगे। इन्हीं दिनों मैंने भावुक होकर उन्हें एक अलग कहानी पत्रिका निकालने के प्रस्ताव का पत्र लिख दिया जिसका आधार आगरा के डोरीलाल अग्रवाल परिवार द्वारा कभी व्यक्त किया गया ऐसा विचार था। कमलेश्वर जी का उत्साह भरा पत्र आया, पर वह विचार पुराना पड़ चुका था और प्रस्तावक उस पर गम्भीर नहीं थे। बहरहाल कमलेश्वर जी ने बहुत सारे आर्थिक लाभ लेकर सारिका छोड़ दी। इस तरह मेरा उन से परिचय हो गया।

मुम्बई से ब्लिट्ज़ जैसा एक अंग्रेजी अख़बार 'करंट' निकलता था जिसने जनता पार्टी सरकार बनते ही इसका हिन्दी संस्करण निकालना शुरू कर दिया था। यह अख़बार तत्कालीन जनता पार्टी सरकार के विरोध में था जिसके संपादक महावीर अधिकारी थे। इसमें कमलेश्वर, परसाई व राही मासूम रज़ा के पूरे पेज के कालम थे। मैंने भी इसमें व्यंग्य कविताएँ लिखना शुरू कर दीं, जो लगातार छपीं। बाद में जब कमलेश्वर जी ने कथायात्रा निकालना चाही तो मैंने भी उनको यथासंभव सहयोग दिया। बाद में जब उन्होंने श्रीवर्षा, जो गुजराती मराठी का प्रमुख साहित्यिक पत्र था,

को हिन्दी में निकाला तो उसमें भी मेरी रचनाओं को स्थान दिया। जब श्रीमती गाँधी ने उन्हें दूरदर्शन का डायरेक्टर नियुक्त किया तो उसे अधर में छोड़ कर चले गए। बहरहाल इस सब के बीच धर्मयुग परिवार में मैं अवांछित मान लिया गया था।

मेरे अन्दर एक हीन भावना थी कि मैंने साहित्य में कोई महत्त्वपूर्ण कार्य नहीं किया है, जो सच भी था, इस कारण से जन्मी भावना यह भी थी कि मुझे कोई नहीं जानता, और मैं कुछ भी लिखता रहूँ कोई गंभीरता से नहीं लेगा। पर यह सच नहीं था। अगर किसी के विरोध में कुछ हो रहा है तो उसे तो ज़रूर ही देखा जाता है। सारिका में प्रकाशित मेरे कुछ पत्र धर्मयुग परिवार को नाराज़ करने के लिए काफ़ी थे।

भूमिका के बाद अब मूल विषय-

शरद जोशी भोपाल छोड़ कर मुम्बई के होटल मानसरोवर में डेरा जमा चुके थे। उन्होंने कवि सम्मेलनों में गद्य व्यंग्य का पाठ करना शुरू कर दिया था। कुछ दिनों बाद वे इंडियन एक्सप्रैस ग्रुप को प्रेरित कर एक हिन्दी पत्रिका निकलवाने में सफल हो गए थे, उन्हें ही संपादक की ज़िम्मेवारी सँभालना पड़ी। मुझे पता चला तो मैंने भी अपनी व्यंग्य कविताएँ भेजीं जिन्हें उन्होंने खुशी खुशी प्रकाशित कीं। यह 1980-81 की बात है, तब मैं हैदराबाद में पदस्थ था। कुछ दिनों में ही वह पत्रिका बन्द हो गई। उन दिनों पारश्रमिक पुरस्कार की तरह लगता था। जब पारश्रमिक नहीं आया तो शरद जोशी को पत्र लिखा जिसके पीछे एक कुटिल इच्छा यह भी थी कि किसी बहाने उनसे पत्र व्यवहार तो हो सके। बहरहाल पत्र व्यवहार तो नहीं हुआ किंतु दो चैक ज़रूर आ गए।

1982 में मेरा ट्रांसफर हैदराबाद से नागपुर हो गया। मैं ट्रांसफर होते ही देश भर के परिचितों व मित्रों को सूचित कर देता था। पत्र पहुँचते ही अशोक चक्रधर का उत्तर आया कि फलाँ-फलाँ तारीख को नागपुर में कवि सम्मेलन है और मैं फलाँ ट्रेन से पहुँच रहा हूँ। उस दिन शनिवार था और ट्रेन दोपहर के बाद की थी। उस दिन एक व्यापारी मेरे ऑफिस में बैठे थे जो अशोक के मुरीद थे, जब यह चर्चा आई तो वे बोले कि चलो मैं भी स्टेशन चलता हूँ। उनकी कार में बैठ कर स्टेशन गए, और उनको लेकर गैस्ट हाउस आए तो पता चला कि शरद जोशी और बालकवि बैरागी भी आ चुके हैं। गैर की कार का प्रभाव पड़ा।

उस दिन पहली बार शरद जोशी से प्रत्यक्ष भेंट हुई। मैंने सकुचाते हुए अपना परिचय दिया तो बोले अरे यार मैं पिछले दिनों ही कॉलेज के कवि सम्मेलन में तुम्हारे दतिया गया था और मैंने तुम्हारे बारे में पूछा था। ओम कटारे के परिवार वालों ने बताया था कि तुम्हारा घर उनके पास ही है पर वे यहाँ नहीं हैं। काफी बातें हुईं, लेकिन बहुत बातें नहीं हो सकीं क्योंकि अशोक के साथ मेरा दूसरा कार्यक्रम था। शायद दामोदर खडसे भी साथ में थे।

कवि सम्मेलन में पाठ के लिए शरद जोशी को आमंत्रित करते हुए बालकवि बैरागी ने अपनी आदत के अनुसार कहा कि परसाई जी के बाद शरद जोशी अकेले ऐसे व्यंग्य लेखक है जिनका अनुसरण हिन्दी के शेष सारे व्यंग्य लेखक करते हैं। यह सुन कर मैं जिसे श्रोताओं की अग्रिम पंक्ति में स्थान मिला था, खड़ा हो गया, और कहा कि मैं इस बात से सहमत नहीं हूँ। इस बात से सनाका सा खिंच गया, खडसे जी ने हाथ पकड़ कर मुझे बैठा दिया। बात आई गई हो गई। अशोक ने शायद शरद जी के कान में कुछ कहा।

सुबह जब स्टेशन पर मित्रों को छोड़ने गया तो दोनों तरफ की ट्रेनें लगभग एक ही समय पर थीं। शरद जोशी जी मिल गए। मैं कुछ शर्मिन्दा सा था, किंतु उन्होंने ऐसा व्यवहार किया जैसे कल कुछ उल्लेखनीय हुआ ही न हो। मेरी शर्ट की तारीफ करते रहे अपने अंदाज़ में बोले अगर यह नीले रंग की होती तो अच्छा होता, आदि।

सुरेन्द्र प्रताप सिंह धर्मयुग छोड़ कर आनन्द बाज़ार पत्रिक ग्रुप की पत्रिका 'रविवार' के संपादक होकर कलकत्ता चले गए थे और उस पत्रिका में व्यंग्य की संभावनाओं को लेकर मेरा उनसे पत्र व्यवहार चल रहा था। उन्हीं दिनों शरद जोशी अशोक वाजपेयी के खिलाफ जम कर लिख रहे थे और रविवार में उनका स्तम्भ 'नाविक के तीर' छप रहा था। मैंने एक कविता लिख कर सुरेन्द्र प्रताप सिंह को भेजी जो उन्होंने कृपा पूर्वक नहीं छापी, पर किसी माध्यम से उसकी भनक शरद जोशी को ज़रूर लग गई होगी। कविता इस प्रकार थी-

जो धर्मयुग में या रविवार में
या साप्ताहिक हिन्दुस्तान में
या यहाँ या वहाँ
या हर जगह या कहीं भी
भोपाल के एक आई ए एस अधिकारी के खिलाफ लिखते हैं
हिन्दी साहित्य में उन्हें शरद जोशी कहते हैं।

इस दौरान मुझे लगने लगा कि अपने आप को लेखक कहने के लिए एक किताब तो होना ही चाहिए। हैदराबाद प्रवास (१९८०) से मैंने के पी सक्सेना से सीखी वह ज़िद छोड़ दी थी कि उस पत्र पत्रिका में नहीं लिखूँगा जो लेखक को पारश्रमिक नहीं देती। यही कारण रहा था कि मेरे पास प्रकाशित लेखों की इतनी सामग्री एकत्रित हो गई थी कि एक संकलन आ सकता था। किंतु अब दूसरी ज़िद थी कि खुद के पैसे से संकलन प्रकाशित नहीं कराऊँगा। मैंने प्रसिद्ध कथाकार से.रा. यात्री जी से बात की। बता दूँ कि मेरी बहुत सारी कमियों, भूलों के बावजूद भी यात्रीजी ने मुझे छोटे भाई जैसा स्नेह दिया है। उन्होंने अपने प्रभाव से मेरी पहली पुस्तक पराग प्रकाशन से छपवा दी। पराग प्रकाशन उन दिनों उभरता हुआ अच्छा प्रकाशन था जिसने अमृता प्रीतम, रवीन्द्र नाथ त्यागी, कन्हैयालाल नन्दन आदि की बहुचर्चित पुस्तकें छापी थीं। प्रकाशक का अहसान उतारने के लिए मैंने लेखक को दी जाने वाली प्रतियों के अलावा स्वेच्छा से लगभग सौ प्रतियाँ ख़रीद लीं। अब इस पासपोर्ट के सहारे अर्थात् पुस्तक भेंट करने के नाम पर मैं किसी भी लेखक से भेंट करने जा सकता था।

धर्मयुग में लेखन कम हो जाने के बाद मैंने अपना ध्यान जिन अन्य पत्रिकाओं पर केन्द्रित किया था उनमें से एक रामाबतार चेतन की

पत्रिका रंग भी थी। चेतन जी मुझे पसन्द करते थे और मेरे लेखों को स्थान दे रहे थे। वे भले ही मामूली सही किंतु हर रचना पर पारश्रमिक देते थे। उन दिनों महाराष्ट्र के किसान नेता शरद जोशी ने एक बड़ी किसान रैली की थी। मैंने उनकी मासिक पत्रिका 'रंग' में एक व्यंग्य लिखा 'निमंत्रण गधों की रैली का'। इसमें एक वाक्य आया था- "अरे भाई, सरकार को क्या मतलब किसानों से, क्या मतलब गधों से! अब मैं तुम से पूछूँ कि सरकार ने किसानों की रैली क्यों निकाली थी, तो इस बात का है तुम्हारे पास कोई जबाब! अरे भाई किसी शरद जोशी को यह ग़लतफहमी हो गई कि किसान मेरे पीछे हैं तो उनका भ्रम दूर करने के लिए उन्होंने दिखा दिया कि देखो कौन ज़्यादा भीड़ जुटा सकता है इसी तरह किसी शरद जोशी को यह ग़लतफहमी हो गई होगी कि ज़्यादा गधे मेरे पीछे हैं तो सरकार उन्हें यह भी दिखाये देती है कि देखो तुमसे ज़्यादा गधों की भीड़ मैं जुटा सकती हूँ......"

अनजाने में यह शरद जोशी जी के भक्तों पर सीधा-सीधा हमला था। इसका कारण शायद यह था कि मैं उन्हें परसाई, व प्रगतिशीलता विरोधी मान बैठा था।

उक्त लेख भी मेरे संकलन में प्रकाशित हुआ था। संकलन चेतन जी को भी भेजा। उन्होंने उस की समीक्षा भी करवायी और खुद भी मुझे एक लम्बा प्रशंसा पत्र लिखा। यह भी लिखा कि अगर कभी रचना पाठ करने के लिए चकल्लस में आना हो तो रचना 'हीरोइन का भाई' पढ़ना। 1985 में मेरा बम्बई जाना हुआ और चेतन जी से मिलने गया। मैं एक दिन का समय लेकर भी दूसरे दिन पहुँचा तो उनकी डाँट भी खायी कि यह बम्बई है कल तुम्हारे इंतज़ार में मैं सब्ज़ी बाज़ार जाने से रह गया। बहरहाल उनका स्नेह मिला। उन्होंने सलाह दी कि कल समय हो तो जाकर शरद जोशी से मिल लेना और किताब दे देना। हाँ समय लेकर जाना और समय पर पहुँचना। मैंने कान पकड़ कर हामी भरी और ऐसा ही किया।

वह एक छोटा सा स्वतंत्र बंगला था। यह बाद में पता चला कि वह बंगला कन्हैयालाल नन्दन जी का था और वे चेतन जी के रिश्ते में बहनोई लगते थे। फर्श पर डनलप का गद्दा था जिस पर सफेद चादर बिछी थी, चारों ओर पुस्तकें बिखरी हुई थीं। मैंने किसी नये व्यक्ति की तरह अपना परिचय दिया तो मुस्करा दिये, किताब के पन्ने पलटते हुए बोले कि यह लेख मैंने पढ़ा है, यह भी पढ़ा है और लगभग सभी तो प्रकाशित हैं। मैंने हामी भरी, भले ही एक दो अप्रकाशित भी थे। फिर मेरी क्लास शुरू हुयी। बोले लोग व्यंग्य के बारे में जानते ही क्या हैं! हमारे यहाँ अभी व्यंग्य की आलोचना का शास्त्र ही विकसित नहीं हुआ वही दो चार शब्द हैं, पैना है, धारदार है आदि आदि। फिर बोले कि मैं मध्यमवर्ग के बारे में इसलिए लिखता हूँ कि उसका पक्ष लेने वाला न कोई संगठन है न पार्टी। परसाईजी इस वर्ग के खिलाफ लिख लेते हैं, मैं नहीं लिखता।

(इसी बीच में (शायद) नेहा ट्रे में चाय का पाट लाकर रख गईं थीं, मुझे इस एटीकेट का ज्ञान नहीं था कि चाय मुझे बनाना चाहिए। थोड़ी देर में वे खुद आईं और उन्होंने ही शक्कर आदि पूछ कर चाय सर्व की। वे कुछ दिन पहले पैर में जल गईं थी, शरद जी ने घाव के बारे में पूछा उन्होंने उन्हें दिखाया।)

इसी वर्ष परसाई जी को पद्मश्री मिली थी। मैंने कहा कि परसाई जी को और काका हाथरसी दोनों को एक साथ पद्मश्री देकर सरकार ने क्या उनका अपमान किया है। वे बोले ऐसा पहले भी हुआ है, धर्मवीर भारती और चिरंजीत को एक साथ मिली है, बच्चन जी और गोपाल प्रसाद व्यास को भी एक साथ मिली थी, होता है। उनसे बहुत सारी बातें सुनने को मिलीं जिन्हें सुन कर मैं मुग्ध था उन्होंने पूछा बम्बई कैसे आये थे? मैंने कहा ऐसे ही बिना किसी कारण। बोले आते रहना चाहिए, व्यंग्य लेखक के लिए ज़रूरी है कि विरोधाभासों का अनुभव करता रहे। यहाँ की ज़िंदगी फास्ट है, आदमी दौड़ता सा रहता है, पर जब मैं भोपाल जाता हूँ तो आटो वाला आराम से बैठा है। सवारी बैठा कर भी वह बीड़ी पीने चला जाता है या अपने साथ वाले से बात करने लगता है। कहीं कोई जल्दी नहीं। यह विरोधाभास व्यंग्य का उत्प्रेरक बनता है। उन्होंने कहा कि वीरेन्द्र, व्यंग्य मुझ से सध गया है, अब मैं कहीं भी, किसी भी विषय पर व्यंग्य लिख सकता हूँ। (उस दिन तो मुझे यह बात हजम नहीं हुयी थी, किंतु वर्षों बाद जब भोपाल आकर बस गया तब मैंने एक फीचर सर्विस के लिए प्रतिदिन व्यंग्य लिख कर परीक्षण किया तो ऐसे ऐसे विषय सूझे कि मुझे खुद आश्चर्य हुआ।)

इसके कई साल बाद मेरी मुलाकात जनवादी लेखक संघ के राम प्रकाश त्रिपाठी जी से हुयी जो परसाई जी से तो परिचित थे ही शरद जोशी के मित्रों में से थे, उन्होंने मेरी सारी ग़लतफहमियाँ दूर कीं और बताया कि परसाई जी ने ज़रूर पूरे देश के सामने अपने व्यंग्य से वैज्ञानिक चेतना का पक्ष रखा है किंतु जीवन में शरद जोशी की प्रगतिशीलता का कोई जबाब नहीं। उन्होंने उनके अनेक प्रसंग सुनाये। मुझे तब तक पता नहीं था कि उनकी पत्नी इरफाना जी हैं और उन्होंने मुस्लिम से शादी की है कि नईम जी की पत्नी और इरफाना जी बहिनें हैं। कि जब वे शादी के बाद ट्रांसफर होकर ग्वालियर गए तो मकान मिलने में संकट होने से वे मुकुट बिहारी सरोज के घर में रहे। मुझे अज्ञानता में की गई अपनी भूलों पर बहुत शर्म आई। 1987 में जनवादी लेखक संघ का राष्ट्रीय सम्मेलन भोपाल में हुआ। रामप्रकाश जी ने उसका स्वागताध्यक्ष शरद जोशी जी को बनाया। वे रवीन्द्र भवन के द्वार पर स्वागताध्यक्ष की तरह ही खड़े थे। मैंने आदतन अपना परिचय सा देते हुए कहा- मैं वीरेन्द्र जैन। उन्होंने गले लगाते हुए कहा- वीरेन्द्र जैन नहीं, वीरेन्द्र कुमार जैन दतिया। और ठहाका फूट पड़ा।

नवभारत टाइम्स में प्रतिदिन लिखते हुए उनके विचार किसी भी प्रगतिशील लेखक पत्रकार से ज़्यादा प्रेरक थे। मैं मुरीद हो गया था। सोचा था कि किसी दिन मौका मिला तो दिल से माफी माँगूँगा। किंतु ऐसा मौका आने से पहले ही उनके निधन का समाचार आ गया था। पाकिस्तान के शायर मुनीर नियाजी की नज़्म का शीर्षक है – हमेशा देर कर देता हूँ मैं।

000

रॉले, कैरी तथा मोर्रिस्विल्ल, नॉर्थ कैरोलाइना

बिंदु सिंह

अमृत वाधवा

बिंदु सिंह
5328 Dewing Dr. Raleigh, NC-27616
मोबाइल-919-247-2692
ईमेल-bindu.tie@gmail.com

अमृत वाधवा
402 Magnolia Birch Ct, Cary NC 27519
मोबाइल-919-414-5494
ईमेल -amrit.wadhwa@gmail.com

(नॉर्थ कैरोलाइना, प्राकृतिक सौंदर्य से भरपूर अमेरिका की एक ऐसी स्टेट है, जिसके वृक्ष इतने ऊँचे हैं कि उनकी ऊँचाई में बड़ी-बड़ी अट्टालिकाएँ, ऊँची-ऊँची इमारतें छिपी रहती हैं। अमेरिका की हर स्टेट कॉउन्टीज़ में बँटी हुई होती है और प्रत्येक कॉउन्टी में कई शहर होते हैं। नॉर्थ कैरोलाइना की वेक कॉउन्टी के तीन शहर रॉले, कैरी और मोर्रिस्विल्ल बड़े लोकप्रिय शहर हैं। रॉले, नॉर्थ कैरोलाइना की राजधानी है। कैरी और मोर्रिस्विल्ल राजधानी के साथ लगे शहर हैं। ढींगरा फ़ैमिली फ़ाउण्डेशन और विभोम-स्वर का हेड ऑफ़िस, मोर्रिस्विल्ल शहर में है।

रॉले की जानकारी दे रही हैं, कवयित्री, स्क्रिप्ट लेखिका बिंदु सिंह और कैरी तथा मोर्रिस्विल्ल के साथ मिलवा रहे हैं कवि और कहानीकार अमृत वाधवा। इन शहरों का दोनों लेखकों ने अपने -अपने अंदाज़ में विवरण चित्र खींचा है। तो आइये, घूमते हैं इन शहरों में... संपादक)

बिंदु सिंह

रॉले, नॉर्थ कैरोलाइना की राजधानी और शार्लोट शहर के बाद इस स्टेट का दूसरा सबसे बड़ा शहर है। इस शहर को "City of Oaks" भी कहा जाता है, क्योंकि यहाँ जगह -जगह पर oak यानी शाहबलूत के पेड़ पाए जाते हैं। इस शहर का नाम सर वाल्टेर के नाम से पड़ा है। यह शहर अमरीका के पहले-पहल नियोजित शहरों में से एक है। आज़ादी की लड़ाई के बाद 1792 में इसे नॉर्थ कैरोलाइना स्टेट की राजधानी नियुक्त किया गया। कहा जाता है कि 1741 में जोल लेन नाम के व्यक्ति ने 1000 एकड़ ज़मीन पर बस एक चर्च और एक सराय खोली थी। जो भी यहाँ से आता-जाता था, वह इस शहर की आबोहवा को इतना पसंद करता था कि धीरे-धीरे यह एक लोकप्रिय जगह बन गई। समय के साथ-साथ यहाँ एक पुलिस चौकी और एक अदालत भी बना दी गई और इस ज़िले को वेक का नाम दिया गया। विलियम क्रिसमिस ने इस शहर को और खूबसूरत बनाने का बीड़ा उठाया। सड़कों का निर्माण हुआ और इनका नाम कुछ राजनीतिज्ञों के नाम पर रखा गया। रॉले शहर का नाम इस बात से प्रसिद्ध होने लगा कि यहाँ सड़के हैं पर मकान नहीं। सन् 1800 में एक बड़ा सा हॉल बनाया गया, जिसमें जनसभाएँ व राज्यसभा की बैठकें, और लोग एकत्रित हुआ करते थे।

1840 से लेकर 1872 तक इस शहर ने बहुत से उतर-चढ़ाव देखे। फैक्ट्रियाँ, फाउन्ड्रीज़ और होटलों का निर्माण होने लगा। श्वेत और अश्वेत दोनों ही वर्गों के लोग तो रहते थे पर यहाँ भी बाकि देश की तरह उनमें ऊँच -नीच का फर्क रहता था, जो हवा सारे देश में थी उसका असर इस छोटे से शहर में भी था। अश्वेत यहाँ इस छोटे शहर में और भी शोषित हो रहे थे। बस एक ही अच्छी बात थी कि साथ-साथ कुछ जगहों पर इस विविधता को दूर करने की कोशिश भी थी और कहीं-कहीं अश्वेत और श्वेत साथ-साथ "अपार्टमेंट बिल्डिंग" में रहने की कोशिश करने लगे। इसी समय 1865 में शॉ यूनिवर्सिटी का निमार्ण किया गया, जिसकी ख़ासियत यह थी कि यह पहला "अफ्रीकन अमेरिकन" कॉलेज तो था ही साथ ही साथ इसमें अश्वेत महिलाओं के लिए पढ़ने का भी आयोजन था। फिर 1867 में सेंट अगस्टीन कॉलेज बना जिसमें कम कमाने वाले लोग भी पढ़ सकते थे। इस तरह रॉले बन गया ऐसा शहर जो पढ़ाई-लिखाई में हमेशा आगे रहने लगा।

शहर में बेहतर बिजली और पानी पहुँचने के लिए "कैरोलाइना बिजली और पावर" जैसी

कंपनी की घोषणा की गई। इससे यह हुआ की और भी उद्योगों ने उड़ान भर ली और धीरे-धीरे यह राज्य दूसरे शहरों के मुकाबले में आगे बढ़ने लगा।

1920 में पहले रेडियो स्टेशन की स्थापना की। अस्पताल, स्कूल और चर्च सभी जगह उमड़ने लगे। जिससे हर वर्ग के लोग साथ-साथ काम करने लगे। डॉक्टर, इंजीनियर, प्रोफ़ेसर, अध्यापक इन सबकी संख्या बढ़ने लगी और यह शहर साइंस और टेक्नोलॉजी के लिए जाना जाने लगा। यही नहीं संगीत की दुनिया में भी रॉले पीछे कैसे रहता, 1932 में नॉर्थ कैरोलाइना सिम्फनी का भी आयोजन किया गया। रॉले मेमोरियल ऑडिटोरियम का भी निर्माण किया गया जो आज भी है और यहाँ आज भी हर तरह के आयोजन किये जाते हैं।

1959 में रिसर्च ट्रायंगल पार्क की स्थापना से यह 21वीं सदी तक आते -आते अमेरिका का सबसे सुधड़ शहर बन गया। इस शहर का नाम नॉर्थ कैरोलाइना स्टेट यूनिवर्सिटी के साथ जुड़ा हुआ है और साथ ही साथ यह RTP - रिसर्च ट्रायंगल पार्क का हिस्सा भी, जिसमें विश्व प्रसिद्ध ड्यूक यूनिवर्सिटी और चैपल हिल यूनिवर्सिटी भी शामिल हैं।

1970 में पहले अश्वेत मेयर क्लारेंस लिटनेर को नियुक्त किया गया, जिसकी वजह से इस वर्ग के लोग छोटे बड़े व्यापार खोलने लगे और शहर विकास की ओर बढ़ने लगा।

1976 में वेक कॉउन्टी ने रॉले के स्कूलों एक नई पहचान दी। 1996 में यहाँ का अपना चॅनेल WRAL टीवी सबसे पहला उच्च तकनीक को प्रयोग करने वाला विश्व का सबसे पहला चैनल बना। 1997 में हॉकी की देश प्रसिद्ध टीम ने रॉले की छत्रछाया से कैरोलाइना हुर्रिकानेस के नाम से खेलने का निर्णय लिया, आज यह आइस (ice) हॉकी की विश्व भर की सबसे बलवान टीम मानी जाती है।

रॉले एक ऐसा शहर बन गया जिसे "नुम्बओ क्वालिटी ऑफ़ लाइफ इंडेक्स" ने दुनिया भर के शहरों में नंबर दो का दर्जा दिया है। यह इंडेक्स दुनिया के 227 उच्च कोटि के शहरों को जाँच करके ही इस परिणाम पर

पहुँचा है। यही नहीं रॉले को अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर दुनिया का सबसे बेहतरीन "रिसर्च सेंटर " भी माना जाता है, जिसके साथ तीन सबसे बड़ी यूनिवर्सिटी भी जुड़ी हुई हैं। इस शहर में दुनिया भर में सबसे अधिक पीएँच.डी पाए जाते हैं। जी हाँ, यहाँ और शहरों की तुलना में शिक्षा का स्थान बहुत ही ऊँचा है।

रॉले की आबोहवा - मस्त, मौसम - सुहावना और यह कहना ग़लत न होगा कि चारों ऋतुओं से यह भरा-पूरा है। यहाँ रहते मुझे तीस वर्ष हो गए हैं और गर्मियों की धूप अक्सर मुझे दिल्ली की याद दिलाती है। एक दो हफ्ते सूरज अपनी चरम सीमा से गर्मी देता है पर जैसे ही गर्मी अधिक होने लगती है, बारिश की ठंडी फुहार उसे शांत कर देती है। गर्मियों में शाम को टहलने का यहाँ अपना ही मज़ा है। फिर आता है पतझड़ का मौसम जो की इतना सुहावना रहता है, मैं उन नज़ारों को शब्दों में नहीं बाँध सकती। पेड़ के पत्ते गिरने से पहले अपना रंग केसरी, लाल, पीले मदभरे रंगों में बदलते हैं। इस ऋतु में तापमान पूरा दिन इतना सुहावना रहता है कि एक साथ नदी किनारे और पहाड़ों का मज़ा आ जाता है।

फिर आती है सर्दी। मौसम इतना प्यारा लगता है क्योंकि दिन में सौंधी-सौंधी धूप का सेक लगता है और शाम की ठण्ड गरम-गरम चाय का पूरा मज़ा देती है, सोने पे सुहागा यह है कि कभी कभार की बर्फ का पड़ना प्रकृति के इस नज़ारे का भी मज़ा दे जाती है।

फिर बसंत तो हर तरह फूलों की बहार ले आती है। सबसे खूबसूरत बात यह है कि रॉले में हरियाली आमतौर पर बेशुमार है। जहाँ दृष्टि घुमाएँ लहलहाते पेड़ और फूल अथवा पौधे नज़र आते हैं। बड़े शहर की सभी खूबियों के साथ ऐसा महसूस होता है जैसे किसी छोटे से, प्यारे से गाँव का आनंद उठा रहे हों।

हर चीज़ में कोई न कोई खामी तो होती ही है, यहाँ के मौसम में भी एक कमी तो है।

हर साल यहाँ गर्मी और पतझड़ के बीच के समय में टॉरनेडो आने की आशंका लगी रहती है, जो अपने साथ मानसून की बारिश और तेज़ हवाएँ लाता है। 1996 और 2016 के आए टॉरनेडो इस बात की मिसाल हैं कि कुदरत के प्रकोप से कोई नहीं बच सकता।

रॉले के मध्य बिंदु या केंद्र में 500000 वर्गफ़ीट का "कन्वेंशन सेन्टर" है, जहाँ हर साल "एक "International Festival" का आयोजन किया जाता है जिसमें लगभग 50 समुदायों के लोग हिस्सा लेते हैं। हर वर्ग अपना-अपना पहरावा, संगीत नृत्य, भोजन अथवा अपनी-अपनी संस्कृति का प्रदर्शन करता है। हज़ारों की संख्या में लोग इसमें भाग लेते हैं और आते हैं। जैसे मेला सा लग जाता है। सबसे मज़े की बात यह है कि इसी तरह का दिवाली मेला भी हर साल होता है; जिसमें केवल भारतीय संस्कृति का ही प्रदर्शन होता है। लाखों की संख्या में लोग आते हैं और भारतीय, संगीत, कला, पहरावा और ज़ेवरों और खानों का आनंद उठाते हैं।

रॉले के डाउन टाऊन में 100 साल से भी पुरानी इमारतें और आलीशान मकान हैं।

यहीं पर अलग-अलग सरकारी भवन और म्यूज़ियम भी स्थित हैं। हम भारतीयों के लिए बड़े ही गर्व की बात है कि श्री मोहनदास करमचंद गाँधी जी का पुतला रॉले के बच्चों के म्यूज़ियम में स्थापित है। इस शहर में भारतीय संस्कृति का ख़ासा बोलबाला है। जगह-जगह हिंदुस्तानी रेस्टोरेंट और दूकाने हैं। यहाँ के लोग भारतीय संस्कृति से काफी प्रभावित हैं और हमारी मेहनत तथा काम करने के तरीके से ख़ुश रहते हैं, इसीलिए हमारी सब प्रथाओं में भाग भी लेते हैं।

Forbes पत्रिका के अनुसार रॉले सबसे

अधिक तरक्की पाने वाले शहरों में से एक है। यही नहीं यहाँ के लोगों को सबसे बुद्धिमान होने का ओहदा भी दिया गया है।

Time पत्रिका ने इस शहर को देश में तीसरे दर्जे का नंबर दिया है; जहाँ सबसे अधिक मात्रा में पढ़ने वाले लोग बस्ते हैं।

भारतीय यहाँ अपनी धरोहर को कायम रखने के लिए, बच्चों को अपनी संस्कृति से जोड़े रखने के लिए अपनी भाषा हिन्दी भी पढ़ाते हैं, कॉलेज में भी हिन्दी और उर्दू दोनों पढ़ाई जाती हैं।

अब रॉले से चलते हैं कैरी और मोर्रिस्विल्ल में, जो रॉले के साथ जुड़े हुए शहर हैं; जिन्हें मिनी भारत कहते हैं, इसमें भारतीयों की बहुलता है। गतिविधियों में भी भारतीयों का बोलबाला है।

कैरी और मोर्रिस्विल्ल, दोनों शहरों के बारे में बताएँगे मेरे साथी लेखक अपनी एक कहानी में-

दूर देश में बसा मिनी भारत

अमृत वाधवा

आर डी यू (RDU) हवाई अड्डे के पास, दीया ने विमान की खिड़की से नीचे देखा। हरे भरे पेड़, पतझड़ के मौसम के रंग, कालीन सी लगती घास, नीले पानी की झील, बहती हुई नदी, छोटे-बड़े घर और घुमावदार सड़कों को देख दीया का मन खुश हो गया ! धूल का एक कतरा नहीं और हवा में सूरज की किरणें समाई हुईं ! ऐसा लग रहा है कि भगवान् ने सबसे साफ जगह बनाई है और जैसे एक चित्रकार ने कैनवस पर एक दृश्य खींचा हो ! उसने कहीं पढ़ा था कि कैरी, नॉर्थ कैरोलाइना बहुत सुंदर शहर हैं, पर यह तो पृथ्वी पर स्वर्ग है।

एयरपोर्ट पर उसकी सौतेली बहन केंडेल उसका इंतज़ार कर रही है। दीया अपने मृत पिता की दूसरी पत्नी और सौतेली बहन के साथ नहीं रहना चाहती थी। जब दीया सिर्फ चार साल की थी, उसके पिता ने उसकी माँ को तलाक दे दिया और भारत छोड़ दिया था। उसकी 17 साल की सौतेली बहन केंडेल ने उसे अपने पिता की मृत्यु के बारे में ईमेल किया था, पर वह तब यहाँ आ नहीं सकी और

अब अपनी कंपनी के काम से आई है और शायद अपने पिता के पिछले २० वर्षों का पता लगाने के लिए गोरी सौतेली माँ और सौतेली बहन के साथ रहने के लिए वह सहमत हो गई।

केंडेल ने उसे गले लगाने की कोशिश की लेकिन दीया ने उसे रोक दिया। वह अपनी सौतेली बहन से नफरत करती है।

केंडेल ने हिन्दी में पूछा "आप कैसे हैं?"

एक आधी अश्वेत लड़की की अच्छी हिन्दी से आश्चर्यचकित, दीया ने पूछा "तुमने हिन्दी कहाँ से सीखी?"

"हिन्दू मंदिर में और कॉलेज में।"

"क्या यहाँ के कॉलेजों में हिन्दी पढ़ाते हैं?"

"हाँ। यू एन सी, एन सी और ड्यूक तीनों विश्वविद्यालयों में हिन्दी के प्रोफ़ेसर हैं।"

"तुमने हिन्दी क्यों सीखी?"

"हमारे पिता चाहते थे कि मैं हिन्दी सीखूँ। सभी देसी पिता चाहते हैं कि उनके बच्चे हिन्दी सीखें।"

"तुम्हारी हिन्दी ठीक नहीं है। तुम्हें कहना चाहिए मेरे पिता चाहते थे कि मैं हिन्दी सीखूँ।"

"वे आपके पिताजी भी थे। पिताजी ने हमेशा आपके बारे में बात की और मेरा नाम भी आपके नाम की तरह रखा!"

दीया ने आगे बात करना उचित नहीं समझा !

हवाई अड्डे से घर जाते समय, दीया आस -पास की सुंदरता को निहारती रही। यह दृश्य उतना ही सुंदर था जितना कि यह विमान से दिखाई देता है। अचानक घर के रास्ते में, दीया ने एक सफ़ेद इमारत की पार्किंग में बहुत सारे भारतीय मूल के लोगों को देखा !

उसकी जिज्ञासा को समझते हुए, केंडेल ने कहा "यह सत्य नारायण मंदिर है। दीदी। सारे गुजराती यहाँ आते हैं। हर दीवाली गुजरातियों का यहाँ बहुत बड़ा उत्सव होता है।"

"तुमने मुझे दीदी क्यों कहा?"

"आप मेरी बड़ी बहन हैं। पिताजी ने कहा था कि आप मेरी दीदी हो।"

"मुझे दीया नाम ही पसंद है, मुझे दीया ही कहें ! मैं आपकी बहन नहीं हूँ।"

केंडेल ने धीरे से कार को ट्रैफिक लाइट पर रोका और दीया को एक भी झटका नहीं लगा। दीया 17 साल की केंडिल की हिन्दी से पहले से ही प्रभावित थी। लेकिन उसकी ड्राइविंग, परिपक्वता और अच्छे शिष्टाचार भी बहुत प्रभावशाली लगे। जैसे ही वे घर पहुँचे, केंडेल ने दीया को पूरा घर दिखाया।

दीया ने घर में एक मंदिर देखा।

"पिताजी हर सुबह शाम यहाँ प्रार्थना करते थे।"

"लेकिन तुम्हारी माँ हिन्दू नहीं है।"

"माँ ईसाई हैं। मैं हिन्दू और ईसाई दोनों हूँ। पिताजी ने हमेशा कहा कि केवल एक भगवान् है।"

घर का मुख्य दरवाज़ा खुला और एक पतली दुबली श्वेत महिला घर में दाखिल हुई।

"तुम्हारा स्वागत है प्रिय। मैं केंडेल की माँ, जेनिफ़र हूँ। मुझे खुशी है कि आपने कुछ समय के लिए हमारे साथ रहने का फैसला किया।" जेनिफ़र ने अंग्रेजी में बात की।

"मेरे पिताजी की मृत्यु कैसे हुई?", दीया ने पूछा।

"एक सड़क दुर्घटना में। वे बहुत ही सुरक्षित ड्राइवर थे लेकिन एक ट्रक ने उनकी कार को टक्कर मार दी।"

"उन्होंने हमेशा आपके बारे में बात की थी।" केंडेल ने कहा

"मैं भारतीय शाकाहारी भोजन का आदेश देने जा रही हूँ। आप क्या खाना चाहती हैं?"

केंडेल ने विषय बदल दिया।

"क्या यहाँ भारतीय भोजन घर मँगवाया जा सकता है?"

"हाँ। कैरी एरिया में 200 से अधिक भारतीय रेस्त्रां हैं।"

"क्या वे अच्छे हैं?"

"कुछ बेहद अच्छे हैं। कुछ अच्छे हैं। कुछ घर पर खाना बनाते हैं और होम डिलीवरी करते हैं। मुझे वे ज़्यादा पसंद हैं।" पनीर, दाल और रोटियाँ स्वादिष्ट थीं। दीया को लगा कि यह घर का बना खाना है।

केंडेल को रोटी और दाल हाथ से खाते देख दीया ने पूछ ही लिया!

"तुम्हें भारतीय खाना पसंद है ?"

"पीली दाल और रोटी पिता जी को बहुत अच्छी लगती थी! मुझे भी बहुत पसंद है!"

थक कर चूर हुई दीया जल्दी ही सो गई।

अगले दिन, शनिवार की सुबह, दीया केंडल को सुबह 8 बजे तैयार देखकर हैरान रह गई।

"मैं कत्थक क्लास में जा रही हूँ। क्या आप साथ चलोगे? आप साथ चलो, बहुत मज़ा आएगा।"

दीया केंडल के साथ चल पड़ी। "कत्थक क्लास तो नहीं लेकिन कैरी की गलियों को देख लेगी", दीया ने सोचा।

"तुम हर शनिवार को कत्थक क्लास जाती हो?"

"बचपन से जब से मुझे याद है, पिता जी हमेशा ले कर जाते थे। वो मुझे छोड़ के घूमने जाते थे।"

छोटी बड़ी सड़कों को पार कर, केंडल ने कार को चैपल हिल रोड पर स्थित कत्थक स्कूल पर दस मिनट में ही पहुँचा दिया।

कत्थक क्लास कमाल की थी। केंडल और उसके सात साथी बहुत ही अच्छा नृत्य कर रहे थे ! दीया को लगा की वह एक बॉलीवुड की नृत्यांगनों का नृत्य देख रही हो।

"तुम तो बहुत अच्छा नृत्य करती हो।"

"मैं बचपन से सीख रही हूँ। कैरी दीवाली में' हमारा ग्रुप नृत्य करेगा। आज शाम को भी हम मंदिर में गरबा करने जाएँगे। आप को चलना पड़ेगा।"

"चलो मैं आपको को यहाँ की एक सुंदर लेक दिखाती हूँ।" केंडल दीया को क्रैबट्री लेक ले गई।

"यह झील तो बहुत ही सुंदर है!", दीया ने झील की बहुत तारीफ की।

"इस एरिया में बहुत सारी झीलें हैं।", केंडल ने कहा!

"पिता जी यहाँ अक्सर आते थे। यह उनकी सबसे मनभावन जगह थी। मैं उनके साथ हमेशा आती थी।"

घर पहुँचते-पहुँचते दिन का एक बज गया था। जेनिफ़र ने खाना बना के रखा था।

खाना खाते ही, केंडल ने अपने फ़ोन का मैसेज पड़ते हुए कहा, "कल मुझे गुरुद्वारे जाना है ! मेरी दोस्त सिमरण का जन्म दिन है।"

"यहाँ पर गुरुद्वारा भी है?"

"बहुत बड़ा सा गुरुद्वारा है! मैं कभी-कभी जाती हूँ।"

"इसके पिता ने इसे पूरा भारतीय बनाया है।", जेनिफर ने इंग्लिश में कहा।

गुरुद्वारे कल सुबह जाना है, लेकिन आज श्याम को हिन्दू भवन में गरबा है। सोमवार से तो स्कूल और दीया को तो दफ्तर जाना होगा।

शाम को केंडल दीया को हिन्दू भवन ले गई। हिन्दू भवन में तक़रीबन दो हज़ार लोगों की भीड़ थी। स्त्रियों ने सुंदर-सुंदर रंग बिरंगे लँहगा- चोली पहने थे और पुरुषों ने भारतीय कुरता पायजामा। दीया ने भी सब के साथ मिल कर रात एक बजे तक गरबा किया। दीया कभी गुजरात तो नहीं गई थी लेकिन कैरी में गुजराती खाने और गरबा का पूरा आनंद लिया।

अगली सुबह केंडल दीया को गुरुद्वारे ले गई। गुरुद्वारे में शब्द कीर्तन और गुरबाणी के बाद सब संगत के साथ बैठ कर लंगर किया। गुरुद्वारे में ज़्यादतर सिख लोग थे। दीया जानती थी कि विदेश में काफी गुरुद्वारे हैं, लेकिन उसे यह नहीं पता था कि गुरुद्वारे के रागी पंजाब से बुलाए जाते हैं जो शुद्ध गुरबाणी में कीर्तन करते हैं और हर छोटी-बड़े रियाज़ का ख़याल रखते हैं।

गुरुद्वारे से लौटते हुए दीया ने पूछा "क्या पिता जी गुरुद्वारे आते थे?"

"जी ! जब भी रविवार को मौका मिलता था। यहीं पर उनके काफी सिख दोस्त भी बन गए। सिमरण उनके ही दोस्त की बेटी है !"

शाम को केंडल कॉलेज के होस्टल लौट जाने के पहले कह गई, "माँ आपका ख़याल रखेंगी। मैं शुक्रवार को वापस आ जाऊँगी। सुबह माँ आपको दफ्तर छोड़ देंगी और शाम को ले भी आएँगी।"

रात को जेनिफ़र ने दीया को बताया कि कैसे उसके पिता हमेशा भारत के बारे में बात करते थे। उसके पिता भारतीय सभ्यता से जुड़ी हर संस्था के साथ काम करते थे। उसके पिता ने केंडल को भारत के हर राज्य और भाषा के बारे में बताया था और हिन्दी की शिक्षा दिलवाई।

अगले दिन अपने दफ़्तर में दीया को भारतीय मूल के बहुत लोग मिल गए। सुजाता ने तो दीया को शाम में अपने घर नवरात्रि पूजा के लिए भी बुला लिया। सुजाता के घर में गोलू की सजावट पार्शिनय थी। सुजाता के माता-पिता कर्नाटक से कैरी आ कर बस गए थे। सुजाता ने दीया को दक्षिण भारतीय मंदिर भी दिखाया। इस मंदिर का सामान और कारीगर भारत से आए थे। सुजाता ने बताया की कैरी में चार मंदिर हैं - हिन्दू, सत्य नारायण, दक्षिण भारतीय और साई बाबा !

शुक्रवार को केंडल जल्दी ही आ गई और दीया को दफ्तर से ले लिया। फिर वह उसको कैरी की अलग-अलग सड़कों पर ले गई। हर

सड़क पर दोनों तरफ पेड़ और पेड़ों के पीछे छोटे बड़े घर बन हुए हैं। जेनिफ़र और केंडल का घर भी ऐसा ही है। पेड़ों का रंग बदल रहा है। शरद ऋतु की ठंडी हवा में लाल, हरे, केसरी, पीले रंगों के पेड़-पत्ते देख कर लग रहा है कि जैसे वह सृष्टि की बारात हो। दीया ने भगवान् के बनाए प्राकृतिक सौंदर्य का आदर किया।

"पिता जो को शरद ऋतु बहुत भाती थी। वे पेड़ों से गिरते रंग-बिरंगे पत्तों के साथ खेलते थे। इस ऋतु में वे हमेशा घर के बाहर ही रहते थे।"

दीया को एक सप्ताह हो गया और वह बहुत खुश है। एक सप्ताह में दीया यह जान गई कि उसके पिता जी एक सीधे सादे इंसान थे ! दीया ने अपने पिता जी के जीवन का थोड़ा सा रूप देख लिया। लेकिन अभी तक केंडल ने उसको पिताजी के बारे में ज़्यादा बताया। हालाँकि केंडल दीया के साथ काफी घुल मिल गई थी पर दीया को जेनिफ़र से बहुत कुछ पूछना था।

अगले दिन केंडल दीया को कैरी दीवाली मेले में ले गई। अभी दीवाली दूर थी परन्तु बाहर खुले मैदान में होने की वजह से सर्दी शुरू होने के पहले मेला लगा देते हैं। मेले में हर तरह के भारतीय वस्त्र, पंजाबी सूट, भारतीय भोजन, असली और नकली गहने बिक रहे थे। पीछे मंच पर बॉलीवुड के गीतों पर भिन्न-भिन्न नृत्य हो रहे थे। शाम को केंडल का ग्रुप कत्थक का प्रदर्शन कर रहा था। सब प्रतिभागियों ने मंच वाली पोशाक पहनी हुई थी। करीब दस हज़ार लोगों की भीड़ देख दीया को लगा जैसे वह भारत में ही है।

केंडल ने बताया की कैरी दीवाली अब व्यवसाय की तरह बन गया है। उसे बहुत सारे दूसरे कार्यक्रम अधिक पसंद है। रामलीला और रावण दहन बहुत अच्छे लगते है; क्योंकि वे भारतीय सभ्यता का सलीके से प्रचारण करते है और बच्चों को बहुत शिक्षा प्रदान करते है। मोर्रिस्विल्ल में सालाना कवि - सम्मेलन भी होता है जिसमे भारत के प्रसिद्ध कवि अपनी रचना सुनाते हैं। भारतीय स्वतंत्र दिवस पर परेड और गाँधी जयंती भी मनाई जाती है।

"क्या तुम कभी कवि सम्मलेन में कभी गई ?"

"पिता जी हर साल जाते थे और उसकी बहुत तारीफ करते थे।"

दीया यह सब सुनते हुए सोच रही थी कि उसके पिता भारत को क्यों इतना याद करते थे ! कैरी में तो भारत ही बसा है। अब वह 17 साल की लड़की से यह कैसे पूछे? फिर भी उसने पूछ ही लिया।

"मेरे पिता जी भारत को क्यों इतना याद करते थे?"

केंडल ने एक क्षण सोचा और कहा "भारत को नहीं, वह आपको याद करते थे दीया।"

अगले दिन जेनिफ़र और केंडल दीया को कैरी शहर की मुख्य सड़क पर ले गए; जहाँ पर कैरी के स्थानीय दफ्तर हैं। सरकारी दफ्तरों के साथ कैरी का मुख्य पुस्तकालय, कैरी का रेल गाड़ी स्टेशन, कैरी का सबसे पुराना होटल, नया फुहारा और ढेरों दुकानें देख कर दीया को चंडीगढ़ की याद आ गई।

केंडल ने बताया "हम यहाँ इस फुहारे के पास बैठ कर आइस क्रीम खाते थे।"

दीया को अहसास हुआ कि केंडल दीया को हर उस जगह ले कर जा रही थी; जहाँ वह पिता जी के साथ जाती थी। दीया सोच में डूब गई। काश! पिता जी ने उनको न छोड़ा होता।

केंडल की आवाज़ ने उसका ध्यान तोड़ा- "दीया, देखा आपने यहाँ कोई ऊँची इमारत नहीं है। यहाँ पर सिर्फ दो मंज़िल की इमारत बन सकती है। वातावरण और प्राकृतिक सुंदरता को बनाए रखने के लिए यह निर्णय लिया गया था।"

कैरी और मोर्रिस्विल्ल शहर साथ-साथ हैं और एक जैसे ही हैं, कोई अंतर नहीं। यह देखिए सड़क पार करते ही मोर्रिस्विल्ल शुरू हो गया। भारतीयों से भरे, भारतीयता के रंग में रंगे दो भाइयों जैसे या दो बहनों जैसे।

दीया ने वह प्रश्न जेनिफ़र से पूछ लिया जो वह वर्षों से पूछना चाहती थी, "आपको कभी उन्होंने बताया कि वह हमें क्यों छोड़ गए ?"

"बस यह ही कहा की कहीं कोई ग़लती हो गई। तुम्हारे पिता जी को बहुत दु:ख था कि उनका और तुम्हारी माँ का तलाक हुआ। वह तुम्हें बहुत याद करते थे और याद करके दुखी होते थे। कभी भी तुम्हारी माँ के बारे में कुछ बुरा नहीं कहा।"

"वह कैसे इंसान थे ?"

"वह बहुत अच्छे इंसान थे और हमेशा सबके बारे में सोचते थे। हर क्षेत्र में सबसे आगे थे। केंडल बिल्कुल अपने पिता की तरह है - भावुक, मेहनती और निष्ठावान।"

रात को घर पर जेनिफ़र दीया के लिए एक पेटी ले कर आई।

"इसमें तुम्हारे पिता जी का कुछ सामान है, यह तुम्हारे लिए है। आप अपनी पैकिंग कर लें उसके पहले देना चाहती हूँ।" दीया के जाने का समय आ गया था। दीया ने पेटी खोली। पेटी में दीया के बचपन की तस्वीरें, बचपन के कपड़े और कुछ किताबें थी। उसमें कुछ और भी बंद डिब्बे भी थे।

"वह जब भी केंडल के लिए कुछ लाते थे, साथ में आपके लिए भी लाते थे।"

अगले दिन केंडल दीया को हवाई अड्डे छोड़ने ले गई। दीया को लगा ही नहीं कि दस दिन बीत गए और भारत लौटने का वक़्त आ गया।

हवाई अड्डे पर दीया ने केंडल को धन्यवाद कहा- "केंडल, तुम्हारा बहुत-बहुत शुक्रिया जो तुमने मुझे कैरी और मोर्रिस्विल्ल दिखाया और वे सब जग़ह दिखाईं, जहाँ पिता जी जाते थे। मैंने दस दिन में पिता जी का थोड़ा सा जीवन देख लिया।"

केंडल ने पूछा "आपको यहाँ में सबसे अच्छा क्या लगा ?"

"दूर देश में बसा मिनी भारत और उससे भी एक बहुत अच्छी चीज़।"

केंडल ने पूछा, "कौन सी बहुत अच्छी चीज़ दीया?"

"मेरी प्यारी सी गोरी सुंदर बहन !"

"आप बहुत अच्छी हैं दीया!"

दीया ने बढ़कर केंडल को गले लगा लिया और प्यार से कहा- "मुझे दीदी कहो। मैं बड़ी बहन हूँ।"

०००

आलेख

संकटकालीन समय में रचे विश्व साहित्य:एक आत्मविश्लेषण और उम्मीद की किरण

डॉ. नीलाक्षी फुकन

डॉ. नीलाक्षी फुकन
549 Pilot Hill Drive, Morrisville, NC 27560 USA
मोबाइल-919-949-1618
ईमेल-nilakshi_phukan@yahoo.com

"कोरोना वायरस"–विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO) ने जिसे वैश्विक महामारी के रूप में घोषित किया है, केवल एक महामारी का भयंकर रूप ही नहीं बल्कि आधुनिक मनुष्य जीवन का एक अभिशाप बन के सामने आया है। कोरोना वायरस से अब तक पूरी दुनिया में पैंतीस मिलियन से भी ज़्यादा लोग संक्रमित हुए हैं और एक मिलियन से ज़्यादा लोगों की मृत्यु हुई है। अमेरिका की जॉन हॉपकिन्स यूनिवर्सिटी के ऑकड़ों पर लोगों की निगाहें टिकी हुई है। अब तक अमेरिका में दो सौ हज़ार से भी ज़्यादा जानें गई हैं। यह सच है कि कोरोना वायरस का संक्रमण विश्व भर में हर मिनट बढ़ रहा है, लेकिन तथ्यों के मुताबिक मृतकों की तुलना में बचने वाले तथा स्वस्थ हुए लोगों की संख्या ज़्यादा है, जो एक उम्मीद की किरण साबित हुई है और लोगों के मन में हौसला बाँध रही है। इस समय दुनिया भर के छब्बीस मिलियन से भी ज़्यादा लोग इस संक्रमण से स्वस्थ हुए हैं। हाँ यह ज़रूर है कि इस महामारी से पूरा विश्व आक्रांत है और उसका समाधान ढूँढ़ने में विश्ववासी एक साथ जुटे हुए हैं।

इतिहास के पन्नों में वर्णित है कि ऐसा संकट, ऐसी महामारी, ऐसी संकटकालीन परिस्थिति पहले भी आई थी, जिसने मनुष्य जीवन को झकझोर कर रख दिया था। कालक्रमानुसार कुछ प्रमुख महामारियों को अगर हम देखे तो सबसे पहले आती है, चौदहवीं सदी में इंग्लैंड की "ब्लैक डेथ" जिसमें एक तिहाई आबादी मारी गई थी। सोलह सौ सैंतालीस (1647) सदी का "पीला बुखार" (Yellow Fever) का प्रकोप जो आफ्रिका के बारबाडोस द्वीप पर फैला था। अठारह सौ अठहत्तर (1878) में, अमेरिका की मिसिसिपी नदी की घाटी में इस व्यापक महामारी में लगभग बीस हज़ार लोग मारे गए थे। अठारह सौ सतरह (1817) में एशियाई

महामारी "हैज़ा" (Cholera) को कौन भूल सकता है ? अब भी हर साल, दुनिया भर में 1.3 से 4 मिलियन लोगों को संक्रमित करता है और हैज़ा की वजह से डेड़ लाख से भी ज़्यादा लोग मर रहे हैं। उन्नीस सौ अठारह (1918) की मुंबई में फैले इन्फ्लुएंजा फ्लू, जिसने करीब दो करोड़ लोगों को मौत के आगोश में सुला दिया था। इधर अमेरिका में उन्नीस सौ अठारह (1918) में "स्पैनिश फ्लू" से मरने वालों की संख्या संभवत: सौ मिलियन से भी अधिक है, जो मानव इतिहास में सबसे घातक महामारियों में से एक है। हालाँकि आयुर्वेद के ग्रंथों में भी चेचक (chicken pox) का वर्णन उल्लेख मिलता है लेकिन अभी हाल ही में दो हज़ार तेरह (2013) में चेचक के कारण दुनिया भर में सात हज़ार मौतें हुई थी। उन्नीस सौ अस्सी (1980) के दशक की शुरूआत से उन्नीस सौ अठारह (1918) में एड्स की वजह से दुनिया भर में अनुमानित बत्तीस मिलियन लोगों की मृत्यु हुई थी। अभी हाल ही में दो हज़ार तेरह से चौदह (2013–2014)में अफ्रीका का इबोला वायरस जिसमें छह हज़ार से भी ज़्यादा लोगों की मृत्यु हुई। और अब कोरोना का प्रकोप, संक्रामक रूप। वास्तवत: मनुष्य के लिये एक और परीक्षा की घड़ी सामने आई है।

ऐसी संकटकालीन परिस्थिति में हमने हमेशा देखा है कि दुनिया भर के लोगों ने सांगठनिक रूप से इसका सामना किया था। यह अत्यंत ज़रूरी भी है कि ऐसे कठिन समय में, मार्गदर्शन के लिये, अदृश्य शत्रु से परित्राण पाने के लिये एकजुट होकर कार्य किया जाए। लेकिन करोना महामारी ने तो मनुष्य जीवन और समाज, इन शब्दों के मतलब को यानी मानों को ही बदल दिया है। नई दृष्टि से मनुष्य जीवन को देखने तथा नए तरीके से समाज के स्वरूप को परखने के लिये मज़बूर किया है। मनुष्य जो स्वभावत: बौद्धिक गुण संपन्न होने के साथ-साथ समाज प्रिय प्राणी है और समय की कैसी यह विडंबना है कि आज करोना महामारी से राहत पाने के लिये मनुष्य को अपने प्राकृतिक स्वभाव, प्रवृत्तियों के खिलाफ़ खड़े होने के लिये प्रोत्साहित किया जा रहा है। एक दूसरे से मिलकर बातें करना, गले मिलना, हाथ मिलाना, शादी-व्याह, तीज-त्योहार जैसे सामाजिक, सांस्कृतिक कार्यों से दूर रहना, सोशल डिस्टन्सिंग के नाम पर अपने आप को घर की चारदीवारों के अंदर क़ैद रहने का सुझाव देना ताकि आनेवाले दिनों में मनुष्य जाति की रक्षा हो, पृथ्वी की रक्षा हो। इस प्रक्रिया में सामाजिक, मानसिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक तथा धार्मिक जैसी प्राकृतिक गतिविधियाँ स्तब्ध हो गई हैं या यूँ कहिये कि एक नए रूप में आभासी फलक पर प्रस्तुत हो रही हैं। फिर भी यह एक अत्यंत चिंतनीय विषय है कि फिजिकल डिस्टेंसिंग का मनोवैज्ञानिक असर कैसा होगा ? क्या इससे मुनष्य जाति की आत्म केन्द्रित भावना को प्रोत्साहन नहीं मिलेगा जो समाज के सांगठनिक स्वरूप के ख़िलाफ है? इस प्रक्रिया में पारस्परिक स्नेह और सौजन्य जैसे सामाजिक उद्देश्यों की सफलता में एक नकारात्मक सोच को बढ़ावा मिलने की सम्पूर्ण संभावना है।

करोना के कारण काफी लोग बेचैन हैं, आनेवाले भविष्य को लेकर विचलित हैं। इस परिस्थिति में समाज को सुव्यवस्थित बनाए रखने के लिये साहित्यकारों के अवदानों पर चर्चा करना अत्यंत आवश्यक हो गया है। साहित्यकार तथा रचनाकार स्वाभावत: बहुत संवेदनशील होते हैं। किसी भी अनहोनी अवस्था में चाहे वह महामारी हो या प्रलय, युद्ध-संत्रास हो या त्रासदी-संशय, ऐसी स्थिति में फंसे हुए मनुष्य के दुख-दर्द, तकलीफ को परखकर, जांच-पड़ताल शुरू कर देता है। सोच-विचार द्वारा समाधान प्रस्तुत कर आशा की एक नई किरण फैलाता है। मनुष्य जीवन से जुड़े सुक्ष्म विचारों तथा भावनाओं को अपने लेखन द्वारा दूसरों के हृदय तक पहुँचाकर संप्रेषित प्रक्रिया को सफल बनाता है और यूँ कहिये कि इस कार्य में माहिर है।

साहित्य को समाज के दर्पण के रूप में स्वीकारा गया है। साहित्य का अध्ययन आज के युग में भी अत्यंत आवश्यक है ताकि लोग अपने क्षितिज को और ज्ञान की परिधि को व्यापक बना पाए। भिन्न लोगों के साथ-साथ भिन्न परिवेशों, संस्कृतियों और परिस्थितियाँ जो हमसे अलग हैं तथा नए-नए आविष्कारों और परिणामों के बारे में जान पाएँ और समझ पाएँ। विचारों और भावनाओं का स्वत:स्फूर्त आदान-प्रदान कर पाएँ। मानवीय अनुभवों के सम्पूर्ण प्रक्रिया के प्रति लोग संवेदनशील हो पाएँ और सटीक निर्णय लेने के लिये एक दूसरे को प्रोत्साहित कर पाएँ। संकटकालीन स्थिति में शिक्षा, सम्प्रीति, समझौते, आत्मविश्लेषण जैसे विषयों पर लगातार विचार-विमर्श करने की प्रतिभा को बढ़ा पाएँ। हमें सदा यह याद रखना होगा कि महामारी, प्रलय, युद्ध जैसी संकटकालीन परिस्थिति के दौरान रचा गया विश्व-साहित्य समाज के लिये एक आदर्श स्वरूप है। नीचे कुछ ऐसी महान् कृतियाँ शामिल है जो कालांतर से मनुष्य जीवन को सतत पथ-प्रदर्शन करने में सक्षम हुई है।

महाभारत युद्ध के दौरान एक संकटकालीन स्थिति में "भगवद् गीता" की सृष्टि हुई थी जो अब सम्पूर्ण मनुष्य जाति के लिये एक उत्कृष्ट कृति के रूप में स्वीकृति प्राप्त है। नैतिक दुविधा और निराशा से भरे परिवेश में "धर्म को बनाए रखने और अपने क्षत्रिय योद्धा के कर्त्तव्यों को पूरा करने" के उद्देश्य से इस महान् कृति का सृजन हुआ था। दूसरी किताब है – सर्व-नाश तथा प्रलय पर आधारित मेरी शेली (Mary Shelley) द्वारा लिखी गई "दी लास्ट मैन -The Last Man" जो पहली बार अठारह सौ छब्बीस (1826) में प्रकाशित हुई थी। दिलचस्प बात यह है कि इस पुस्तक में 21 वीं शताब्दी के अंत में भविष्य की पृथ्वी का वर्णन है जिसको चीन से उत्पन्न एक अज्ञात महामारी ने तबाह कर दिया है; जो दुनिया भर में तेज़ी से फैलकर सबको अपनी आगोश में समेट लिया है।

आपको यह सुनकर बड़ा आश्चर्य होगा कि उन्नीस सौ इक्यासी (1981) में रिलीज़ हुई अमेरिकन लेखक डीन कोन्टोज़ का विज्ञान पर आधारित एक थ्रिलर उपन्यास "दी आइज़ आव डार्कनेस" (The Eyes of Darkness) जिसमें "वुहान-400" नामक एक काल्पनिक "जैविक हथियार" का संदर्भ

पाया जाता है जिसे दुनिया भर के लोगों को मारने के लिए डिज़ाइन किया गया था। यह किताब एक माँ पर केंद्रित है, जो यह पता लगाने के लिए खोज करती है कि क्या उसका बेटा एक साल पहले सही मायने में मर गया था, या यदि वह अभी भी जीवित है।

"द डायरी ऑफ एनी फ्रैंक" (The Dairy of Anne Frank), ऐनी फ्रैंक द्वारा लिखी गई डच भाषा की डायरी जो नीदरलैंड के नाज़ी कब्ज़े के दौरान लिखी गई थी। ऐनी फ्रैंक अपने परिवार के साथ दो सालों तक एक ही कमरे में छिपी रही थी लेकिन उन्नीस सौ चवालीस (1944) में परिवार को पकड़ लिया गया और उन्नीस सौ पैंतालीस (1945) में बर्गन-बेलसेन कनसनट्रेशन कैंप/शिविर में ऐनी फ्रैंक की टाइफस से मृत्यु हो गई। इस डायरी को विश्वभर में सराहा गया। आलोचनात्मक दृष्टि से इसको व्यापक लोकप्रियता मिली। यह किताब दुनियाभर की 60 (साठ) अन्य भाषाओं में भी अनुवादित हुई और बहुत सारी मूवीज़ भी इस पर बनी। मुझे पूरा विश्वास है कि जिसने भी यह किताब पढ़ी होगी वह अपनी ज़िंदगी में कभी किसी दूसरे के प्रति दुर्भाव नहीं रख सकता है।

"महात्मा गाँधी की आत्मकथा" (Mahatma Gandhi's Autography), सन् उन्नीस सौ नौ (1909) में लिखी यह किताब अब भी इतनी प्रासंगिक और विचारशील है कि करोना की इस संकटकालीन स्थिति में सम्पूर्ण भारतवासियों के अतिरिक्त विश्ववासियों को एक बार फिर यही याद दिलाती है कि सत्य, अहिंसा, अपरिग्रह, प्रार्थना, प्रेम, समानता, स्वच्छता जैसे जीवन-दर्शन और नैतिक सिद्धांतों को अपना कर किस तरह महात्मा गाँधी ने औपनिवेशिक सत्ता के विरुद्ध संघर्ष कर स्वाधीनता हासिल की थी। आत्मनिर्भर शील बने रहना सक्रिय और स्वस्थ दिमाग का संकेत है तथा संकटकालीन परिस्थिति में एक खुशहाल समाज के साथ-साथ देश की तरक्की भी इसपर अत्यंत निर्भर है।

उन्नीस सौ छियालीस (1946) में प्रकाशित परमहंस योगानंद की "ऑटोबायोग्राफी ऑव ए योगी" (Autobiography of a Yogi), एक भारतीय भिक्षु, योगी और गुरु, जिन्होंने अपने संगठन सेल्फ-रियलाइज़ेशन फ़ेलोशिप/ योगदा सत्संग सोसाइटी ऑफ़ इंडिया के माध्यम से ध्यान और क्रिया योग की शिक्षाओं को विश्वभर के लोगों तक प्रस्तुत किया और साथ ही अवगत कराया कि योग के ज़रिये शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक चुनौतियों का सामना किस तरह किया जा सकता है। संकटकालीन स्थिति में कैसे मन को शांत कर जीवन चक्र के पहियों को आगे बढ़ाया जा सकता है।

'स्टीव जॉब्स की जीवनी" (Autobiography of Steve Jobs) का ज़िक्र भी आता है जो एप्पल कंप्यूटर (Apple Computer), माइक्रो कंप्यूटर (Micro Computer), स्मार्ट फ़ोन और टैबलेट कंप्यूटर (Smart Phone and Tablet Computer), के पीछे के वह प्रतिभाशाली व्यक्ति थे जिन्होंने जिस प्रौद्योगिकी साम्राज्य की स्थापना की थी आज वह पूरी दुनिया पर गहरा प्रभाव डाल रहा है। दुनिया भर के लोग इसी के ज़रिये मिल पा रहे हैं, बातचीत में शामिल हो पा रहे हैं, लेकिन अपने व्यक्तिगत संकटकालीन स्थिति में उन्होंने बौद्ध धर्म-दर्शन (Zen Buddhism) हिंदू धर्म दर्शन से ज्ञान प्राप्ति की थी। वे काफी हद तक इन दो दर्शनों से प्रभावित हुए थे। उनको अपनी असाधारण सफलता के पीछे के रहस्य के बारे में जब पूछा गया तो उन्होंने स्वीकारा भी था कि उनकी अभिनव रचनात्मकता (Creative innovation), अलग तरीके से सोचने, चीज़ों को देखने के नज़रिये के लिये इन दो धर्म-दर्शनों ने काफी प्रेरित किया था। वे हिंदू तपस्वियों के आदर्शों से भी काफी आकर्षित हुए थे और एक सरल, सीधा-सादा जीवन व्यतीत करने के लिए तरस गए थे। एक समय पर उन्होंने गंभीरता से भारत में रहने और हिंदू साधु बनने पर भी विचार किया था।

आख़िर में शामिल करना चाहूँगी "आई एम मलाला" (I am Malala), मलाला यूसफ़ज़ाई की आत्मकथा। पाकिस्तान की वह लड़की जो अपनी ज़िंदगी की परवाह किये बिना लड़कियों की शिक्षा के लिये अकेली खड़ी हुई। लगातार अपने तथा लड़कियों के हक़ के लिये, समाज की भलाई के लिये आवाज़ उठाती रही। तालिबानों की गोलियों का शिकार बनकर भी जिसने अपनी लड़ाई ज़ारी रखी और आज समस्त विश्वभर की लड़कियों के लिये एक आदर्श बनकर खड़ी हुई। 2014 में मलाला को अपनी बहादुरी के लिये नोबेल शांति पुरस्कार से भी नवाज़ा गया और वे विश्व की सबसे कम उम्रवाली नोबेल पुरस्कार विजेता बनी।

विश्व भर की इन सारी श्रेष्ठ रचनाओं से हमें यही शिक्षा मिलती है कि इनके अंदर मनुष्य जीवन की संवेदनाओं से जुड़ने के, जीवन के गहरे मर्म को उजागर करने के सारे तत्व मौजूद हैं। कला के बुनियादी सिद्धान्तों को अपने अंदर समेटकर समाज तथा सम्पूर्ण संसार को एक नई दिशा तथा एक नया अस्तित्व प्रदान करती हैं। खासकर संकटकालीन परिवेश में लिखी रचनाएँ सदा यथार्थवाद, संयम और संभाव्यता की भावनाओं से प्रेरित रहती हैं। हृदय और मस्तिष्क के तारों को झंकृत कर एक गहरा आत्मीय रिश्ता पैदा करने की क्षमता रखती है ताकि पाठकगण समस्याओं की गहराइयों तक पहुँचकर उलझन की गुत्थी को सुलझाने में सक्षम हो। समाधान रूपी चाबी खोज कर अपने भविष्य की अनिश्चित गहराइयों में विश्वास के साथ कदम रख पाएँ। सुकुन का महसूस कर पाएँ। परिवर्तन प्रकृति का नियम और करोना महामारी इस सिद्धांत की पूर्ति कर रहा है। करोना की इस संकटकालीन परिस्थिति में भी साहित्य सदा की तरह अपनी नीतियों, सार्वभौमिक नैतिक और धार्मिक सिद्धांतों तथा प्राथमिकताओं को अपनाकर, समाज को पथ-प्रदर्शित करता चला है। भिन्न प्रेरणादायक स्रोतों तथा पात्रों द्वारा समाज, राष्ट्र तथा सम्पूर्ण मनुष्य जाति के प्रति अपने उत्तरदायित्व का सुचारू रूप से पालन कर उम्मीद की किरण फैला रहा है।

000

ममता की कशिश

ममता त्यागी

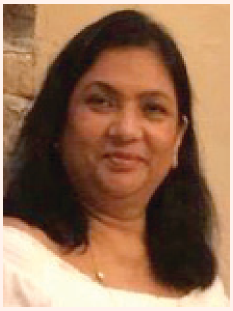

ममता त्यागी
9403 Chase Mill Ct.,
Reliegh NC, USA
ईमेल-Mamta.t80@gmail.com

सुबह से फिर वही दिनचर्या -घर दफ़्तर और नीरस सा वही कमरा। अचानक बाहर की तरफ़ नज़र गई, घने काले बादल और पानी की गिरती बूँदों की आवाज़ !चलो कुछ तो राहत मिलेगी उमस से। यह विचार उसे थोड़ा सुकून सा दे गया। क्या बाक़ी रह गया था ज़िंदगी में काम और बस काम सुबह से शाम तक। सारा दिन दफ़्तर में आवाजाही - कभी कोई चपरासी कभी अध्यापिकाएँ और न जाने कितनी समस्या लिए कितने ही लोग। सुलझाते-सुलझाते कब दिन बीत जाता पता ही नहीं चलता। प्रधानचार्या होना भी .... उफ़ सुनने में कितना भला लगता पर वास्तविकता में काँटों का ताज है। मीतू में कितनी कटुता सी आ गई थी। पहले तो ऐसी नहीं थी वह, अलमस्त ज़िंदगी को भरपूर जीने वाली।

पर धीरे-धीरे सब कुछ बदल गया। रोहित के साथ जब उसने अपनी नई ज़िंदगी की शुरूआत की थी तो कितना सुखद था सब कुछ। उसे लगा जीवन को जैसे दिशा मिल गई, उमंगों को पर लग गए थे। कितना ख़याल रखते थे रोहित उसका, पलकों पर बैठा लिया था जैसे। रोज़ सिनेमा घूमना फिरना बाहर खाना पीना एकदम स्वर्ग का सा सुख। पर यह सब छलावा निकला। एक दिन रोहित के कपड़े धोने को डालने लगी तो, शंकालू मन मानने को तैयार ही नहीं हुआ कि उसका रोहित ऐसा हो सकता था। पर प्रमाण सामने था। वह तो जैसे आसमान से जा गिरी। उसके रोहित की ज़िंदगी में कोई और ? नहीं यह संभव नहीं, बर्दाश्त करना आसान ही नहीं था। पर रोहित की फ़ितरत ही शायद ऐसी थी वह बहुत रोई गिड़गिड़ायी पर...रोहित कहा मानता अब तो भेद भी खुल ही गया था। उसने साफ़ कह दिया ! बस अब और नहीं। मीतू की आँसू उसकी अजन्मी संतान का मोह पाश भी रोहित को नहीं बाँध सका। टूट गई मीतू, बिखर गई, दर्द के सैलाब में डूब गई और रोहित ही नहीं अपनी संतान को भी खो बैठी। सुनी कोख और तलाक़ का दाग़ लिए अकेली....

मीतू ने दूरस्थ प्रदेश में नई नौकरी ले ली। बेहद कठोर अनुशासन प्रिय प्रधानाचार्य के रूप में। झोंक दिया ख़ुद को काम में। दिन रात काम और बस काम। पूरा स्कूल उससे थर- थर काँपता

था। पर फिर भी बेहतर से बेहतर परिणाम के साथ स्कूल उन्नति करता गया और उसका पूरे शहर में एक नाम बन गया। अभिभावक से लेकर मैनेजमेंट तक सब ख़ुश।

पर मीतू को घर जाने की इच्छा ही नहीं होती। घर का सूनापन उसे काटने को दौड़ता। ज़्यादा दोस्त भी नहीं थे बस एक परिचित डॉक्टर तिवारी जी थे, कभी-कभी उनके यहाँ चली जाती।

आज उदासी कुछ ज़्यादा ही गहरा रही थी, न जाने क्यूँ ? तभी फ़ोन की घंटी बजी ... डॉक्टर तिवारी लाइन पर थे ... मीतू ! तुमसे कुछ ज़रूरी बात करनी है क्या तुम इसी वक़्त अस्पताल में आ सकती हो ? मीतू हैरान और परेशान ! क्या हो सकता है ? ऐसे तो डॉक्टर साहब ने उसे कभी नहीं बुलाया। जी हाँ डॉक्टर साहब पर बात क्या है ? मीतू बोली। बस तुम आ जाओ यही पता चल जाएगा। फ़ोन पर नहीं बात सकता। डॉक्टर तिवारी बोले और फ़ोन रख दिया।

मीतू ने तुरंत कार निकली और लगभग दौड़ाते हुए वो अस्पताल पहुँची। उसका कलेजा धक-धक कर रहा था। क्या बात होगी जो उसे अस्पताल बुलाया। डॉक्टर तिवारी के कमरे तक पहुँचते उसकी साँस फूल गई थी।

क्या हुआ बताइए सब ठीक तो है ना ? उसने तिवारी जी से पूछा। हाँ हाँ सब ठीक है। लो पहले तुम पानी पियो - उन्होंने पानी का ग्लास उसकी तरफ़ बढ़ाया। उन्हें मुस्कुराते देख थोड़ी सी आश्वस्त तो वो हुई।

तब मुस्कुराते हुए वे बोले मीतू ! बहुत समय से सोच रहा था कि किसी तरह तुम्हारे जीवन को ख़ुशियों से भर दूँ। आज ईश्वर ने शायद अवसर दे ही दिया। मेरी एक बात मानोगी क्या ? मीतू सुखद आश्चर्य से भर गई पर स्वयं को संयत करके उसने कहा -हाँ, पर बात क्या है ? मीतू क्या तुम बच्चा गोद लेना चाहोगी ? कहकर वे एक क्षण रुके। मीतू की साँस जैसे थम गई। यह कैसा सवाल ? उसने तो डॉक्टर तिवारी से कभी कुछ नहीं कहा फिर क्या उन्होंने उसके मन की बात पढ़ ली ?

मैं जानता हूँ तुम्हें हैरानी हो रही है। मैंने तुमने हमेशा अपनी छोटी बहन माना है और मुझे लगा कि तुमने भी जीवन में आगे बढ़ने ख़ुशी पाने का हक़ है। और इससे अच्छा रास्ता मुझे नहीं सूझा।

मीतू समझ ही नहीं पा रही थी कि वह क्या कहे। तब उन्होंने आगे कहा - हमारे अस्पताल में आज एक लड़की ने स्वस्थ बच्चे को जन्म दिया पता नहीं क्या मज़बूरी है कि उस लड़की के माता-पिता उस बच्चे को गोद देना चाहते है। अच्छे परिवार से है किसी दूर गाँव से आए है।

मीतू को कुछ भी समझ नहीं आ रहा था। एक अजीब सा डर एक रोमांच सा था। वो कुछ क्षण चुप रही। तुम सोच लो मीतू !शायद ईश्वर भी यही चाहता है। इस बच्चे को परिवार मिल जाएगा और तुमने जीवन जीने का एक नया मक़सद।

परंतु निर्णय अभी लेना होगा। बोलो !

मीतू सोच में पड़ गई क्या करे ? आज तो उसे एक साहसिक निर्णय लेना ही होना। बस बहुत हो गया रोते हुए और अकेलापन की त्रासदी झेलते हुए। आज उसे कोई डर नहीं वह अपने मातृत्व की प्यास को अधूरा नहीं रहने देगी। रोहित की दी गई चोट को कब तक सीने में छिपाए रोती रहेगी। बस और नहीं उसे भी ख़ुश रहने का हक़ है। इसी पशोपेश में समय निकल जा रहा था कि तिवारी जी आए - तो मीतू क्या सोचा ?

क्या मैं एक बार बच्चे को देख सकती हूँ ? उसने पूछा। हाँ क्यों नहीं। और कुछ पल में ही सफ़ेद कपड़े में लिपटा गोल-मटोल प्यारा सा बच्चा उसे अपनी चमकीली आँखों से टूकुर टूकुर ताक रहा था। मीतू रोमांच से भर गई। बच्चा जैसे मुस्कुराया और मीतू, वह तो पल भर में अपना दर्द अपनी पीड़ा अकेलापन निराशा जैसे सब भूल गई। हृदय में वात्सल्य की धारा उमड़ पड़ी।

उसी क्षण उसने निर्णय लिया। मैं इस बच्चे को घर दूँगी संसार का हर सुख दूँगी। उसका स्वर यह कहते हुए काँप रहा था और आँखें नम हो चली थीं। और स्वर काँपने लगा उसका।

डॉक्टर तिवारी ने प्यार से उसके सिर पर हाथ रखा और बोले- मैं जानता था कि तुम यही निर्णय लोगी। इसलिए मैंने वक़ील को भी बुला लिया है। हम अभी सारी क़ानूनी औपचारिकताए पूरी करेंगे। आओ मेरे साथ।

मन्त्रमुग्ध सी मीतू उनके पीछे चल दी। कुछ ही घंटों में सारी क़ानूनी औपचारिकता पूरी हो गई और वह माँ बन गई। कितना सुखद अहसास था, उसे विश्वास ही नहीं हो रहा था। उसने अपनी इकलौती अभिन्न मित्र पृथा को फ़ोन करके सूचना दे दी और वह ख़ुशी के मारे भागती सी अस्पताल पहुँच गई।

जब मीतू पृथा के साथ उस मासूम को लेकर घर पहुँची तो हैरान रह गई। पूरा स्टाफ़ वहाँ मौजूद था, सज़ा हुआ घर बधाई देते सब लोग, उत्सव का सा वातावरण, मीतू की आँखें ख़ुशी से छलक उठीं। उसके जीवन में कुछ ही घंटों में ऐसा आकस्मिक परिवर्तन आया कि उसे समझ ही नहीं आ रहा था की क्या करे ?तभी बच्चा रोने लगा। इससे पहले वो कुछ बोलती उसकी बेहद कर्मठ और वफ़ादार परिचारिका सुमन ने आकर कहा- मैडम ! आप चिंता न करे। मैंने अपने चार बच्चे पाले है, आज से यह मेरी ज़िम्मेदारी है।

मीतू की ज़िंदगी ख़ुशियों से भर गई। अब वो पहले जैसी हो गई मस्त बिंदास, ज़िंदगी के हर पल को जीने वाली। मीतू के माता-पिता आए। ख़बर सुनते ही पहले तो आक्रोश दिखाया कि यह सब क्या हमसे पूछा तक नहीं। अकेले इतनी बड़ी ज़िम्मेदारी कैसे उठाओगी आदि आदि। पर मानिक को देखते ही वे तो बस उसे निहारते ही रह गए कुछ ना बोल सके।

माँ ने भरे गले से बस इतना कहा - यह नन्हा फ़रिश्ता हमारी बेटी की ज़िंदगी सँवारने आया है उसे सम्पूर्णता देने आया है। और पापा नम आँखों से बस मुस्कुरा दिए।

समय गुज़रने लगा। मानिक को देखकर कोई कह ही नहीं सकता था की वह मीतू की संतान नहीं है। कभी-कभी वह सोचती क्या मजबूरी रही होगी उस लड़की की जो अपनी ही संतान को त्यागने को विवश थी। उसने बस एक झलक उस लड़की को देखा था दूर से। डॉक्टर साहब नहीं चाहते थे, उनको पता चले कि किसने उनके बच्चे को गोद लिया था।

एक दिन ऐसे ही बातों- बातों में मीतू ने डॉक्टर साहब से कहा भी की जब मानिक बड़ा हो जाएगा सब समझने लगेगा तो मैं उसे उसकी माँ से एक बार ज़रूर मिलाना चाहूँगी। डॉक्टर साहब मुस्कुरा दिए, बोले - तब की तब देखना।

दिन भर मीतू काम में व्यस्त रहती और जब घर आती तो मानिक को देखकर सारी थकान भूल जाती। वह और पृथा बहुत मस्ती करतीं मानिक के साथ। मीतू जो ज़िंदगी जीना ही शायद भूल गई थी अब उसका लगता वह सब कुछ करे जो उसका मन चाहता है। एक दिन तो वो पृथा से बोले पता है मेरा दो काम करने का बड़ा मन है, एक तो चाट का ठेला लगाने का और फिर उसने हँस कर कहा- दूसरा ख़ूब तेज़ टैक्सी चलाने का। फिर तो दोनों ही हँसते- हँसते दोहरी हो गईं।

यूँ ही समय गुज़रता चला गया और देखते ही देखते मानिक बड़ा होने लगा। बहुत प्यारा और बहुत समझदार। बस मीतू को एक ही चिंता होती कि जब वह सब बच्चों को देखकर अपने पापा के बारे में पूछेगा तो वह क्या कहेगी। यह सवाल उसे भीतर ही भीतर सालता था और तब वो कमज़ोर पड़ने लगती थी। फिर सोचती मैं इसे सब सच बता दूँगी पर सच जानने की भी तो एक उम्र होती है। कैसी प्रतिक्रिया होगी उसकी ? क्या उसे नहीं लगेगा कि उसकी माँ ने उसे क्यूँ छोड़ दिया ? उसके पापा कौन है ? कितने ही सवाल उसे भेद देंगे।

नहीं वह उसे नहीं बताएगी। उसने तय कर लिया। पर कब तक नन्हें मन में उठते सवालों को वह रोक सकती थी। मानिक चार वर्ष का हो गया और एक दिन उसने पूछ ही लिया माँ सब बच्चों के पापा है पर मेरे नहीं है ऐसा क्यूँ?

मीतू ने उसे उलझा दिया देखो जैसे तुम्हारे दोस्त बॉबी की माँ नहीं है ऐसे ही। मानिक फिर खेलने लगा। उसी दिन शाम को उसकी बहन गीतू और उसके पति राजीव आए। मीतू को अनमनी सी देख उन्होंने पूछा कि बात क्या है?

मीतू ने अपना डर उन्हें बताया तो राजीव हँस कर बोला अरे। परेशान होने की कोई बात नहीं। आज से मानिक भी मुझे पापा ही कहेगा हमारे आयुष की तरह। मीतू के मन का बोझ हल्का हो गया। ऐसे भी गीतू और राजीव उन्हें बहुत प्यार करते थे। हर सुख दु:ख में साथ खड़े रहते। सब कुछ बहुत अच्छा चल रहा था।

एक दिन राजीव ने सबको साथ लेकर आगरा जाने का कार्यक्रम बनाया। मीतू भी बहुत समय से कहीं नहीं गई थी। सब ख़ुशी-ख़ुशी ट्रेन से आगरा जाने के लिए स्टेशन पहुँचे

राजीव बच्चों के लिए खाने-पीने का सामान दिलवाने गया था। मीतू गीतू सामान के पास खड़ी थी। एक अधेड़ सी उम्र की स्त्री उन्हें देखे जा रही थी। उन्हें बड़ा अजीब सा लग रहा था कि तभी वो स्त्री उनके पास आई और बड़े संकोच से उसने सौ रुपए का नोट उसके हाथ में रखा और बोली यह अपने बेटे को दे देना। मीतू को हैरान देख वह बोली यह उसकी नानी का आशीर्वाद है। वे सन्न रह गईं। उन्हें ऐसे देख वह बोली आपने मुझे नहीं देखा पर मैंने अस्पताल में छिपकर आपको देखा था कि कौन देवी है जो मेरे नाती का जीवन सँवारने आई है। वरना मैं आभागी तो उसे दुलार भी ना सकी। उसने अपनी नम आँखें पोंछी और भीड़ में गुम हो गई।

वह तो हतप्रभ-सी खड़ी रह गई। यहाँ तक कि राजीव आया तो भी कुछ न बता सकी क्यूँकि बच्चे साथ थे। और फिर चुप रहना ही श्रेयस्कर समझा उन्होंने।

ट्रेन में मीतू बार-बार उस लड़की के बारे में सोचती रही। कैसे उसने अपने जिगर के टुकड़े को अलग किया होगा अपने से। वो तो मानिक को एक पल भी दूर नहीं होने दे सकती। मीतू की आँख भर आईं।

वक़्त पंख लगाकर उड़ गया। मानिक मेडिकल की पढ़ाई करने हॉस्टल में था। रोज़ मीतू को फ़ोन करता और सारी बात बताता। एक अटूट रिश्ता था उनमें। वो माँ कम दोस्त ज़्यादा थी।

एक दिन मानिक ने फ़ोन करके पूछ - माँ मैं अभिनव के साथ उसके घर जैसलमेर चला जाऊँ क्या ? मीतू ने हाँ कर दी। वह अभिनव से मिल चुकी थी अच्छा लड़का था।

अभिनव के घर मानिक को बहुत प्यार मिला। मानिक ने लौटकर मीतू को बताया - माँ। वो बहुत अच्छे लोग है। उसकी दादी ने मुझे बहुत प्यार किया। उसकी एक बुआ भी है माँ। बहुत प्यारी सी। उन्होंने शादी नहीं की। बहुत चुप रहती है। किसी से ज़्यादा बात नहीं करती। बस मुझे बहुत प्यार से देखती रहती थी। फिर पता है माँ क्या हुआ एक दिन ? क्या हुआ ? मीतू उसकी ख़ुशी देखकर ख़ुश थी। उसने पूछा। माँ एक दिन उसकी बुआ की तबियत बहुत ख़राब हो गई। उन्हें ख़ून देने की ज़रूरत थी उसी समय पर किसी का ब्लड मैच ही नहीं हुआ। फिर ? मीतू भी घबरा सी गई। फिर मैंने अपना ब्लड दे दिया। माँ आपको तो पता ही है मेरा ब्लड ग्रुप ओ पॉज़िटिव है यूनिवर्सल डोनर। मानिक बोला - माँ ठीक किया न मैंने ? आप ही तो कहती है किसी की जान बचाना पुण्य होता है। मीतू ने मुस्कुरा कर उसे गले से लगा लिया।

पता है माँ उनकी जान बच गई उस दिन। मीतू आह्लाद से भर गई। इतनी छोटी सी उम्र और इतना समझदार मेरा बच्चा ! अपनी परवरिश पर उसे गर्व हुआ। उसे लगा उसका जीवन सार्थक हो गया मानिक को इतने अच्छे संस्कार देकर।

अरे माँ ! देखो अब मैं आपको वहाँ की फ़ोटो दिखाता हूँ। यह रहा अभिनव का प्यारा सा घर और यह उसके माँ - पापा, और यह उसकी बुआ और उसकी दादी। देखो माँ कितनी प्यारी सी है न उसकी बुआ, इनको ही तो मैंने ख़ून देकर इनकी जान बचाई माँ।

तभी फ़ोन की घंटी बजी। मानिक बोला माँ तुम देखो ज़रा मैं आता हूँ एक दोस्त का फ़ोन है। मीतू के हाथ में तस्वीर थी और वह सोच रही थी कि इन्हें कहा देखा है ? तभी अचानक जैसे बिजली सी कौंधी। उफ़ कितने वर्ष बीत गए शायद 14 वर्ष पहले वो आगरा की यात्रा, स्टेशन वह स्त्री 100 का नोट थमाना, एकदम सब कुछ जैसे साफ़ हो गया। यह स्त्री तो मानिक की नानी है और यह साथ में शायद... उसका दिल ज़ोर से धड़कने लगा।

अनजाने ही सही मानिक ने अपनी जन्मदायिनी जननी का क़र्ज़ चुका दिया। मीतू की आँखों से अनवरत अश्रुधार बह रही थी।

000

कविताएँ

रचना श्रीवास्तव की कविताएँ

पता न चला

संघर्ष के चने चबाते
दाँत कब
असली से नकली हो गए
पता न चला
चौड़ा सीना, झुकती कमर
कब हुआ,
आँखों में मोतिया कब उतरा
पता न चला
पूरे घर से
कब एक 'कोना'अपना हुआ
पता न चला
पता चला तो बस यह
कि जीवन भर का अनुभव
बासी और पुराना हो गया है
हमारी बातों की
किताब में लग चुकी है दीमक
कोई कबाड़ी भी
न देगा अब दाम इसका
उम्र की चौथी अवस्था
महकाती नहीं घर को
पुराने फर्नीचर्स सा बोझ बन जाती है।
000

उम्र की साँझ में

सुनो
तुम्हारे पिंजर हुए हाथों की
चटकती नसों में
मेरी भावनाएँ
आज भी दौड़ती हैं
तुम्हारे चेहरे की झुर्रियाँ
मेरे अनुभवों का ठिकाना है
आँखों के
इन स्याह घेरे में
मेरी ग़लतियों ने पनाह ली है
आंटे में
न जाने कितने बार
गुँथी हैं
तुमने बेबसियाँ
पर चूड़ियों की खनक में
आने न दी उदासी
उम्र की साँझ में
एक तुम ही उजाला हो
सुनो,
मुझे
मुझसे पहले छोड़ के न जाना
000

एक बेल

एक बेल
जो सहारे की तलाश में निकली
तुमसे लिपटी
और तुम्हारी होके रह गई
तुम्हारी पीठ पर
उतारे उसने
बहारों के कई रंग
हथेलियों में खिलाए गुलाब
उसने उतनी ही धूप ली
जितनी तुमने दी
हवा की टहनी पर
उतना ही झूली
जितना तुमने चाहा
धरा के उस छोटे टुकड़े को
घर कहती रही
जिस पर तुमने इशारा किया
एक रोज़ अचानक गिरने लगी
कट-कट के वो
पीले पड़े अपने पत्तों को समेटती
मुरझाए फूलों की
पंखुड़ियाँ उठती
अपनी ही लाश पर
बहुत देर रोती
घूल में समा गई
उस रोज़ तुमने उससे कहा था
"और कितनों के लिए
बहीं है ऐसे ही
भावनाएँ तुम्हारी "
000

औरत

चिंताओं को गुट्टक की तरह फेंक
बिटिया के साथ
इक्खट -दुक्खट खेलती है
अपनी इच्छाओं को
रोटियों में बेल
घर में परोसती है स्वाद
पति, बेटे के बीच
मतभेदों को
कभी आँचल में बाँधती
कभी धागे- धागे सुलझाती है
अपने मान को बुझा
गिलाफ में कढ़ा फूल बन
सेज महकाती है
रिश्ते की ओढ़नी
पर, टाँकती है त्याग का गोटा
रात जब बुनती है
सभी की आँखों में सपने
उसके अन्दर की
मासूम गुड़िया जगाती है
उसको, उसके होने का
अहसाह दिलाती है
औरत को मिलजाती है ऊर्जा
वो शुरू करती है
नया दिन
और
फिर होती है तैयार
अपने अलावा सभी के लिए जीने को।
000

रचना श्रीवास्तव
841 west Duarte road unit 3,
Arcadia CA 91007
मोबाइल-940-595-5927
ईमेल-rach_anvi@yahoo.com

डॉ. संगम वर्मा की कविताएँ

बुद्ध मुस्कुरा रहे हैं

बुद्ध मुस्कुरा रहे हैं मंद-मंद
यह दुनिया अब भी वैसी है
जैसी अब तक है
और आगे भी रहेगी
और बुद्ध ऐसे ही मुस्कुराते रहेंगे
क्यूँकि उन्होंने जान लिया है
संसार की सभी वस्तुएँ नश्वर हैं
इसलिए न खोने का संताप उन्हें हैं
और न पाने की चाह की उत्सुकता
वे जो अनभिज्ञ बने बैठे हैं
यहाँ छोटे से जीवन की लालसा में
कि हमने पा लिया है
अभी और पाना है
भ्रम में है
पाना और पाने के बाद की स्थिति से
इसी चक्र में हम चलते चले जा रहे हैं
इसलिए बुद्ध मुस्कुरा रहे हैं
वो मुस्कुरा रहे हैं
हमारी इस मूढ़ता पर कि
हम सब होड़ में लगे हुए हैं
अपना सर्वश्रेष्ठ लगाने में जताने में
मैं ही सब कुछ हूँ
मेरी सत्ता मेरा ओहदा
की झूठी शान ओ शौक़त के
किसी का बिगाड़ कर जो अपना सँवारते हैं
यह नियति को क़तई गवारा नहीं होता
इसलिए बुद्ध मुस्कुरा रहे हैं
हमारी अनभिज्ञता पर
बुद्ध इसलिए भी मुस्कुरा रहे हैं
लोग अपनी झूठी आस्था के चलते
बेजान मूर्तियों पर चढ़ावा चढ़ा रहे हैं
दान पेटियों में दान कर रहे हैं
जबकि पास ही किसी कोने में
दु:ख ग़रीबी और भूख से बेहाल
हमारा भारत दिन काट रहा है
तंगहाली में जीवनयापन कर रहा है
और हम मूर्तियों को सजाने में
रथ यात्रा निकालने में
आस्था के नाम पर
अपना मनोरथ सिद्ध करने में लगे हुए हैं

अब कोई ईश्वर यहाँ अवतार नहीं लेना
चाहता
कि जब-जब धर्म की हानि हो
मैं इस संसार का उद्धार करने हेतु प्रकट
होऊँ
कलियुग के दुष्प्रभाव से
आस्था भी डगमगा गई है
इसलिए देवों का सिंहासन नहीं डोलता
अवतार सतयुग त्रेता द्वापर तक ही थे
अब कोई उद्देश्य नहीं रहा
क्यूँ आना चाहेगा कोई ईश्वर यहाँ
शायद भीरु हो गया है
क्यूँकि यहाँ हम सब ईश्वर होने का दम्भ
भरे बैठे हैं
उसे शायद कोई और ग्लोब मिल गया है
ऐसा ग्लोब जहाँ वे शांति हेतु
अपनी लीलाएँ करता रहे।

बुद्ध इसलिए मुस्कुरा रहे हैं
कि तुमने शिक्षा का व्यापार बनाया
गुरु चेले में होड़ लगी है
हाँ में हाँ करनी है
चाटुकारिता ही अव्वल आने की सीढ़ी बन
गई है
अब सीखना नहीं पड़ता
जब तलक गुरु द्रोण हैं
एकलव्य के अँगूठे कटते रहेंगे
या कटवा दिए जाएँगे
प्रतिभा किसी के दबाने से दबती नहीं है
पर यह भूल चुके हैं कि मन को कैसे
काटोगे
हौसले को कैसे हराओगे
000

प्रार्थनाएँ मूक हो चुकी हैं

प्रार्थनाएँ अब मूक हो चुकी हैं
यातनाओं की चीत्कार सुनते-सुनते
दूर कहीं गोली चलती है
कहीं हथगोला फेंका जाता है
भूमि के गर्भ को गिराने के लिए
ताकि फिर से कोई नस्ल और फ़सल न हो
सके
अब इस युग में कोई कृष्ण नहीं हैं
जो कनिष्ठ पर गोवर्धन धारण करे
और अपने मसीहा होने का प्रमाण दे
आज हर प्रांत में, हर राज्य में, हर गली में,
हर नुक्कड़ में
मसीहा अपने नाम की डिग्री लेकर बैठे हैं
मसीहाओं की कालोनियाँ हैं
अब कनिष्ठ हो, अनामिका हो
तर्जनी हो या मध्यमा हो
सब आपस में मिलकर मुट्ठी तो बनती हैं
पर कुचलने के लिए
हर उस वर्ग को जो ऊपर उठना चाहता है
अत: प्रार्थनाओं के लिए
अब कोई जगह शेष नहीं है
क्योंकि, जबसे फ़सलों का मोल गिरा है
तबसे हमारा किसान भाई निढ़ाल हो गया है
उसके पास अपना जीवन
ख़त्म करने के सिवाय कुछ बचा नहीं है
प्रार्थनाओं से कुछ हासिल नहीं होता
क्योंकि, मानवता अपने बंद घरों के
अलग-अलग कोनों में
प्रार्थनाओं से कोसों दूर हो चुके हैं
सोई हुई चेतना मरे के समान है
आप मठ, मन्दिर बनाओ,
मूर्तियाँ बनाओ, भारत न बनाओ
पर किसी को उसका हक़दार न बनने दो
यह हमारा लोकतंत्र नहीं कुतन्त्र है
इसलिए प्रार्थनाएँ अब मूक हो चुकी हैं।
000

डॉ. संगम वर्मा
सहायक प्राध्यापक, हिन्दी विभाग,
पीजीजीसीजी-42, चंडीगढ़
मोबाइल-9877467104
ईमेल -sangamve@gmail.com

कविताएँ

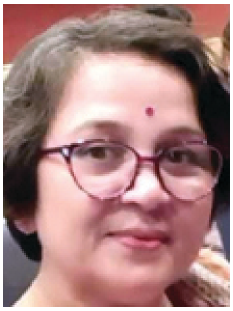

कल्पना मनोरमा की कविताएँ

बोलता रहेगा समय

हम डर रहे हैं
पंछी बोल रहे हैं लगातार
कुछ पत्थर मोटे होते जा रहे हैं
कुछ घिसते जा रहे हैं थोड़े-थोड़े लगातार
समय लिख रहा है इतिहास
पंछी दे रहे हैं गवाही बीते हुए समय की

आने वाले समय के लिए
समय को पढ़ने वाले बना रहे हैं
सुंदर शीर्षक पंक्तियाँ
लिखी जाएँगी यहीं चुनी हुई पंक्तियाँ
सुनहरी स्याही से
आने वाले दिनों के दैनिक अख़बारों में
अपनी नई आने वाली पीढ़ियों को
बताया करेंगी दादी-नानी बिसूर-बिसूरकर
महामारी के क़िस्से

हम रहें न रहें इस धरती पर
लेकिन बनी रहेगी हवा, पानी और हँसी
और बनी रहेगी पृथ्वी भी स्थिर
बिल्कुल टटकी लट्टू-सी

चाहे कितनी भी हो जाए गड़बड़
बोलता रहेगा समय
पपीहा-कोयल की बोली में
कली से फूल बनकर
लटकता रहेगा समय
मौलसिरी की नरम डाली से।
000

नदी चुप है

बोलो मत मैं सपने में हूँ
यह क्या हुआ बदल गया है गाँव अचानक
जमुना की रेती में
जहाँ खिलते जा रहे हैं करील की
झाड़ियों पर फूल
हरी घास पर तिर गए हैं
जंगली सफेद फूल
जमुना की बेख़ौफ धारा बह रही है
इच्छानुसार चाल में
किनारों की देहें हो रही हैं गीली
टूट रही है अकड़ उनकी
फ़ैल रहे हैं वे गीली रेती के बीच
किसी गड़ेरिये ने बजाई है सीटी
स्त्रियाँ बदलने लगीं हैं बकरियों में
वह भी बिना सींग वाली
जिन्हें दुहा जाएगा अब दिन के आठों पहर
पलेंगे पुरुषों के छोटे पुरुष बच्चे
कुछ स्त्रियाँ ऐसी भी हैं
जिन्होंने कर दिया है इनकार
बनने से बकरियाँ
उन्हें घूरा जा रहा है खा जाने की मुद्रा में
वे घूम रहीं हैं फिर भी इधर-उधर
सीख रही हैं कुछ बनने से पहले
चुनाव करने की अक्ल
जो दे चुकीं हैं दूध
उन्हें बाँधकर लम्बी रस्सी में
छोड़ दिया गया है चरने के लिए
खुले होने के भ्रम में

वे कर रही हैं ख़ुशी का इज़हार
मिमयाकर
कुछ को जबरन बदल दिया है
गाय- भैंस और छोटे सींग वाली बकरियों में
नदी के दूर कछार में
छिपी हैं कुछ स्त्रियाँ ढूँढ़ा जा रहा है जिन्हें
लालटेंनों से
लेकिन वे अपने होने और न होने के बीच
में
ख़ोज रही हैं कुछ उचित
क्या बनी रहेगीं ये स्त्रियाँ, स्त्रियाँ ही
फूट पड़ा एक सवाल

नदी चुप है
चुप है आसमान
हवा ने भी रोक लिए अपने पाँव
मैं भी बिना हिले-डुले
देख रही हूँ मन पसंद सपना
जिन्होंने किया था चुनाव
बकरी, गाय और भैंस बनने का
सभी पकड़ी गईं हैं
बस छिपी हुईं स्त्रियाँ बन पाई हैं
नीलगाय
उन्हें घेरा जा रहा है लाठी लेकर
लेकिन नीलगाएँ बनी स्त्रियाँ दौड़ गई हैं
अपने चुने हुए रास्ते पर
धड़कनें बढ़ रही थीं मेरी भी
मैं भी दौड़ना चाह रही थी उनके साथ
फिर यह किस ने पकड़ा मेरा हाथ
आँख खुली तो देखा
छाती पर धरे थे मेरे ही हाथ
नहीं उठने दिया था उन्हीं हाथों ने

नींद टूट चुकी है मेरी
करूँगी डी-कोड सपनों को।
000

रेत होना

नहीं दिखाई पड़ती है
हसिया, कटारी या तलवार
दरिया के हाथ में
फिर भी वह काटता आ रहा है
लगातार पत्थरों को महीन-महीन
सदियों से
और दर्द की आग़ोश में रहकर भी
नहीं निकलती है चीख़
पत्थरों के होंठों से
भूलकर भी
क्या रेत होना
इतना आसान होता है।
000

कल्पना मनोरमा
वायुसेना स्टेशन सुब्रोतो पार्क, नई दिल्ली
मोबाइल-8953654363
ईमेल -kalpanamanorama@gmail.com

रेखा भाटिया की कविताएँ

रिश्ते छूट जाते घाटों पर

प्रकृत जीवन में रिश्ते
अब ठहरे हुए रिश्ते नहीं
छूट जाते हैं घाटों पर
बहती मोह की नदी से !

जब कसकर जकड़ा था
रिश्तों की बेड़ियों में मन को
मृग मन किसी और जगह
दमन से चाहता था मुक्ति !

सींचकर रखा प्यार की धूप में
खिले रिश्ते पत्तों से महके
मौसम में फूल खिल आए
मौसम बदला सूखे रिश्ते पत्ते गिरे !

एक घर बनाया धीरज से
डाल सौहार्द जीवन भर का
मज़बूत घर में ठहर बड़े हुए रिश्ते
दरारें पड़ते छोड़ गए पुराना घर !

चक्की में डाल पिसा कई बार
भूख मिटानी थी साथ पाने की
अकेलेपन से मन कमज़ोर था
रिश्तों संग अस्तित्व पिस गया !

मीठे लगते थे कभी रिश्ते
मन की पीड़ हर लेते थे
जन्मों का तीर्थ करा देते
अंत राख छूटती वक्त के समंदर में !

सोचा मन को सन्यासी कर लें
माटी तन में जान मोह फूँकता
ध्यान लगाकर खोलते हैं गाँठे
रिश्ते बँधे मोह से, मोह रिश्तों से !

जब छोड़ दिया वक्त के समंदर में
कभी टकराते हैं लहरें बन
कभी ठहर जाते टापू, द्वीपों पर
सातों समंदर में घूमते रहते हैं !
000

सिलवटों पड़ी किताब जब खोलता हूँ

एक उदास लम्हा छिटक दूर गिरा
साथ चल पड़ा जब खुली किताब
कुछ नाराज़ सी है ज़िंदगी
पन्ने दर पन्ने पलटते राज़ खुल रहे
शुरूवाती पन्नों में हया की अदा थी
झिझक थी मन की बात अभी कही नहीं
शायरी, ग़ज़ल अभी लिखी नहीं
ज़ज्बात उड़ते रहे हवा में कहीं
कोरे मन में इश्क़ का जहान बसाना है
इश्क़ भी कैसा आवारा है अजीब चाहत
जवां दिलों में जहान आबाद करने की
प्यार की कोपलों के फूटते ही चमन में
सुर्ख रंगभर शोखियों में बसंत छा गया।

बयां होते रहे मौसम के मिज़ाज़ पन्नों पर
तुम्हारा चंचल शोख मिज़ाज़ मौसमों-सा
कभी हँस पड़ती, कभी खिल उठती
कभी बरस पड़ती, कभी रूठ जाती
और छिप जाती बादलों में छिपा चाँद
कभी गहरी सर्द रातों -सी खामोश
चुप्पी साध लेती तूफ़ान आने से पहले
उस दिन मिज़ाज कुछ बदला-सा था
अज़ीब -सा सन्नाटा, धूसर था फ़िज़ा में
अभी कई पन्ने खाली थे कहानी अधूरी
बारिशों का मौसम अभी दूर था
शबनम की बूंदें भी कंपकंपाती ठंडी
बर्फ हो चली थी उस सन्नाटे में
मैं वर्दी में वादियों में नींद में जगा था
रूह काँप उठी थी, लगा था भय ज़ोर से
जज़्बाती हो चला
अधूरी किताब को ताकता
ख़याल तेरा आया दिखी सिलवटें थी
किताब में
कुछ कोरे पन्नों में उतर आईं थी सिलवटें
खुशनुमा यादों के लिए छोड़े थे पन्ने कोरे।

अँधेरा था चाँद सूरज दोनों थे नदारत
अँधेरा टिका रहा अब हमेशा के लिए
बारिशों का मौसम बरसता है नैनों से
जिस्म में साँसें बाकी हैं धड़कनों ने बताया
जानती हो जब रूह साँस छोड़ देती है
सिलवटों पड़ी किताबें साँसें लेने लगती हैं
तेरे जाने की खबर साथ रूह जा चुकी है
तू जिस्म बन चली गई जिस्मों के जहान से
मैं न जा पाया वर्दी में तेरे जिस्म की विदाई
में
अक्सर ज़िंदगी नाराज़ हो जाती है
सिलवटों पड़ी किताब जब खोलता हूँ
उदास लम्हों में खोकर राहत पाता हूँ
जिस्म का बोझ बहुत बैचेन करता है !
000

रेखा भाटिया
9305 Linden tree lane,
Charlotte, NC-28277
मोबाइल-704-975-4849
ईमेल-rekhabhatia@hotmail.com

लेखकों से अनुरोध

सभी सम्माननीय लेखकों से संपादक मंडल का विनम्र अनुरोध है कि पत्रिका में प्रकाशन हेतु केवल अपनी मौलिक एवं अप्रकाशित रचनाएँ ही भेजें। वह रचनाएँ जो सोशल मीडिया के किसी मंच जैसे फ़ेसबुक, व्हाट्सएप आदि पर प्रकाशित हो चुकी हैं, उन्हें पत्रिका में प्रकाशन हेतु नहीं भेजें। इस प्रकार की रचनाओं को हम प्रकाशित नहीं करेंगे। साथ ही यह भी देखा गया है कि कुछ रचनाकार अपनी पूर्व में अन्य किसी पत्रिका में प्रकाशित रचनाएँ भी विभोम-स्वर में प्रकाशन के लिए भेज रहे हैं, इस प्रकार की रचनाएँ न भेजें। अपनी मौलिक तथा अप्रकाशित रचनाएँ ही पत्रिका में प्रकाशन के लिए भेजें। आपका सहयोग हमें पत्रिका को और बेहतर बनाने में मदद करेगा, धन्यवाद।

-सादर संपादक मंडल

नंदा पाण्डेय की कविताएँ

बंद किताब

एक बंद पड़ी
किताब थी वो,
जिसने न धूप देखी
न वसंत देखा
न पूस की रात देखी
न पतझड़ के दिन देखे
जिसने न झरने देखे
न पहाड़ देखा

क्योंकि..... किसी ने उसे पढ़ा ही नहीं
इस किताब के पन्ने को पलट कर
तुमने उसकी ज़िंदगी पलट दी....!
000

प्रेम में पुरुष

देखा है मैंने !
अक्सर प्रेम में पुरुषों को यायावर बनते
नारी स्वभाव की एक-एक जटिल
पगडंडियों से उसका परिचित होना...

उसे अपनी यात्रा
कब और कहाँ से शुरू करना है
कहाँ रुकना है
किस मोड़ से मुड़ना है,
और कहाँ पहुँचना है
उसे सब पता होता है
वह जानता है कि
कब उसे सुनसान किनारे पर
भटकी हुई हवा संग चलना है और कब
कल-कल बहती हुई
नदी के बीच उतरना है

उसे बखूबी पता होता है कि
प्रेम के नाटकीय आवेश को
कब पर्वतीय सरिता की तरह
धीमे-धीमे बहाना है
और कब समुद्र की उफनती हुई ढेप बन
सब कुछ साथ बहा ले जाना है

उसका हर जगह
जंगली झाड़ बन उग आना और
अमरबेल की तरह
धीरे-धीरे अपने आस-पास की
खूबसूरत दुनिया को अपने लपेटे में लेकर
पेंच को तब तक कसते चले जाना
जब तक कि
सारी खुशियों को अपने मन-पसंद के प्याले
में घोंट कर पी नहीं लेता है

बाद उसके सारे बंधन को
ऐसे तोड़ कर जाता है
जैसे,
जूते के लेस में गाँठ पड़ने पर उसे तोड़ कर
फेंक दिया जाता है
फिर अंदर उठते हिचकोले में, स्वयं को
सँभलते हुए
अपनी विजय-कामना का जश्न मनाते हुए
निकल पड़ता है
किसी नए रास्ते की तलाश में......!
000

कठपुतली

कठपुतली हूँ मैं,
मृदंग के बोल पर नाचती कठपुतली ..
मेरे हर अंग में प्रेम का आवेग
पर्वतीय सरिता की तरह
तब तक बढ़ता जाता है
जब तक कि मैं,
उसकी गहराई में
आकंठ तक डूब नहीं जाती

मैं प्रेम के सर्वोच्च शिखर को
अपने आलिंगन में
बटोरना जानती हूँ
विडम्बनाएँ ऐसी कि
मेरी डोर दूसरे के हाथों में
होते हुए भी
मुझे, मेरे पैरों में
संतुलन बनाए रखना आता है

अपनी हर परिस्थिति पर
मेरी पकड़ मज़बूत है
संशय और अनिश्चय के हर भाव को
शरद के सूखे पत्तों की तरह
झड़ना आता है मुझे

उलाहना, राग और विराग के
छोटे-छोटे भंवर में डूबे
मेरे मन की साँकल को
जिसने भी खटखटाना चाहा
साँकल टूट कर उसी के हाथ आ गई

मेरे अंदर की नदी में
इतना उफ़ान
इतना तूफ़ान
इतनी खुशी
इतनी उदासी और
इतनी छटपटाहट है
कि काश!!
इन सबके पार जाने के लिए भी
कोई डोर होती
मुक्ति की डोर....

हाँ ! मैं,
डोर के प्रेम-पाश में बँधी
कठपुतली हूँ ..!
000

नंदा पाण्डेय, द्वारा ए. के. पाण्डेय, विशेष सचिव(झारखंड सरकार), फ्लैट नंबर 2बी,सूरज अपार्टमेंट हरिहर सिंह रोड मोरहाबादी रांची, झारखंड,
पिन-834008
मोबाइल-7903507471

गीत

श्याम सुंदर तिवारी के गीत

लिख समय की स्लेट पर

अब ज़रा इस ज़िंदगी को,
लिख समय की स्लेट पर।
फट चुके हैं कई पन्ने,
मुश्किलों के गेट पर।

कभी मन गुमसुम रहा।
कभी बाँधे शामियाने,
कभी मैं और तुम रहा।
आ सजा लें फिर नई डिश,
ज़िंदगी की प्लेट पर।

आदमी है आदमी सा,
रह ज़रा बनकर कभी।
छोड़ रोना और धोना,
आज बस जी ले अभी।
आ ज़रा मैदान में,
ले गेंद अपने बैट पर।

इस धरा पर एक सपना,
एक घर तेरा भी है।
लिखे जीवन गीत में,
एक अंतरा तेरा भी है।
फ़िल्म होगी हिट ज़रा,
एक गीत अपना सैट कर।

000

खुशियों के पल

खुशियों के पल छोटे छोटे,
दुख और दर्द बड़े।

अपनेपन की परिभाषाएँ,
समझा नहीं समाज।
खोते रहे विनीत भाव हम,
अपमानित हुई लाज।
उलझा यह मन मोहजाल में,
पहने स्वर्ण कड़े।

वह जो सीमित है,
सीमाएँ भूल गया।
काली पट्टी बँधी आँख पर,
काँटे तौल गया।
युग की यह दुर्दशा देखता,
बन्धक सत्य खड़े।

सच के परिवारों में लेकिन,
हिम्मत के भी अंश।
बोलेंगे बन्धन अपनों के,
रोकेंगे विध्वंस।
समय बदल कर खोलेगा,
वे द्वार जो बन्द पड़े।

000

अपनी अपनी परिभाषाएँ

अपनी अपनी परिभाषाएँ,
अपने अपने योग।
अपने अपनों में खोए हैं,
अपने अपने लोग।

जीवन है बस सपनों का घर,
चाँदी की दीवालें।
जिसको देखो उसने मन में,
स्वर्ण कबूतर पाले।
जिव्हा का अपना स्वारथ है,
अपने अपने भोग।

सन्ध्या की मस्ती में भूले,
भोर प्रभाती गाना।
घर की टूटी दीवारें हैं,
हुआ विदेशी नाना।
अपने-अपने दर्द सभी के,
अपने-अपने रोग।

000

जलप्लावन फिर

जलप्लावन फिर तोड़ रहा है,
तटबन्धों को॥
मन की अमराई खुशियों के,
अनुबंधों को ॥

दूर हो गए बहुत किनारे,
द्वार खड़े हैं नचते धारे।
प्रार्थनाएँ सब पस्त हुई हैं,
मान्यताएँ सब ध्वस्त हुई हैं ।
रावण कोई रोक रहा है,
स्वर रंध्रों को ॥

सुबह हो रही बिन सविता के,
बोल नहीं बनते कविता के ।
रस्ते गलियाँ त्रस्त हुई हैं,
सारी सभा निरस्त हुई हैं ।

कौन सुनेगा दु:ख के
इन कुंतल छन्दों को ॥

विपदाओं की बरखा में भी,
सदा हौसले खड़े रहे हैं ।
सुविधाओं ने निरसा फिर भी,
घास घोंसले अड़े रहे हैं ।
मन के ये जज़्बात बुनेंगे,
नव गन्धों को ॥

मन की अमराई खुशियों के
अनुबंधों को ॥

000

श्याम सुंदर तिवारी
सुखदा, 05, रमा कॉलोनी, खण्डवा म.प्र.
450001
मोबाइल-9425927717

आख़िरी पन्ना

साहित्य में फूफाजी की भूमिका

भारतीय शादियों में जो व्यक्ति सबसे महत्त्वपूर्ण माना गया है, वह होता है दूल्हे का फूफाजी। असल में यह महत्त्वपूर्ण इसलिए होता है क्योंकि यह पूरी शादी में मुसलसल नाराज़ रहता है। क्यों नाराज़ है, किससे नाराज़ है, यह इसको भी पता नहीं रहता, मगर इसे नाराज़ रहना है तो यह रहता है। दूल्हे का पूरा परिवार हमेशा इस बात की चिंता में रहता है कि फूफाजी को किसी बात का बुरा न लग जाए। कई बार तो ऐसा भी होता है कि दूल्हे का परिवार शादी की रस्मों पर ध्यान ही नहीं दे पाता है क्योंकि उसे तो फूफाजी की चिंता बनी रहती है। आप किसी शादी में जाकर दूल्हे के फूफा को कैसे पहचानेंगे..? बहुत आसान है, जो व्यक्ति अपनी भवें ऊपर की तरफ़ तान कर, मुँह चढ़ाए घूम रहा हो, वही दूल्हे का फूफा है। यह हर बात का उल्टा और कड़वा उत्तर देता है। पूछा जाएगा खेत के बारे में तो यह खलिहान के बारे में उत्तर देगा। कोई सलाह माँगी जाएगी तो कहेगा कि हमसे क्यों पूछते हो उनसे पूछो जो ख़ास बने हुए हैं। फिर उसके बाद जब दूसरे की सलाह से काम कर लिया जाएगा तो उस काम में बैठकर कमियाँ निकालने लगेगा। मतलब यह कि न तो काम में मदद करनी है और न काम होने ही देना है। असल में इसकी परेशानी यह होती है कि यह भी इसी घर में बरसों पहले दूल्हा बन कर आया था बुआ को ब्याहने, तब जो कुछ कमियाँ उसके स्वागत सत्कार में रह गई थीं उनका बदला यह पूरी उम्र लेता रहता है। जो कल का दूल्हा था वो आज फूफा हो चुका है। हर असफल तथा भूतपूर्व दूल्हे को अंततः फूफा बन कर ही संतुष्ट होना पड़ता है। बस एक बात जो हमेशा खलती है वह यह कि फूफा को फूफा कहना क्यों शुरू किया गया, उसके स्थान पर इनका संबोधन तो दुर्वासा होना चाहिए था। दुर्वासा को भी पता नहीं होता था कि वो क्रोधित क्यों हैं। हिन्दी साहित्य भी एक तरह से विवाह स्थल ही है। यहाँ भी फूफाओं के ग़ुस्से के कारण लेखक इतना चिंता में रहता है कि वह विवाह (लेखन) पर ठीक से ध्यान ही नहीं दे पाता है। विवाह में फूफा और साहित्य में आलोचक, इनकी स्थिति लगभग एक जैसी ही है। ऊपर की सारी ख़ूबियाँ आप फूफा से आलोचक पर स्थानांतरित करने की कल्पना कीजिए। वह सारे गुण जो ऊपर विवाह में फूफा के बताए गए हैं, उनको यहाँ लागू कीजिए, सारे सटीक बैठेंगे। फूफा दुर्वासा की तरह क्रोध में आकर विवाह बिगाड़ देने की बात कहता है, तो आलोचक भी दुर्वासा की तरह कमंडल में श्राप लिए ही घूमता है, ज़रा लेखक ने उसकी जगह अपने लेखन पर ध्यान दिया नहीं कि उसने तुरंत श्राप दिया, और उस लिखी जा रही रचना को भस्म कर दिया। आलोचक भी फूफा की तरह हमेशा वक्रोक्ति में ही बात करता है, कभी कोई बात का सीधा उत्तर नहीं देता है। मैंने किसी वरिष्ठ कथाकार का एक कथन कहीं पढ़ा था "हिन्दी लेखकों की डेढ़ पीढ़ी एक आलोचक को प्रसन्न रखने में ही ज़ाया हो गई।" यह कथन बताता है कि जिस प्रकार दूल्हे का पूरा परिवार विवाह को छोड़कर केवल फूफा की चिंता में लगा रहता है, उसी प्रकार हिन्दी का लेखक भी लिखना छोड़-छाड़ कर केवल आलोचक की चिंता में ही ज़ाया होता रहता है। दूल्हे के फूफा की तरह इनको भी विवाह में मान, सम्मान और प्रथम पूज्य गणेश का आसन सब कुछ चाहिए होता है, लेकिन दिए जाने पर ये उसे इस प्रकार देखते हैं, जैसे कोई तुच्छ वस्तु उनको दी जा रही हो। आलोचक भी चाहता है कि लेखक हर नई रचना प्रारंभ करने से पूर्व 'वक्रतुण्ड महाकाय सूर्यकोटि समप्रभ:' का पाठ उसके लिए करे, उसी प्रकार जिस प्रकार फूफा चाहता है कि विवाह की हर रस्म के प्रारंभ में गणेश पूजन के स्थान पर फूफा पूजन हो। अंत में एक महत्त्वपूर्ण बात, जिस प्रकार हर फूफा एक भूतपूर्व दूल्हा होता है, उसी प्रकार हर आलोचक एक भूतपूर्व लेखक होता है। ये दोनों भूतपूर्व से अभूतपूर्व होना चाहते हैं, इसलिए हमेशा नाराज़ रहते हैं, क्योंकि अभूतपूर्व होने का बस यही एक रास्ता इनके सामने शेष रहता है।

सादर आपका ही

पंकज सुबीर

पंकज सुबीर
पी. सी. लैब, शॉप नंबर 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मप्र, 466001
मोबाइल- 9977855399
ईमेल- subeerin@gmail.com

शिवना प्रकाशन जुलाई 2020 सेट की पुस्तकें

वो 17 दिन
ब्रजेश राजपूत
चुनाव पत्रकारिता

स्वर्ग का अंतिम उतार
लक्ष्मी शर्मा
उपन्यास

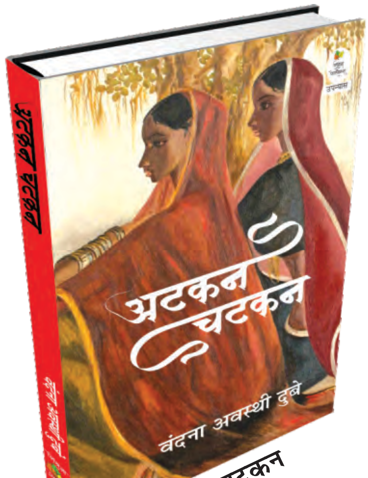

अटकन-चटकन
उपन्यास
वंदना अवस्थी दुबे

अम्लघात
सुधा ओम ढींगरा
कहानी संकलन

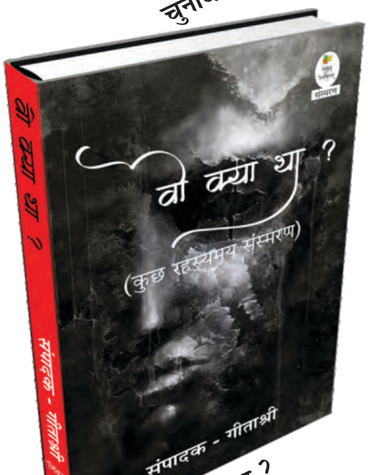

वो क्या था ?
गीताश्री
संस्मरण

साक्षात्कारों के आईने में
रेनू यादव
साक्षात्कार

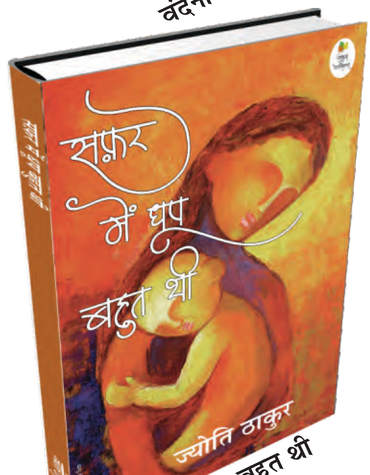

सफ़र में धूप बहुत थी
ज्योति ठाकुर
उपन्यास

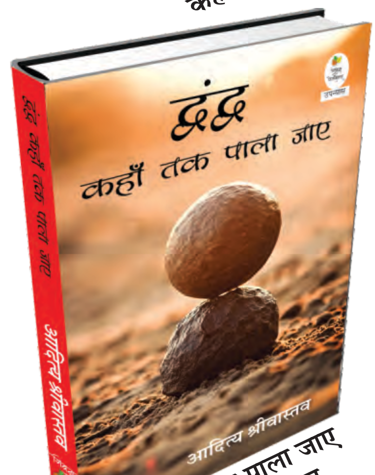

द्वंद्व कहाँ तक पाला जाए
आदित्य श्रीवास्तव
उपन्यास

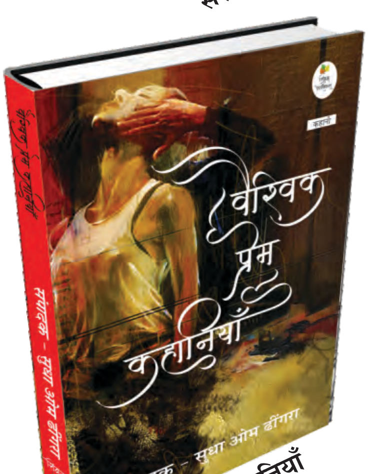

वैश्विक प्रेम कहानियाँ
सुधा ओम ढींगरा
कहानी संकलन

कोरोना काल
आकाश माथुर
पत्रकारिता

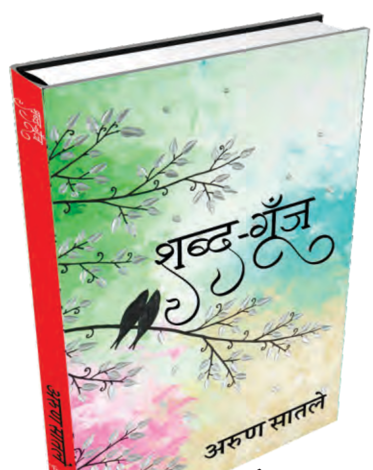

शब्द-गूँज
अरुण सातले
कविता संग्रह

नज़रबट्टू
ज्योति जैन
कहानी संग्रह

शिवना प्रकाशन

शिवना प्रकाशन, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने सीहोर, मध्य प्रदेश 466001
फोन : 07562-405545, 07562-695918
मोबाइल : +91-9806162184 (शहरयार)
ईमेल : shivna.prakashan@gmail.com
http://shivnaprakashan.blogspot.in
https://www.facebook.com/shivna.prakashan

शिवना प्रकाशन की पुस्तकें सभी प्रमुख ऑनलाइन शॉपिंग स्टोर्स पर

amazon http://www.amazon.in
flipkart http://www.flipkart.com
Paytm https://www.paytm.com
ebay http://www.ebay.in

दिल्ली में पुस्तकें प्राप्त करें : हिन्दी बुक सेंटर, 4/5 आसफ अली रोड
फोन : 011-23286757 http://www.hindibook.com

ढींगरा फ़ैमिली फ़ाउण्डेशन अमेरिका द्वारा मध्यप्रदेश के सीहोर ज़िले में सीहोर तथा आष्टा में चलाए जा रहे आर्थिक रूप से कमज़ोर परिवार की बालिकाओं के लिए निशुल्क कम्प्यूटर प्रशिक्षण योजना के तहत स्थापित प्रशिक्षण केन्द्रों पर आयोजित कुछ कार्यक्रम

सीहोर में चलाए जा रहे बालिकाओं के लिए निशुल्क कम्प्यूटर प्रशिक्षण केंद्र पर सत्र 2020-21 का शुभारंभ वरिष्ठ समाजसेवी श्री अखिलेश राय, महामण्डलेश्वर पंडित अजय पुरोहित द्वारा किया गया, इस अवसर पर अतिथियों ने बालिकाओं को संबोधित भी किया।

सीहोर में चलाए जा रहे बालिकाओं के लिए निशुल्क कम्प्यूटर प्रशिक्षण केंद्र पर सत्र 2020-21 का शुभारंभ वरिष्ठ समाजसेवी श्री अखिलेश राय, महामण्डलेश्वर पंडित अजय पुरोहित द्वारा किया गया, इस अवसर पर अतिथियों ने बालिकाओं को संबोधित भी किया।

कम्प्यूटर सीखने से बढ़ जाते हैं नौकरी के अ
छात्राएं अपना 100 प्रतिशत दें: अखिलेश रा

निशुल्क कम्प्यूटर प्रशिक्षण केंद्र

कोरोना महामारी के कारण दो माह देर से प्रारंभ हुआ सत्र

ं को निश्शुल्क दिया जाएगा कंप्यूटर का प्रशिक्ष

सीहोर में चलाए जा रहे बालिकाओं के लिए निशुल्क कम्प्यूटर प्रशिक्षण केंद्र पर सत्र 2020-21 का शुभारंभ वरिष्ठ समाजसेवी श्री अखिलेश राय, महामण्डलेश्वर पंडित अजय पुरोहित द्वारा किया गया, इस अवसर पर अतिथियों ने बालिकाओं को संबोधित भी किया।

भोपाल डिविज़न की अजाक पुलिस अधीक्षक मध्य प्रदेश शासन की वरिष्ठ पुलिस अधिकारी सुश्री ज्योति ठाकुर ने सीहोर में चलाए जा रहे निशुल्क कम्प्यूटर प्रशिक्षण केन्द्र में प्रशिक्षण प्राप्त कर रही बालिकाओं को कॅरियर गाइडेंस प्रदान किया।

If Undelivered Please Return to :
P. C. Lab, Shop No. 3-4-5-6, Samrat Complex Basement, Opp. Bus Stand, Sehore, M.P. 466001
Phone 07562-405545, 07562-695918, Mobile 09584425995, 07828313926, 09806162184

स्वत्वधिकारी एवं प्रकाशक पंकज कुमार पुरोहित के लिए पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मध्य प्रदेश 466001 से प्रकाशित तथा मुद्रक ज़ुबैर शेख़ द्वारा शाइन प्रिंटर्स, प्लॉट नं. 7, बी-2, क्वालिटी परिक्रमा, इंदिरा प्रेस कॉम्प्लैक्स, ज़ोन 1, एम पी नगर, भोपाल, मध्य प्रदेश 462011 से मुद्रित।